ओड़िसा : लोक-संस्कृति और साहित्य

लोक-संस्कृति और साहित्य

ओड़िसा : लोक-संस्कृति और साहित्य

के. बी. दास

एल. के. महापात्र

अनुवाद

कु. एस. महापात्र

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

ISBN 81-237-1510-2

पहला संस्करण : 1995 (शक 1917)

रु. 41.00

Original Title : Folklore of Orissa

Translation : Orissa:Lok Sanskriti Aur Sahitya (*Hindi*)

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया,

ग्रीनपार्क नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित।

विषय सूची

भूमिका

लोक संस्कृति वह माध्यम है जिसके द्वारा जनमानस अपने को विविध रूपों में अभिव्यक्त करता है और इस प्रकार की सर्जना में कलात्मक पूर्णता व प्रसन्नता की अनुभूति करता है। ओड़िसा और उसके निवासियों के बारे में भी यही सच है।

विभिन्न विद्वानों और विविध विषयों के लिए जनश्रुति की अनेकानेक अवधारणाएं हैं। 'एक नृतत्व शास्त्री के लिए जनश्रुति संपूर्ण संस्कृति न होकर संस्कृति का एक अंशमात्र है। इसके अंतर्गत पौराणिक कथाएं, लोकगाथा, कथा, मुहावरे, पहेलियां, गाथा-गीत तथा अन्य गीत और कई अन्य अपेक्षाकृत कम महत्वपूर्ण रूप भी आते हैं। लोकनृत्य, लोकगीत, लोक वेश-भूषा, लोक उपचार, लोक रीति, और लोक विश्वास आदि तत्व उसमें नहीं आते। चाहे शिक्षित समाज हो या अशिक्षित, ये सारे विषय निर्विवाद रूप से अध्ययन के योग्य हैं। सारी जनश्रुतियां मौखिक रूप से संप्रेषित होती हैं किंतु वे सारी बातें जो मौखिक रूप से संप्रेषित होती हैं, जनश्रुति नहीं होतीं।'

जनश्रुति के आयाम संबंधी प्रोफेसर बाशम का यह दृष्टिकोण जनश्रुति के अन्य विद्वानों को स्वीकार्य नहीं है। जनश्रुति की कुछ विधाएं ऐसी भी हैं, जो विशेषकर आजकल मौखिक रूप की बजाय लिखित रूप में अभिव्यंजित और संप्रेषित होती हैं।

इस पुस्तक में लोक-परंपरा के अध्ययन में लोकगीत, लोकनृत्य, मेला और पर्व, लोक-मनोरंजन, लोक का अर्थ प्रायः उस विशाल सामान्य जनता से लगाया जाता है जो अधिकतर अशिक्षित और बेजुबान होती है, तथा उन पारंपरिक विचारधाराओं, विश्वासों, रीति-रिवाजों और विधि-विधानों को मानती है जो न तो व्यवस्थित होते हैं और न ही सुसंगत रूप से संगठित इसलिए उनमें स्पष्ट अंतर्विरोध भी होते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि लिखित संस्कृति अथवा विद्वत्ता लोक-परपंरा के माध्यम से प्रतिबिंबित और अभिव्यंजित नहीं होती। वस्तुतः लिखित संस्कृति एवं स्थानीय या प्रादेशिक प्रचलित देशज संस्कृति का अंतर्मेल ही लोक-परंपरा है।

सीमित स्थान तथा चुनिंदा विवेचन के अंतर्गत, जिसका उद्देश्य स्पष्टतः इस रचना के संदेश को वृहत्तर जन-समुदाय तक पहुंचाना है, हमारे लिए केवल यही संभव हो सका

है कि हम सामाजिक अस्तित्व के इस व्यापक एवं रोचक पक्ष की रूपरेखा मात्र प्रस्तुत कर सके। इस कार्य के संपादन में प्रोत्साहन देने के लिए हम आर.के. रथ के प्रति अनुगृहीत हैं। हम उत्कल विश्वविद्यालय के नृतत्व विभाग के श्री बी.के. बेहरा और श्री एस.के. घोष मल्लिक तथा पी. के. मिश्रा के प्रति कृतज्ञ हैं और श्री पी.सी. सिंह के प्रति जिन्होंने इस पुस्तक के लिए कुछ छाया-चित्र दिये हैं। ओड़िसा सरकार के जन-संपर्क विभाग के निदेशक की बहुमूल्य सहायता को हम साभार स्वीकारते हैं। हम श्री पी.के. मिश्रा और श्री पी. सी. महापात्र द्वारा दी गयी बहुमूल्य सहायता और सेवाओं को स्वीकार करते हैं।

हम विशेष रूप से हिंदुस्तानी शास्त्रीय संगीत (उत्कल संगीत महाविद्यालय, भुवनेश्वर) की व्याख्याता श्रीमती आशालता शतपथी के प्रति आभारी हैं। साथ ही कला विकास केंद्र, कटक के प्राचार्य डा. एस. के. शतपथी, डा. बी.एन. सिन्हा; उत्कल विश्वविद्यालय भूगोल के प्रोफेसर, जिन्होंने ओड़िसा का नक्शा तैयार करवा दिया, के प्रति तथा श्री एस. के. महान्ति के प्रति भी आभारी हैं।

हम दोनों लेखकों के संयुक्त प्रयास के स्वरूप को भी संक्षेप में देना चाहेंगे। हमें एक साहित्यिक व्यक्ति (इस पुस्तक के पहले लेखक ओड़िया तथा संस्कृत साहित्य के इमेरिटस प्रोफेसर हैं एवं जिनका ओड़िसी लोक-संस्कृति के अध्ययन में समर्पित घटना बहुल एक सुदीर्घ जीवन रहा है) और एक समाजशास्त्री (इस पुस्तक के दूसरे लेखक, जो नृतत्व शास्त्र के प्रोफेसर हैं) को साथ काम करने का बड़ा ही प्रेरणादायक, उपयोगी तथा रचनात्मक अवसर मिला। पहले लेखक अध्याय 3, 7 और 8 के लिए उत्तरदायी हैं तथा शेष भाग दूसरे लेखक का दायित्व है।

हमें आशा है कि यह विनम्र प्रयास लोक-परंपरा के विद्वानों तथा नृतत्व-वेत्ताओं के आगे के अध्ययन में साथ साथ काम करने तथा विभिन्न विषयों के अंतर्गत ओड़िसी लोक-परंपरा के अध्येताओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

— के. बी. दास

— एल. के. महापात्र

1

ओड़िसा और उसके लोग

ओड़िसा एक अत्यंत मनोरम प्रदेश है। नील सागर अपनी फेनिल लहरों से उसके पूर्वी तट का निरंतर आलिंगन करता है और सलोनी हरी-भरी पहाड़ियों से जुड़ी हुई धरती कहीं-कहीं सागर से सीधी उदित होती सी प्रतीत होती है। उसकी नदियां घूमती-बलखाती तट प्रदेश के जल में पच्चीकरी-कलाकृति का ताना-बाना बनाती हैं, उसके पठार और पहाड़ी ढलान वर्षा ऋतु में एक विशाल शतरंज की बिसात में पीली और हरी पच्चीकरी का दृश्य प्रस्तुत करते हैं। ओड़िसा जो अपनी ललित कलाओं, भित्ति कला, पटचित्र, नृत्य, ओड़िसी संगीत, ओड़िसी नृत्य और वास्तुकला तथा मूर्ति-कला (कोणार्क, लिंगराज, जगन्नाथ, खींचिंग मंदिर) इत्यादि के लिए प्रसिद्ध है, अपने उत्कल नाम के अनुकूल ही सुंदर कलाओं के प्रदेश के नाम से विख्यात है।

ओड़िसा राज्य भारत के पूर्वी तट पर अवस्थित है। उसके पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी सीमांत पर बंगाल की खाड़ी है। यह राज्य 17.48° तथा 22.34° उत्तर अक्षांश और 81.24° तथा 87.29° पूर्वी देशांतर के बीच बसा हुआ है। आधुनिक ओड़िसा के विभिन्न अंचल ऐतिहासिक समय में कलिंग कौशल, उत्कल तथा औड्र राज्यों के अंतर्गत थे। ओड़िसा राजनैतिक दृष्टि से कभी संगठित रहा, कभी अनेक राज्यों में विभाजित, परंतु वह महाभारत के समय से ही विख्यात रहा है। अशोक के ऐतिहासिक आक्रमण और उनके द्वारा बुद्ध धर्म की दीक्षा ग्रहण करने के समय कलिंग की धाक थी। उसी समय से ओड़िसा बौद्ध, जैन तथा विभिन्न तांत्रिक मतावलंबियों के लिए तीर्थाटन का महान केंद्र रहा है। श्रीक्षेत्र पुरी में शंकराचार्य के आगमन तथा श्री चैतन्य और अन्य वैष्णव संतों के द्वारा महाप्रभु जगन्नाथ को महत्व देने के कारण जगन्नाथ संपूर्ण भारत में हिन्दुओं के महान देव के रूप में पूजनीय हुए। जगन्नाथ पंथ शीघ्र ही एक धर्मनिरपेक्ष पंथ बन गया और यही पंथ ओड़िसा के लोगों के लिए सांस्कृतिक एकता एवं अस्मिता का प्रतीक बन गया, भले ही राजनैतिक रूप से वे कभी एक रहे हों या न रहे हों। भगवान जगन्नाथ की मान्यता का उद्भव बौद्ध, जैन, वैष्णव तथा जनजातियों की आध्यात्मिक आस्थाओं में से माना जाता

जाता रहा है। इसी कारण ओड़िसा और शेष भारत के सभी समुदायों की भगवान जगन्नाथ के प्रति समान श्रद्धा रही है। इस व्यापक सांस्कृतिक एकता के पीछे बहुविध उप-संस्कृतियां तथा जातीय एवं भाषाई विविधताएं भी हैं, जिनका प्रसार ओड़िसा राज्य की प्रशासनिक सीमाओं के बाहर आन्ध्रप्रदेश, मध्यप्रदेश, बिहार और पश्चिम बंगाल के पड़ोसी राज्यों के सीमांत प्रदेशों में भी मिलता है। वर्तमान ओड़िसा राज्य का क्षेत्रफल 60171.8 वर्गमील है जो पूरे भारत के भौगोलिक क्षेत्रफल का 4.90% है। जनसंख्या के हिसाब से राज्यों एवं केंद्रशासित प्रदेशों में ओड़िसा का ग्यारहवां स्थान है। सन् 1961 में ओड़िसा की कुल आबादी 1,75,48,846, थी, सन् 1971 में वह 2,19,44,615 हो गयी। जोकि पूरे भारत की जनसंख्या का 4.01% है।

सन् 1981 में यह जनसंख्या बढ़कर 2,63,70,271 हो गयी जो भारत की जनसंख्या का 3.84% थी। सन् 1991 में ओड़िसा की कुल जनसंख्या 3,15,12,070 हो गयी और यह भारत की जनसंख्या का 3.73% थी। इस वैशिष्ट्य का कारण सन् 1961-71 के दशक में 25.05, 1971-81 के दशक में 20.17 तथा 1981-91 के दशक में 19.50 की लगातार गिरती हुई वृद्धि दर है। इस तुलना में भारत की वृद्धि दर बहुत अधिक है। यह सन् 1971-81 के दशक में 24.66 तथा सन् 1981-91 में 23.50 है। ठीक इसके विपरीत पड़ोसी राज्यों में जनसंख्या वृद्धि दर बहुत अधिक है : सन् 1971-81 में 23.10% की वृद्धि तथा सन् 1981 में 23.82% की वृद्धि से आंध्र प्रदेश की जनसंख्या सन् 1991 में 6,63,54,559 है। इसी तरह क्रमशः 24.06 तथा 23.49 की वृद्धि से बिहार की जनसंख्या 8,63,38,853 एवं 25.27 तथा 24.55 की वृद्धि से मध्य प्रदेश की जनसंख्या 6,61,35,862 थी। ध्यातव्य है कि मध्य प्रदेश, पश्चिम बंगाल तथा आंध्र प्रदेश की वृद्धि दर सन् 1981-91 के दशक की अपेक्षा 1971-81 के दशक में अधिक थी। राष्ट्रीय औसत 138 (1961), 182 (1971), 216 (1981) तथा 267 (1991) के एवज में लगातार वृद्धि से प्रति वर्ग किलोमीटर भारत की आबादी सन् 1961 में 113, सन् 1971 में 141, सन् 1981 में 169, सन् 1991 में 202 हुई।

सन् 1961 में औसत साक्षरता 21.66%, सन् 1971 में 26.18%, सन् 1981 में 31.23% तथा सन् 1991 में 48.55% हुई। जो भी हो, सन् 1991 की जनगणना में 7 वर्ष और अधिक उम्र के लोगों के आधार पर यह गणना की गयी। उस आधार पर सन् 1981 में ओड़िसा में 40.96% साक्षरता थी, जिनमें से 56.45% पुरुष और 25.14% स्त्रियां थीं, जो 1991 में बढ़कर पुरुषों में 62.37% तथा स्त्रियों में 34.40% हो गयीं। यद्यपि पिछले तीन दशकों के दौरान ओड़िसा में राष्ट्रीय औसत की तुलना में साक्षरता बहुत नीचे रही, पर पश्चिम बंगाल के अलावा अन्य पड़ोसी राज्यों की अपेक्षा यहां पुरुष एवं महिलाओं में यह औसत बहुत अधिक रहा। जो भी हो साक्षरता को पूरी तरह तब

तक नहीं आंका जा सकता जब तक शैक्षिक रूप से पिछड़े तथा कमजोर वर्ग (अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति) और अन्य पिछड़े वर्ग, जो सब मिलकर पूरी जनसंख्या के आधे से अधिक हैं, की गणना न की जाय। बासठ अनुसूचित जनजातियां एवं तिरानबे अनुसूचित जातियां हैं। सन् 1971 में अनुसूचित जनजाति की संख्या 50,71,937 थी, कुल जनसंख्या का 23.11%, जो सन् 1981 में 59,15,067 हो गयी, कुल जनसंख्या का 22.43 प्रतिशत। सन् 1971 की आवादी 33,10,854 से सन् 1981 में अनुसूचित जाति की आवादी 38,65,543 हो गयी। उसका प्रतिशत कुल जनसंख्या के 15.09 (1971) से 14.66 (1981) हो गया। मयूरभंज (58.56%), कोरापुट (56.34%) तथा सुंदरगढ़ (53.40%) ऐसे जिले थे जहां सन् 1981 में अनुसूचित जनजाति की आवादी कुल आवादी के आधे से अधिक थी। सामान्यतया अनुसूचित जनजाति एवं अनुसूचित जाति आर्थिक, शैक्षिक एवं सामाजिक रूप से पिछड़े हैं।

दूसरा तथ्य ओड़िसा की ग्रामीण प्रकृति की ओर खींचता है। सन् 1951 में ओड़िसा में मात्र 4.06 प्रतिशत लोग ही शहरी क्षेत्र में रहते थे। वाद के दशकों में धीरे-धीरे शहरीकरण वढ़कर सन् 1971 में 8.4%, सन् 1981 में 11.79 प्रतिशत और सन् 1991 में 13.43 हो गया। यद्यपि सन् 1971-81 के दशक में शहरी क्षेत्र का विकास 68.5%, एक घटना है। अखिल भारतीय दर 46.14% के विपरीत सन् 1981-91 में घटकर 36.1% हो गयी जो लगभग पूरे भारत के विकास के बराबर है (36.19%)।

भौगोलिक दृष्टि से ओड़िसा को पांच क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है--तटवर्ती मैदान, मध्य पर्वतीय प्रदेश, असम उच्च भूमि, नदी-घाटियां तथा निचला पटार। तटवर्ती मैदान—उत्तर में स्वर्ण रेखा नदी से दक्षिण में ऋषि कुल्या नदी तक फैले हुए हैं। वे मैदान उत्तर में संकरे हैं, मध्य में सबसे चौड़े, फिर चिलका झील के तट पर सर्वाधिक संकीर्ण होकर दक्षिण में चौड़े हो जाते हैं। वंगाल की खाड़ी में गिरने वाली नदियों के मुहाने तथा विस्तृत कृषि योग्य भूमि को धान के खेतों की सुदीर्घ शृंखला के रूप में पहचाना जा सकता है। पूर्वी घाट की पर्वत श्रेणियां मध्यप्रदेश वनाती हैं। राज्य के कुल क्षेत्रफल का लगभग तीन चौथाई हिस्सा इस पर्वतीय प्रदेश में आता है। इसे कई महत्वपूर्ण नदियों की गहरी और चौड़ी घाटियां काटती हैं जिसमें महानदी की घाटी सबसे लंबी है। महानदी मध्य प्रदेश में बस्तर से निकलती है और ओड़िसा को लगभग दो समान-से भागों में विभाजित करती है। कोरापुट जिले का दक्षिणी भाग, गंजाम जिले का पश्चिमी भाग, फुलबानी जिला तथा कालाहांडी और बलांगीर जिलों के वड़े हिस्से मिलकर पर्वतों और पटारों का एक सतत क्षेत्र बनाते हैं जो आगे असम उच्च भूमि के प्रदेश में मिल जाता है। इसी प्रकार उत्तर में मयूरभंज, क्योंझर, सुंदरगढ़ तथा संभलपुर और ढेंकानाल की पहाड़ियां और पटार एक अन्य सतत पर्वतीय क्षेत्र बनाते हैं जो तटवर्ती मैदानों में फैल जाता है। यह असम उच्च

भूमि पठारों की तुलना में कम ऊंची हैं। ओड़िसा में प्रमुख नदी-घाटियां महानदी, ब्राह्मणी एवं वंशधारा नदियों के कछार हैं। निचले पठार लगभग समतल हैं। और वे दक्षिण भारतीय प्रायद्वीप के समतल प्रदेश जैसे लगते हैं जो असम उच्चभूमि से अधिक ऊंचे हैं।

अनुसूचित जनजातियां दो पट्टियों में ही केंद्रित हैं। उत्तरी पट्टी में मयूरभंज, क्योंझर और सुंदरगढ़ के जिले आते हैं और दक्षिणी पट्टी में कोरापुट, गंजाम एवं फुलवानी के जिले। इन जिलों में निवास करने वाले आदिवासियों में बहुत-से केवल अपनी आदिवासी बोलियां ही जानते हैं, उन्हें ओड़िया का ज्ञान भी नहीं हैं। इन बोलियों में सबसे महत्वपूर्ण बोलियां मुंडारी और संथाली हैं।

ओड़िसा की क्षेत्रीय भाषा ओड़िया, आर्य परिवार की भाषाओं में आती है और पूर्व-मागधी की सीधी उत्तराधिकारी के रूप में असमिया, बंगला तथा मैथिली से उसका निकट का संबंध है। आर्य तथा द्रविड़ परिवारों की पड़ोसी क्षेत्रीय भाषाओं तथा आदिवासियों में प्रचलित आस्ट्रिक बोलियों के प्रभाव से ओड़िया में भाषाई विविधता भी आयी है जैसे कि बालेसरी (बालासीर), भतरी (कोरापुट), लारिया (संबलपुर), संबलपुरी (संबलपुर तथा अन्य पश्चिमी जिले), गंजामी (गंजाम और कोरापुट), छत्तीसगढ़ी (मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ी तथा ओड़िसा के पड़ोसी इलाके) तथा मैदिनीपुरी (पश्चिम बंगाल के मिदनापुर जिला)। इसके अलावा उत्तर और दक्षिण ओड़िसा के पर्वतीय अंचलों में भी ओड़िसा के कई स्थानीय रूप मिलते हैं जिनकी अपनी अलग-अलग भाषाई विशिष्टताएं भी हैं। ओड़िया भाषा में पहला कालयुक्त शिलालेख सन् 1051 ईसवी का है जो उराजंग में मिला है। परंतु प्राचीन कलिंग साम्राज्य के ओड़िसा और आंध्र क्षेत्रों में मिलने वाले ओड़िया शब्दों से युक्त संस्कृत शिलालेखों की खोज से ओड़िसा का उद्‌गम छठी शताब्दी तक माना जाने लगा है। सूर्यवंशी राजाओं के समय सन् 1433-1533 ईसवी में ओड़िया साहित्यिक गतिविधियां उल्लेखनीय थीं, जब महान काव्यों, लगभग सारे पुराणों और कुछ उपनिषदों का ओड़िसा में अनुवाद हुआ था और बहुधा उनकी पुनर्व्याख्या भी हुई थी। ओड़िया लिपि ब्राह्मी लिपि से निकली है। संभवतः गंग राजाओं के शासन काल में उसे गोलाकार अथवा द्रविड़ रूप दिया गया था। ताड़-पत्रों पर लौह लेखनी से लिखने के लिए यह विशेष उपयुक्त सिद्ध हुआ।

समुदायों की अनेकता

पूर्व ऐतिहासिक काल से ही ओड़िसा प्रदेश अनेक समुदायों का निवास रहा है। बुरहा बलंगा, ब्राह्मणी, महानदी और तेल जैसी उसकी सहायक नदियों के किनारों पर पाषाणयुगीन अवशेष मिले हैं। अभी हाल ही में पश्चिमी ओड़िसा के आंतरिक क्षेत्रों में तथा दक्षिण ओड़िसा नदी-घाटियों एवं पठारों में भी पूर्व ऐतिहासिक अवशेष प्राप्त हुए हैं। तथापि ये पूर्व ऐतिहासिक समुदाय कौन थे? इसे अभी तक सही रूप में नहीं पहचाना जा सका।

परंतु यह सुविदित है कि साओरा तथा सबर (रोमन इतिहासकार फिलनी के अनुसार सुआरी) इस प्रदेश में महाभारत काल से ही निवास करते रहे हैं। आज तक पर्वतों में साओरा तथा मैदानी इलाकों की सबर और सहरा, लगभग पूरे ओड़िसा में ही फैली हुई महत्वपूर्ण जनजातियां हैं। पहले ओड़िसा की आबादी में जनजातियों का अनुपात बहुत रहा होगा। अंग्रेजी राज्य के दौरान जनगणनाओं से यह स्पष्ट होता है कि धीरे धीरे अधिकाधिक जनजातियां अपने को हिंदू घोषित करती गयीं और उन्होंने हिंदू व्यवहार, आचार और परंपरा का अनुगमन किया है। वन्य और पर्वतीय प्रदेशों में जनजातियों के निवास चाहे कितने भी सुदूर क्यों न रहे हों हिंदू धर्म, मिथक और यहां तक कि अनुष्ठानिक शुचिता अशुचिता संबंधी हिंदू अवधारणाओं का प्रभाव भी उन तक पहुंच चुका है। हिंदू प्रभाव के प्रसार का एक शास्त्रीय उदाहरण कोरापुट जिले में निवास करने वाली नितांत आदिम प्रजाति बोंडोपरजा से दिया जा सकता है जिनकी महिलाएं विवाह के पश्चात् अपने बाल कटवा लेती हैं। इस प्रथा को रामायण काल में सीता देवी के शाप से जोड़ा जाता है। और यही बोंडोपरजा सदा से खूंखार आक्रामकों के रूप में कुख्यात रहे हैं और इसलिए इस पर्वतीय अंचल के हिंदुओं से उनका कभी घनिष्ठ संबंध नहीं रहा। इसी प्रकार क्योंझर जिले में मुंडारी बोलने वाले जुआंग अपने पर्वतीय निवास में इतने अलग-अलग रहते रहे हैं कि सन् 1951 में भी उनमें से केवल 41.22% लोग ही ओड़िया जानते थे। वे गोमांस खाते थे और उस क्षेत्र में हिंदुओं से उनका कोई निकट का सामाजिक संबंध नहीं था। सन् 1926 में श्री एन. के. बोस ने यह देखा कि जुआंग कर्मकांड में धुएं में सुखाया हुआ चावल उपयोग में लिया जाता है और वे प्रजनन की देवी के रूप में लक्ष्मी की पूजा करते हैं। हां, वे उसके साथ बलिदान भी देते हैं (बोस, 1967)। हिंदू समाज का प्रभाव धर्म तथा आचार तक ही सीमित नहीं रहा, उसका प्रभाव स्थानीय हिंदू जाति व्यवस्था के अनुरूप जाति जैसे सामाजिक एवं व्यावसायिक विभेदीकरण तक में दिखाई देता है। परंतु हिंदू समाज और जनजातीय समाज के बीच की अंतःक्रिया पूरी तौर से एकपक्षीय नहीं थी। भाषा, विवाह एवं मृत्यु से संबधित अनेक संस्कारों में गैर आदिवासी समाजों पर आदिवासी पड़ोसियों का भारी प्रभाव देखा जा सकता है। उन क्षेत्रों में विशेषकर जहां वे राजनीतिक दृष्टि से प्रभावशाली वर्ग रहे हैं। वस्तुतः नृतत्वशास्त्रियों के लिए यह पता लगाना सदा ही कठिन रहा है कि कौन-सी परंपराएं तथा मिथक शुद्ध आदिवासी हैं तथा कौन सी नहीं। बहुधा तो होता यही है कि उन्हें एक समन्वयवादी रूप मिलता है जो कभी-कभी आदिवासी संस्कृतियों, आर्य परंपरा के शास्त्रोक्त निर्देशों तथा द्रविड़ परंपरा के व्यवस्थित प्रतिरूपों का एकीककृत रूप होता है। इतिहास के किसी भी काल-खंड में किसी क्षेत्र या जाति के सांस्कृतिक सम्मेलन और उद्वहन अपवाद नहीं होते, वे एक सामान्य नियम होते हैं। विभिन्न समुदायों के प्रजातीय अंतर भी स्पष्ट नहीं होते हैं। प्रजातीय इतिहास की दृष्टि

से ओड़िसा में कई लोग तथा आदिवासियों में बहुसंख्य आट्रोलाइड वर्ग के हैं परंतु सामान्य जन में अधिकांश चौड़े सिर वाले एल्पिनाकाइड वर्ग के हैं। इसके अलावा सामान्य जन में कुछ लोगों में मध्य सागरीय प्रजाति के लक्षणों का अंश भी मिलता है। परंतु ये प्रजातीय भिन्नताएं अथवा अधिक सशक्त भाषाई भिन्नता, आर्य भाषा-भाषी, द्रविड़ भाषा-भाषी, आष्ट्रिक मुंडारी भाषा-भाषियों के बीच सांस्कृतिक आदान-प्रदान में कभी आड़े नहीं आयी।

ऐतिहासिक संदर्भ

अब हम उपर्युक्त पूर्व ऐतिहासिक, प्रजातीय, भाषाई तथा क्षेत्रीय पृष्ठभूमि के संदर्भ में ओड़िसा में सांस्कृतिक संश्लिष्टता एवं विभेदीकरण की स्थिति का अनुशोधन करेंगे। परंतु इस पार्श्वभूमि के चित्र को पूरा करने के लिए उसका ऐतिहासिक विवरण भी आवश्यक है। अशोक की कलिंग विजय के पश्चात् हमें ईसा पूर्व दूसरी सदी में खारवेल राजा का उल्लेख मिलता है जिसकी पश्चिम और उत्तर में ओड़िसा की सीमाओं के बाहर दूर-दूर तक विजय से ऐसे सांस्कृतिक प्रभाव आये जिन्होंने कालांतर में आठवीं शताब्दी और उसके बाद मंदिर स्थापत्य में प्रख्यात ओड़िया विधा के विकास में योगदान दिया होगा। बाद की शताब्दियों में ऐसे अनेकानेक स्थानीय तथा क्षेत्रीय वंशों ने राज्य किया जिनके राज्यों की सीमाएं घटती-बढ़ती रहीं और जिनका अस्तित्व भी अत्यंत अल्पकालीन ही रहा। 10 वीं शताब्दी से 12 वीं शताब्दी तक केसरी और सोम वंशों की स्थापना तक हमें वर्तमान ओड़िसा के किसी खास हिस्से में किसी बड़े राज्य का कोई उल्लेख नहीं मिलता है। परंतु उन दिनों भी क्षेत्रीय विविधता तो अवश्य रही होगी। पश्चिमी ओड़िसा के कौशल राज्य का उल्लेख, जिसकी प्रख्यात राजधानी यथातितगर में थी, 11 वीं शताब्दी से मिलता है।

11 वीं शताब्दी के प्रारंभ में चोल राजाओं के आक्रमण और बाद में 12 वीं शताब्दी के प्रारंभ से ओड़िसा के गंगवंशी राजाओं की विजय तथा दक्षिण से सांस्कृतिक प्रभाव के प्रखर संघात एक साथ हुए थे। गंगराजा जो मूलतः शैव थे, संभवतः दक्षिणी संत श्री रामानुजाचार्य के आध्यात्मिक प्रभाव में आकर वैष्णव हो गये थे। राष्ट्रीय महत्व का सबसे पुराना मंदिर जगन्नाथ मंदिर था जिसे 12 वीं शताब्दी में गंगवंश के एक राजा ने बनवाया था। सूर्यवंश के प्रताप रुद्रदेव के राज्य काल में श्री चैतन्य तथा अन्य स्थानीय वैष्णव संतों और कवियों के प्रभाव में ओड़िसा राज्य में वैष्णव धर्म पूरी तरह स्थापित हो गया था। परंतु सन् 1568 में एक स्वतंत्र हिंदू राज्य के रूप में ओड़िसा का अवसान हो गया। मुगलों द्वारा सन् 1592 में विजय के पहले बंगाल के अफगान ओड़िसा के एक बड़े क्षेत्र पर राज्य करते रहे और मुगलवंश का राज्य सन् 1707 ई. तक बना रहा। ओड़िसा सन् 1742 में मराठों के अधीन हो गया और सन् 1803 में अंग्रेजी राज्य में मिल गया। परंतु इसके पहले ही, उसका दक्षिणी हिस्सा जो वर्तमान गंजाम और कोरापुट जिला है, अंग्रेजों

के अधीन हो चुका था और वह सन् 1936 तक शेष ओड़िसा से अलग रहा। इसी वर्ष ओड़िसा की स्थापना का अंतिम चरण 1948 में देशी रियासतों के विलीन होने के बाद पूरा हुआ।

ओड़िसा की सांस्कृतिक विविधता को अच्छी तरह समझने के लिए हमें कम से कम दो प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक इकाइयों पर विचार करना होगा। प्रथमतः हम उन विशिष्ट जातियों पर विचार कर सकते हैं जिनके व्यवसाय परंपरा से निश्चित हैं और जातीय क्रम में जिनका अनुष्ठानिक एवं सामाजिक स्थान सुनिश्चित है। उनके बीच में सामाजिक दूरी अनिवार्य है। उसका रूप चाहे वैवाहिक निषेध हो अथवा खानपान के कुछ नए प्रकार के निषेध, सभी प्रचलित हैं। जैसे बड़े लोगों के पास जाने का तरीका अथवा उच्च श्रेणी के घरों में प्रवेश करने के समय का व्यवहार – सब निर्धारित होता है। तालाब, कुआं, मंदिर जैसी सार्वजनिक सुविधाओं या संस्थाओं अथवा धार्मिक पुस्तकों के वाचन तथा प्रार्थना के केंद्रों इत्यादि में प्रवेश के संबंध में निषेधों के अलावा कुछ निषेध ग्रामीण उत्सवों में भाग लेने के संबंध में भी प्रचलित थे। इन प्रतिबंधों के अलावा जूता अथवा पगड़ी जैसे कुछ पहनावों, किसी विशिष्ट प्रकार से बैठने या चलने पर भी प्रतिबंध था। उदाहरण के लिए ब्राह्मण मुल्लाओं की मुख्य सड़क से गुजरते समय घोड़ा-हाथी या बैलगाड़ी पर चढ़कर निकलने पर मनाही थी। व्यावहारिक रूप में लगभग प्रत्येक जाति की अपनी अलग सांस्कृतिक दुनिया और सामाजिक परिवेश होता था, जिसमें उनके विशिष्ट त्यौहार और अनुष्ठान, उनकी अपनी अधिष्ठात्री देवी और पवित्र स्थान, विवाह, मृत्यु तथा अन्य संस्कारों की अपनी आचार-विधि एवं ग्रामीण समाज में अन्य जातियों तथा धार्मिक समुदायों के सदस्यों से सामाजिक आदान-प्रदान के संबंध में भी अपनी-अपनी सीमा और अपना-अपना स्तर हुआ करते थे। कृषि तथा कटाई, गृह निर्माण अथवा अन्य दैनिक सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा करने जैसे उद्देश्यों की पूर्ति के लिए दैनिक जीवन में विभिन्न जातियों के लोगों को निकट के संपर्क में आना पड़ता था। परंतु ये अंतर्जातीय संबंध सामान्यतः केवल सामाजिक आवश्यकताओं तक ही सीमित रहते थे। दूसरे शब्दों में एक ही क्षेत्र में एक साथ निवास करने के कारण तथा अधिकांश जातियों में व्यावसायिक विशिष्टीकरण की आवश्यकताओं के कारण सभी जातियों में परस्पर निर्भरता का आना अनिवार्य है। परंतु एक विचित्र सामाजिक संस्था, जिसे अनुष्ठानिक मित्रता का पारिवारिक संबंध कहा जाता है, अलबत्ता कुछ सुदृढ़ संबंध स्थापित करने में सहायक हुई। धर्म-मित्र, धर्म-पिता, धर्म-भाई, धर्म-बहन के संबंध बहुधा जाति तथा जनजातीय वर्गों तथा धार्मिक समुदायों की सीमा रेखाओं के बाहर ही बनते थे। इस संस्था के कारण जुड़े हुए व्यक्तियों के परिवारों के बीच भी सामाजिक संबंधों का एक रूप सामने आया।

तथापि, यह अन्योन्याश्रय-संबंध घनिष्ठ सामाजिक संबंधों के रूप में दो मुख्य कारणों

से नहीं उभर पाये। प्रथमतः तथाकथित अस्पृश्य एवं अधिकांश अनुसूचित जातियों के लोग अपने अलग मोहल्लों या हिस्सों में एक दूसरे से दूर निवास करते थे। इस कारण विभिन्न जातियों के बच्चों को मिलने जुलने और बतियाने का अवसर, नहीं मिलता था। दूसरे, विवाह, खानपान तथा अन्य निषेधों के कारण सामाजिक घनिष्ठता नहीं हो पाती थी। केवल कुछ समान उत्सव अथवा महामारी या दूसरे ग्रामों से तकरार जैसे कतिपय ग्राम स्तरीय संकट अथवा किसी परिव्राजक के आगमन पर, अथवा नाट्य नृत्य या अन्य मनोरंजन के कार्यक्रम इत्यादि कुछ ऐसे अवसर थे जिनमें विभिन्न जातियां एक समान कार्यक्रम में सहभागी होती थीं। अधिकांश जातियों के लिए धार्मिक शिक्षा, विशेषकर वेद और पुराणों की शिक्षा पर प्रतिबंध एवं गांव के विद्यालय में प्रवेश के अत्यल्प अवसरों के कारण धार्मिक ग्रंथों एवं अन्य पुस्तकों का ज्ञान आप से आप गांव की उच्च जातियों तक ही सीमित रह जाता था। अनुसूचित जातियां न्यूनतम साक्षरता तक ही सीमित रह जाती थीं। बल्कि समान्यतया इनमें न्यूनतम साक्षरता भी सुलभ नहीं थी। अंग्रेजी प्रशासन के द्वारा उनके लिए स्कूलों के दरवाजे खोलने और उन्हें उसी गांव के पाठशालाओं में पढ़ने का अधिकार दिलाने तक के लिए इन जातियों में साक्षर व्यक्ति मिलना कठिना था। इन्हीं स्थितियों में अधिसंख्यक ग्रामीण युगों तक निरक्षर बने रहे। आदिवासी समाज की पहाड़ों और जंगलों में अलग बस्तियां थीं। शासकीय अधिकारी अथवा छोटे व्यापारी यहां बहुत कम पहुंचते थे, कभी-कभी कुछ हिंदू संन्यासी और बाद के सालों में ईसाई मिशनरी और ठेकेदार भी पहुंचने लगे। मैदानी इलाकों की घाटियों के अलावा, जहां गैर-आदिवासी समाजों का बाहुल्य था, अन्यत्र आदिवासी समाज लगभग स्वतंत्र सांस्कृतिक जीवन यापन करते थे, और उन्होंने अपनी सामाजिक एकांतिकता बनाये रखी। हिंदू संस्कृति की उच्च परंपराएं महाकाव्य, पवित्र मिथक तथा क्षेत्रीय जनश्रुतियां कभी भी सीधे-सीधे अधिकांश लोगों तक नहीं पहुंची। इन मिथकों तथा जनश्रुतियों के प्रसार के अनेक माध्यम थे जो केवल ब्राहमणों या उच्च जातियों की संस्थाओं तक ही सीमित नहीं थे।भागवत टुंगी अर्थात् गांव का प्रवचन जैसी संस्थाओं के माध्यम से जहां शाम को सारे ग्रामीण एकत्र होते थे, अन्य पुराणों की कथा बहुधा ब्राह्मण ही ग्रामजनों को सुनाया करते थे। प्राचीन नाट्य, लोकनृत्य, लोकगीत घुमंतू मनोरंजन दलों, इत्यादि के माध्यम से अनुसूचित जातियों के लोग उच्च जातियों से मौखिक या अनौपचारिक रूप से सीखे हुए ज्ञान का अपनी बोली में, अपने पुट के साथ प्रसारण करते थे। अतएव संचार और परंपरा का मौखिक रूप न केवल सक्षम था वरन् भारत की सभ्यता एवं सांस्कृतिक विरासत में जनसामान्य की सहभागिता के लिए एकमात्र माध्यम भी था। इस मौखिक परंपरा में पठित ग्रंथों के ज्ञान तथा शिक्षा के कुछ स्फुट अंशमात्र ही सन्निहित नहीं थे वरन् उनमें उन सबकी पुनर्व्याख्या तथा स्थानीय परंपरा के साथ समंजित करके समग्र रूप में एक सुसंगत प्रस्तुतीकरण भी था। इसके अलावा

मौखिक परंपरा के विशुद्ध रूप स्थानीय कहानियों, जनश्रुतियों, मिथक और गाने इत्यादि भी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलते रहते थे जिन्हें नृतत्व शास्त्री वेद, महाकाव्य, पुराण तथा अन्य क्लासिक साहित्य की "महान परंपरा" से अलग "लघु परंपरा" के रूप में मानते हैं। इन तथ्यों से ओड़िसा के जन सामान्य के सांस्कृतिक जीवन में न केवल प्राचीन काल में वरन् इस शताब्दी में भी मौखिक परंपरा एवं जन साहित्य की निर्णायक भूमिका स्पष्ट है।

चार सांस्कृतिक अंचल

ओड़िसा के सांस्कृतिक जीवन का एक अन्य पहलू उसकी संश्लिष्टता में और भी वृद्धि करता है तथा सांस्कृतिक विभेदीकरण में एक नया आयाम भी जोड़ता है। यहां हम ओड़िसा में वर्तमान क्षेत्रीय अंतरों की ओर इंगित कर रहे हैं। मोटे तौर पर ओड़िसा की वर्तमान, सीमाओं के अंतर्गत चार सांस्कृतिक अंचल माने जा सकते हैं। बंगाल की सीमा पर स्थित उत्तरपूर्वी अंचल में बंगाली संस्कृति एवं भाषा ने वहां के पहनावे, खानपान, भाषा, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा त्योहारों को प्रभावित किया है। गंजाम और कोरपुट के दक्षिणी अंचल में तेलुगु भाषा-भाषी लोगों की संख्या काफी है और आंध्र संस्कृति एवं भाषा का उनके खानपान, पहनावा और रीतिरिवाजों पर प्रभाव पड़ा है। सम्बलपुर बोलांगिर एवं कालाहांडी के पश्चिमी जिले, सीमा के पार मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ क्षेत्र में जहां आज भी अनेक ओड़िया भाषी निवास करते हैं सांस्कृतिक संस्थाओं, सामाजिक रीति रिवाजों तथा भाषाई और साहित्यिक परिष्कार में विशिष्ट कहा जा सकता है। मोटे तौर पर इस अंचल में कटक, और पुरी के तटवर्ती जिले और उनके समीपस्थ अन्य क्षेत्र आते है। सुन्दरगढ़ और क्योंझर, मयूरभंज के उत्तरी जिलों से लेकर फुलवाणी, कोरापुट के दक्षिणी आदिवासी क्षेत्र तक फैले हुए राज्य के शेष भाग को किसी एक सांस्कृतिक अंचल की सीमाओं में नहीं बांधा जा सकता है। इन क्षेत्रों का एकमात्र समान लक्षण यही है कि इनमें आदिवासी निवास करते हैं, और वे वहां पूरी आबादी के पचास प्रतिशत से भी अधिक हैं। प्रत्येक जनजाति की अपनी बोली है जो कहीं मुंडारी, कहीं द्रविड़ या कुछ मामलों में क्षेत्रीय भाषा ओड़िया हो सकती है। उन सबके अपने आदिम धर्म भी होते है जिसमें हिंदू धर्म के स्थानीय पंथों का न्यूनाधिक रूप में सम्मिश्रण भी होता है। उसके साथ वेशभूषा, खानपान, आवास, स्थापत्य, ग्रामीण संगठन तथा अन्य सामाजिक और आर्थिक लक्षणों में भी वे एक दूसरे से अलग होते हैं। खोंड और साओरा जैसी कुछ जनजातियों में वर्तन, कपड़ा बनने या टोकरी बनाने जैसे व्यावसायिक वैशिष्ट्य के आधार पर आंतरिक सामाजिक विभेदीकरण भी हुआ है। उत्तर और पश्चिमी ओड़िसा के भईयां, वोरोड़ी, गोंड और बिंझवार जैसी बहुत कुछ जनजातियां तो हिंदू हो गयी हैं और उनका स्तर हिंदू जातियों के समान है, उनके हाथ का पानी ब्राह्मण भी पी लेते हैं।

औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था

अंग्रेजी औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के प्रभाव से ओड़िसा की व्यावसायिक संरचना में आने वाले परिवर्तनों का विस्तृत अध्ययन नहीं हुआ है। सन् 1860 के बाद तटवर्ती जिलों में सिंचाई के लिए नहरों के निर्माण तथा व्यावसायिक फसलों के शुरू होने, मशीनों से बनी वस्तुओं के प्रवेश आदि ने ओड़िसा के मशहूर करघा के उत्पादन और हस्तशिल्पों को विस्थापित कर दिया। इसने निश्चय ही पुरानी व्यावसायिक व्यवस्था की नींव हिला दी होगी। कलकत्ता और जमशेदपुर के औद्योगिक क्षेत्र या असम के चाय बागान तथा बर्मा तक प्रवास के लिए नए अवसर सुलभ हो जाने से परंपरा पर आधारित अनेक रीति रिवाज और संस्थाएं शिथिल हुई होंगी या अनेक सामाजिक और आर्थिक सीमाएं भी टूटी होंगी। इन तीव्र तथा दूरगामी प्रक्रियाओं के सम्मिलित प्रभाव कुछ अंशों में नीचे दिये गये व्यावसायिक परिवर्तन के चित्र में प्रतिबिंबित हैं जिसे अंग्रेजों के अधीन ओड़िसा के अधिकांश भागों के जनगणना अभिलेख के विश्लेषण से प्राप्त किया गया है।

सन् 1901-1931 के बीच ब्राह्मण, धोबी, कुम्हार, चषा (कृषक), तंती (जुलाहा), केऊट (मछुआरा), बढ़ई, लोहार, तेली तथा चमार सभी जातियां अपने परंपरागत व्यवसायों से हटी दिखाई देती हैं। केवल करन (लिखने वाले) और गउड़ (ग्वाला) जातियों की संख्या में कमी नहीं आयी है। बल्कि उनमें सन् 1901-1921 तथा सन् 1911-1931 में काफी वृद्धि हुई। खंडाइत (योद्धा) एवं पाणइ (अछूत जुलाहा) के परंपरागत व्यवसाय की प्रवृति में भी उसी प्रकार ह्रास हुआ है। जिनका परंपरागत व्यवसाय कृषि है (चषा और खंडाइत), उनके साथ ही ब्राहमण, करण, बढ़ई, पाणइ, गउड़, कमर, फकीर, वैष्णव और तेली जातियों में भी विभिन्न रूपों में कृषि व्यवसाय सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। पशुपालन करने वाले, खेती करने वाले, मजदूर जैसे व्यावसायिक वर्गो की तत्कालीन सूची में, अंग्रेजी प्रशासन दौरान कला और व्यवसाय, शासकीय नौकरी, उद्योग और परिवहन आदि कुछ नये जाति मुक्त-व्यवसाय भी कुछ जुड़ गए।

स्वतंत्रता के बाद पश्चिमी ओड़िसा की हीराकुंड जैसी बहुद्देश्यीय नदी योजना, मुचुकंड बांध की पनबिजली योजना दक्षिणी ओड़िसा में बालीमेला बांध, कटक में औद्योगिक परिसर की स्थापना के अलावा उत्तरी ओड़िसा में राउरकेला तथा कोरापुट जिले में सुनाबेड़ा और रायगढ़ में भारी उद्योगों की स्थापना ने ओड़िसा में बड़े पैमाने पर औद्योगिक विकास के लिए गति प्रदान की। इससे खनिजों के निर्यात के लिए पाराद्वीप पर गहरे सागरीय बंदरगाह के निर्माण और तालचेर के पास बिजली और औद्योगिक विकास की बढ़ती हुई गति से औद्योगिक श्रमिकों के एक नए वर्ग का जन्म हुआ जो राजनीतिक दृष्टि से संगठित हैं। परंतु उससे भी बड़ी बात तो यह है कि वे लोग न केवल ओड़िसा ही नहीं, बल्कि भारत के विभिन्न भागों से तथा विदेशों से आने वाले विभिन्न सांस्कृतिक, भाषाओं,

प्रजातियों, धर्मावलंवी लोगों के साथ सीधे संपर्क में आये। इसके फलस्वरूप स्ववर्ग केंद्रीयता, क्षेत्रियता और आचंलिकता में कमी आयी है। दूसरी ओर आधुनिक युग के लिए ऊंची शिक्षा और कौशलों के अर्जन पर वल दिया जाने लगा। इसके फलस्वरूप एक सांस्कृतिक प्रक्षेत्र के रूप में इसकी मौखिक परंपरा तथा लोक संस्कृति पर इन बलों का कुप्रभाव पड़ सकता है।

एक दूसरे रूप में उद्योगीकरण और नगरीकरण की परंपरा पूरे देश में लोकसंस्कृति को प्रभावित कर रही है। पहले जब लोग संयुक्त परिवारों में रहते थे तो दादा-दादी अपने पौत्रों को कहानियां और मिथक सुनाकर उनका मनोविनोद करते थे और लोकसंस्कृति नई पीढ़ी को सहज ही अविकल रूप में मिल जाती थी। आजकल उद्योगों तथा अन्य व्यवसायों में लगे लोग गांव के वाहर अपनी पत्नी तथा बच्चों के साथ अलग रहते हैं। कभी-कभी कारखानों, खदानों और वागानों में पति और पत्नी दोनों ही काम करने के लिए जाते हैं। इसके फलस्वरूप पहले की संचार प्रक्रिया अब वहुत कम कियाशील रह गयी है। और उससे संवंधित रीतिरिवाज, मूल्य और विश्व-दृष्टि की व्यापक शिक्षा, वस्तुओं के प्रति वैज्ञानिक दृष्टिकोण आदि के प्रभाव से वदलते जा रहे है। और विभिन्न पीढ़ियों की दूरी वढ़ती जा रही है। अतएव लोकसंस्कृति अपने परंपरागत रूप में संभवतः अन्य प्रदेशों की भांति ओड़िसा में भी ह्रासोन्मुख है।

2

सामाजिक संस्थाएं एवं परंपराएं

इस अध्याय की विषय वस्तु अत्यंत विस्तृत है अतएव हम अपना दायरा लोक कथाओं, मिथकों तथा लोकोक्तियों के उन कतिपय उदाहरणों तक ही सीमित रखेंगे जो सामाजिक संस्थाओं एवं वर्गों के मूल और उनकी वर्तमान स्थिति पर प्रकाश डालती हों। हम विभिन्न जातियों एवं जन-जातियों के उद्‌भव से संबंधित कुछ आदिवासी कथाओं से प्रारंभ करेंगे। यहां हम आदिवासियों में स्वयं अपनी जातियों के उद्‌गम और विस्तार से संबंधित प्रचलित मिथकों पर विचार न कर उन मिथकों एवं कथाओं को लेंगे जो अनेक जातियों के उद्‌गम एवं परस्पर संबंधों को व्यक्त करती हों।

जातियों एवं जनजातियों का उद्‌गम : जनश्रुतियां व मिथक

कोरापुट जिले के कंध डोरा प्राचीन काल का उल्लेख करते हैं, जव एक संतानहीन डोरा दम्पति कन्द-मूल को खोदते-खोदते जीवन यापन करते हुए वृद्ध हो गये। एक दिन वे एक पहाड़ी विशेष पर चढ़ गये जहां उन्हें कन्द की जड़ें मिलीं। जैसे ही उन्होंने उसे खोदा, जड़ के नीचे से गर्भ, झिल्ली और नाड़े सहित एक वच्चा निकला। उसे वे अपने घर ले गये। जब वह बच्चा बड़ा हुआ तो उन्होंने उसका नाम कन्द जड़ रखा। उन्होंने एक वंदर की लड़की से उसका विवाह कर दिया और उसके बाद वृद्ध मां-बाप स्वर्ग सिधार गये। उस लड़के और बंदरिया की दो संतानें हुईं। एक लड़का और एक लड़की और इस प्रकार कन्द जन-जाति प्रारंभ हुई (एलविन, 1954, पृ. 525)।

कोरापुट जिले के गदबा, गोदावरी नदी के किनारे में जन्मे बारह गदवा भाइयों को, अपने आदि-पुरुष मानते हैं। एक दिन शिकार खेलते हुए सवसे बड़े भाई को बहुत प्यास लगी और उसने सबसे छोटे भाई के पास के कुछ मक्का का पेज पी लिया। अन्य दस भाई आगे चलते गये। वहां उन्हें एक सलफी का पेड़ मिला जिसका रस उन्होंने पिया। इसी बीच महाप्रभु ने एक घोड़ा उस जगह भेजा, जहां सबसे बड़ा और सबसे छोटा भाई बैठे थे। बड़े भाई ने घोड़े पर चढ़ने की कोशिश की परंतु घोड़े ने उस पर वार कर दिया।

सबसे छोटे भाई को घोड़ा पकड़े रहने के लिए कहकर वह घोड़े पर चढ़ने के लिए सीढ़ी बनाने के लिये बांस खोजने चला गया। परंतु उसके जाने के बाद छोटा भाई घोड़े पर चढ़ा और उसे भगा ले गया। बड़ा भाई वापिस आया तो उसने घोड़े के पैरों के निशानों के सहारे छोटे भाई का पीछा करने की कोशिश की। अन्य दसों भाई भी बड़े के साथ हो लिये और वे सब जैपुर की पहाड़ियों पर पहुंच गये। परंतु सबसे छोटा वहां पहले ही पहुंच चुका था। और उस क्षेत्र का राजा बन गया। जब वहां सबसे बड़ा भाई पहुंचा तो लोगों ने उसकी कहानी सुनी। चूंकि उसने मक्का के पेज का बोझा ढोया था इसलिए उसे वे गदबा कहने लगे। सबसे छोटे भाई ने जैपुर के राजा की लड़की से विवाह किया। सबसे बड़े भाई के लिए पत्नी न मिलने पर सिपाहियों को गोदावरी नदी के किनारे भेजा गया जहां उन्हें ताड़का आसुरी मिली वह अत्यंत हिंसक थी। परंतु अंत में उन्होंने उसे धर दबाया। उसके कानों में छेद किये और सियाली की लंबी लता से बांध दिया और उसे राजा के पास ले आये। सबसे बड़े भाई ने उससे विवाह किया और सियाली लता की बजाय उसे सोने की बालियां पहनायी। परंतु कुछ समय बाद उस लड़की को जंगल की याद आने लगी और वह भाग गयी। उसके पीछे-पीछे बड़ा भाई भी चला गया। इस प्रकार वह पहला असुर गदवा हुआ। वे दबे जो राजा के लिए भोजन का भार ढोते थे भोई गदबा कहलाने लगे। दस अन्य भाइयों के नाम कंध, वोंडो, दियाडी, झोडिया, परेंगा, डोरा, कोलर, पेंग, चिलेरी तथा भारिया थे। उन दिनों रोना, माली, गौड़ और ब्राह्मण जैसी ऊंची हिंदू जातियां नहीं थीं। परंतु अब राजा गदवा के हाथ का भोजन नहीं करता है। क्योंकि अब ऊंची जातियां आ गयी हैं और वह उन्हीं के हाथ से खाना लेता है (एल्विन, 1954, पृ. 519-20)। जैसा कि स्पष्ट है, यह कहानी जैपुर राज्य की स्थापना के बाद हाल ही के दिनों की होनी चाहिए और जहां तक ताड़का आसुरी का उल्लेख है, उससे रामायण के मिथ के माध्यम से हिंदू प्रभाव भी स्पष्ट होता है। पहाड़ी साबरा तथा सामान्यतः हिंदुओं के उद्गम के विषय में गंजाम जिले के दंतारा गांव से एक अत्यंत रोचक मिथक एल्विन ने प्रस्तुत किया है। (एल्विन, 1954, पृ. 532-633) इस मिथक में रामायण और महाभारत के दैवी चरित्रों जैसे राम, भीम, और सीताबोई आदि तथा सावराओं के जाने पहचाने देवी-देवताओं जैसे केतार-रानी, केतार-गुमी, किट्टुंग की पत्नी अजेरंगदिये (जो अपने सोने चांदी के आभूषण मिट्टी के एक बर्तन में और हर तरह के बीज बांस के डंडे में रखती थी) आदि को मिला दिया गया है। एक साल जब वह डंडे से बोने के लिए बीज निकालने गई, तो उस डंडे से एक लड़की ने आवाज दी और उसे पुत्री के रूप में रख लिया। इसके बाद फिर जब वह नाचने के लिए घड़े से आभूपण निकालने गयी तो एक और लड़की ने आवाज लगायी और उसे भी पुत्री बना लिया। उनके नाम सीता बोई (बांस के डंडे से) तथा रूप सुंदरी (मिट्टी के घड़े से) रखे गये। सीता बोई का विवाह राम्म किटुंग से हुआ और दूसरी लड़की

का बिम्म किटुंग से। साबरा राम्म की संतान है, अतएव उनके पास अनाज की विपुलता है। हिंदुओं के पास जो बिम्म की संतान है, प्रचुर सोना और चांदी है। जब ब्राह्मणों ने राम्म किटुंग की शक्ति को देखा तो उन्होंने उसे पकड़ लिया और एक ईंट के मंदिर में बंद कर दिया। सीताबोई अकेली रह गयी और साबरा जाति की परित्यक्ता महिलाओं की परंपरा के अनुसार रानाडियू किटुंग से पुनर्विवाह कर लिया। वह उसे कुछ दिनों के लिए मंडियाबुर पहाड़ी पर और वहां से पुरी ले गया। यह संभव है कि इस घटना में भगवान जगन्नाथ के साबरा देश से आने की जनश्रुति का आभास हो।

विवाह, परिवार एवं परिजन

भारत में पंजाब, राजस्थान, या गुजरात जैसे अन्य सांस्कृतिक क्षेत्रों की तरह ओड़िसा में विवाह के रागरंग से परिपूर्ण उन्मुक्त, उल्लासमय लोक गीतों से भरापूरा अवसर ही नहीं होता बल्कि जब वधू अपने माता-पिता, वयोवृद्धों एवं हमजोलियों से विदा लेती है उस समय वधू और कभी कभी उसे विदा देने वाले भी, विषादमय पद व्ययथित स्वरों से दुहराते हैं। रोते समय गाये जाने वाले इन पदों को कान्दणा कहा जाता है। पद परम्परागत हैं, जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आते हैं उनमें से कुछ अलबत्ता आशु रचनाएं भी होती हैं जो समय के साथ परम्परा में घुलमिल जाती हैं। लड़की अपने माता पिता तथा अन्य संबंधियों के स्नेहमय लालन-पालन के वातावरण को छोड़कर अनजाने व्यक्तियों के हाथों, जिनके साथ उसे लाकर रहना होगा, क्रूर व्यवहार पाने के संभावित दुर्भाग्य को कोसती है। वह अपनी मां अथवा पिता से व्यंग्यपूर्ण ढंग से, कभी-कभी दिखावटी उलाहना करती हुई पूछती है, कि उन्होंने उसे जन्म के साथ ही क्यों नहीं मार डाला और इस प्रकार अनजाने अगाध दुःख सागर में डुबो देने की पीड़ा से बचा लिया। इन पदों में बहुधा लड़की का निर्दयता पूर्वक मूल्यहीन कौड़ियों (जिनका पहले मुद्रा के रूप में प्रयोग होता था) से विनिमय या विक्रय किये जाने के दुर्भाग्य का उल्लेख भी मिलता है। यह उल्लेख ओड़िसा की 'नीची' जातियों में प्रचलित वधू-मूल्य स्वीकार करने की प्रथा की ओर इंगित है। वह विशेषकर अपनी सास और ननद के हाथों संभावित सभी प्रकार के दुर्व्यवहारों के पूर्वाभास के रूप में स्वयं अपने पति सहित सभी ससुराल वालों की आलोचना करती है। अतएव इन 'अश्रुपूर्ण' 'क्रन्दन' गीतों में हमें दो परिवारों एवं परिजन समूहों का एक चित्र मिलता है —एक पितृ परिवार और लड़की के निकट संबंधियों का और दूसरा श्वसुर परिवार एवं वरपक्ष के निकट जनों का। इन पितृ वंशीय समाजों में बहुधा वधू सुदूर गांव में अपने श्वसुर परिवार के साथ रहने के लिए जाती है। दक्षिण भारत की परंपरा से भिन्न ओड़िसा में मामा की लड़की, बुआ की लड़की या बड़ी बहिन की लड़की जैसी निकट विवाह संबंधियों में विवाह उचित नहीं माना जाता है। एक कहावत में यह भावना समुचित ढंग से व्यक्त होती है। दूर के

संबधी सुदूर पहाड़ी की तरह सुन्दर होते हैं यद्यपि निकट संबंधियों और चचेरे-ममेरे भाई-बहनों में विवाह को प्रोत्साहित नहीं किया जाता है तथापि दम्पति युग्म की उपयुक्तता की सराहना सदा भाई-बहन जैसा जोड़ा लगते है। अनेक लोककथाओं और लोक गीतों की विषय वस्तु एक सामान्य संयुक्त परिवार के दैनिक पारिवारिक दृश्यों की होती है। नवविवाहिता को न केवल श्वसुर गृह के अनेकानेक संबंधियों की विविध अभिरुचियों के अनुसार व्यवहार करना होता है और उनकी बदलती मनःस्थितियों को समझना तथा सहना पड़ता है, बल्कि साथ ही उसे पारिवारिक प्रथाओं, रीति रिवाजों, उपवासों और उसके पति के परिवार और गांव की अन्य विशेष लोकरीतियों को भी समझकर उनका पालन करना होता है। ग्रामीण भारत में अनेक परंपराएं, विश्वास, कौशल, रूढ़ियां तथा कुछ आधारभूत मूल्य तक न केवल एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में बदल जाते हैं वरन् उसी क्षेत्र के विभिन्न गांवों में भी अलग-अलग हो सकते हैं। इन परिस्थितियों में सुदूर ग्राम से आने वाली वधू को अनेक कठिनाइयों का सामना करना होता है।

विवाह का महत्त्व

ओड़िसा की सभी जातियों तथा जन-जातियों में, विवाह को सामान्य यौन संबंध अथवा उप-पत्नी रखने की प्रथा से भिन्न एक महत्त्वपूर्ण संस्था के रूप में मान्यता दी जाती है। पूर्ववर्ती देसी राज्यों तथा स्वतंत्रता के तत्काल बाद भूतपूर्व जमींदारों की समाप्ति तक उप-पत्नी की प्रथा मान्य थी। उप-पत्नी अथवा 'पोइली' अथवा 'राखिनी' का सामाजिक स्तर विवाहिता पत्नी से बहुत नीचा था। परंतु वेश्याओं अथवा अनियत यौन संबंधों वाली स्त्रियों से ऊंचा होता था। उप-पत्नी की संपति में कुछ हिस्सा मिलता था तथा उप-पत्नी को अपने पुरुष, अपने पुत्रों अथवा सौतेले पुत्रों से भरण पोषण पाने का अधिकार था। यह प्रथा इतनी व्यापक थी कि जन्मपत्री निर्माता और वंशावली ज्ञाता उसे अनूठे अर्थ देकर बहुधा संस्था का रूप दे देते थे। प्रकृत विवाह से प्राप्त पत्नी या 'धर्म-पत्नी' तथा उप-पत्नी जिससे पुरुष केवल शारीरिक संबंध ही रखता था या 'काम पत्नी' के बीच विभेद किया जाता था।

तथापि जनजातियों में इस प्रकार की संस्थानुगत उप-पत्नी का रिवाज लगभग अनजाना था। बड़े भाई की मृत्यु के बाद पारिवारिक संपत्ति को अखंडित रखने और वृद्धावस्था में विधवा और उसके बच्चों के भरण पोषण की दृष्टि से छोटे भाई का विधवा भाभी से विवाह की परंपरा उप-पत्नी संस्था से भिन्न है। जन जातियों में विवाह की कुछ प्रचलित प्रथाएं हैंः अपदस्थ या संस्थागत बल प्रयोग (दोनों पक्षों में पूर्व सहमति से दिखावटी अपहरण) के द्वारा विवाह, घुसपैठ से विवाह जिसमें एक पक्ष दूसरे अनिच्छुक पक्ष अथवा असहमत सास ससुर के परिवार में जबरदस्ती घुस कर रहने लगता है; भगोरिया

विवाह जिसमें रिश्तेदारों की स्वीकृति न मिलने पर दो प्रेमी जंगल या किसी सुंदर स्थान में देखने परखने की दृष्टि से या बंधक मजदूरी की प्रथा के अनुसार पत्नी के परिवार में सेवा स्वीकारने हेतु भाग कर चले जाते हैं, ऐसे विवाह गैर-जनजातीय ओड़िसा के लोगों में प्रचलित नहीं है। अधिकांश जनजातियों में परंपरा से स्वीकृत किसी भी रीति के अनुसार पुरुष और स्त्री के साथ साथ रहने का तथ्य ही सभी सामाजिक और आर्थिक प्रयोज़नों के लिए विवाह माना जाता है। जुआंग, भुंइयां, हो, कन्द, उरांव, वों डो और गदबा जैसी कुछ जन जातियों में पहले प्रेम-प्रसंग और सहगमन में प्रयोग के लिए युवा-निवासों को विपुल अवसर मिलता था। संथाल साबरा तथा कतिपय अन्य जन-जातियों में भी विवाह-पूर्व यौन-संबंध की मान्यता मिलती है। विवाह-पूर्व ऐसे यौन-संबंध उसी वंश के कतिपय सामाजिक निषेधों के आधार पर संस्थागत और अनुशासित होते है। विवाह-पूर्व का जीवन कितना भी असंगत क्यों न हो, विवाह में कम से कम पत्नी की ओर से निष्ठा का पूरा आग्रह रहता है और उसका कड़ाई से अनुपालन भी किया जाता है। संपूर्ण जनजातीय भारत में सतत पर-स्त्री गमन या पर-पुरुष गमन के आधार पर विवाह-विच्छेद स्वीकार किया जाता है। आहत पति और आहत पत्नी (बहुधा पत्नी ही आहत होती है।) को मुआवजा पाने का या विवाह के समय अन्य पक्ष द्वारा दिये गये धन तथा उपहारों को वापिस लेने का अधिकार होता है। परंपरा से हिंदू समाज में ऊंची जातियों में विवाह-विच्छेद की सामान्यतः मान्यता नहीं है। पर तथाकथित अछूत जातियों तथा अनुसूचित जातियों की जाति-पंचायतों के द्वारा उपर्युक्त नियमों के अनुसार विवाह-विच्छेद की अनुमति दी जाती रही है।

विवाह का उद्‌गम

दुनिया की अधिकांश जातियों में ऐसी मान्यता है कि पहले पहल भाई और वहिन के वीच पहला विवाह हुआ था जो चेचक या अन्य किसी तरीके से न पहचाने जाने योग्य कर दिये गये थे। ओड़िसा में विवाह की संस्था के उद्‌गम को दर्शाने वाली लोक कथाएं अधिक नहीं हैं। एक मिथक के अनुसार प्राचीन काल में पहाड़ी साबरा विवाह नहीं करते थे। यदि दो व्यक्ति एक दूसरे को प्यार करते थे तो वे स्वेच्छा से साथ साथ रहते थे। इससे वृद्ध जन नाराज हो गये क्योंकि इस स्वैच्छिक व्यवस्था में उनके माता पिता तथा मुखियों को कुछ नहीं मिलता था। न वधू-मूल्य था, न मदिरा के उपहार थे, न शकुन और न विवाह के उत्सव थे। माता पिता और संबंधियों को प्रसन्न करने के लिए अंत में किट्टुंग ने विवाह को संस्थागत करने का निर्णय किया। उसने यह नियम बनाया कि हर युवक अपने होने वाले श्वसुर के घर मदिरा की भेंट लेकर समय समय पर, विवाह के दो या तीन वर्ष पहले से जाये और जब लड़की का पिता स्वीकृत्रि दे दे तभी वे पति पत्नी के

रूप में एक साथ रह सकते हैं। किट्टुंग ने यह भी आदेश दिये कि विवाह के अवसर पर सभी को कुछ न कुछ खुशी अवश्य मिले, इसके लिए प्रचुर मात्रा में मद और नाच का आयोजन होना चाहिए और किट्टुंग ने धमकी दी कि जो ओदश पालन नहीं करेगा वह मर जायेगा (एल्विन, 1954, पृ. 532)। कालाहांडी जिले के कन्ध जन जाति में एक अन्य किंवदंती के अनुसार आदि युग में यौन-स्वैराचार ही प्रचलित था। उन दिनों आदमियों के पास सियांली के बीज थे और वे जंगलों में बंदरों की तरह एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूदते फांदते और सियाली के बीज खाते हुए जीवन बिताते थे। "वे न मां पहचानते थे न वहन"। प्रत्येक अपनी इच्छा के अनुसार भोग करता था। निरंताली सर्वोच्च देवी ने इस निर्बाध भोग-लिप्सा के लिए एक वार कन्ध मुखिया को शासित किया। मुखिया ने उत्तर दिया कि वे जंगलों के बंदरों की तरह रहते हैं और विवाह के अवसर पर भोज देने के लिए उनके पास खाना नहीं है और बिना संबंधियों के विवाह होना संभव नहीं है। तव निरंतली देवी ने उसे चावल की शराब, एक सूअर, एक मुर्गा और कुछ चावल दिये। उसने उसे वह सब खाने और जंगल जाकर वीज वोने के लिए जंगल साफ करने को कहा। उसे फसल पकने के बाद ही विवाह करने के लिए कहा गया। तभी वह यह पहचान सकेगा कि उसकी मां और वहनें कौन हैं। मुखिया ने जैसा कहा गया उसी के अनुसार किया और "बलि प्रसाद का थोड़ा सा हिस्सा सभी को दिया। जब उन्होंने उसे खाया, तब उन्हें ज्ञान हो गया और वे अपनी मां, बहन और पत्नी को पहचानने लगे। इसके वाद आदमी चावल खाने लगे और अपने संबंधियों को पहचानने लगे और विवाह की संस्था स्थायी हो गयी (एल्विन, 1954, पृ. 534-35)। इस मिथक में मनुष्य जिस अत्यंत आदिम स्थिति में पैदा हुआ वहां से संस्थागम विकास तक कैसे पहुंचा—उसका एक व्यवस्थित ब्यौरा प्रस्तावित किया गया प्रतीत होता है। न केवल विवाह एवं पारिवारिक संबंधों की संस्थाएं वरन् बलि की व्यवस्था एवं चक्र खेती की तकनीक और उसके साथ ही उनके इतिहास में आगे चलकर चावल का खाद्य के रूप में समावेश सभी बड़े ही सरल और स्पष्ट रूप में व्यक्त किया गया है। इस मिथक में यह तथ्य भी स्पष्ट रूप से सामने आया है कि विवाह की संस्था धार्मिक, आर्थिक जीवन तथा सुख भोग जैसी अनेक अन्य संस्थाओं से जुड़ी हुई है। संथाल समाज का एक अन्य उदाहरण है जिसमें विवाह के समय मारंग वरुआ को सिन्दूर और स्वर्गवासी पूर्वजों को एक बकरा चढ़ाने की प्रथा है। इन दोनों ही मिथकों में विवाह संस्कार के अवसर पर संबंधियों की उपस्थिति की अनिवार्यता दिखाई गयी है। पुरुष और स्त्री के मात्र साथ रहने और विवाह के बीच जो अंतर है वह भी स्पष्ट रूप से इस मिथकों में उभरा है। पहले मिथक में तो किट्टुंग ने माता पिता तथा संबंधियों को ही विशेषकर प्रसन्न करने के लिए विवाह संस्था को प्रवर्त्तित किया। दूसरे मिथक में यौन—स्वैराचार तथा विवाहित जीवन में स्पष्ट अंतर बताया गया

है और विवाह को ज्ञान तथा सभ्यता का एक प्रवेश द्वार दिखाया गया है।

ओड़िसा के आदिवासी समाज में और हिन्दू कृषकों में भी अविवाहित रहना न केवल संबंधित लड़के या लड़की के लिए वरन् उनके माता पिता और अन्य संबंधियों के लिए भी एक अभिशाप बन जाता है। विवाहित न होने के क्लेश और अभिशाप के संबंध में अनेक लोककथाएं और लोकगीत प्रचलित हैं।

वैधव्य

इसी प्रकार वैधव्य भी इस जीवन या पूर्व जन्म में किसी घोर पाप का फल माना जाता है। ओड़िसा की ऊंची जातियों में विधवाओं का पुनर्विवाह नहीं होता था और उन्हें जीवन के सभी आनन्द और उल्लास की ओर से दृष्टि हटाकर अनेक उपवास, प्रायश्चित और कठोर आत्म-निषेध करना होता था। उन्हें न तो अपने पिता के घर और न ही पति के घर, कहीं भी अच्छा व्यवहार नहीं मिलता। अतः वे अशुभ व्यक्ति एवं भार स्वरूप मानी जाती। उनके दुखमय जीवन की झलक अनेक लोक कथाओं और लोक गीतों में मिलती है। तथाकथित निम्न वर्गों और जनजातियों में विधवाओं को इतनी यातना नहीं भुगतनी पड़ती थी। वशर्ते कि वे विवाह योग्य आयु की हों और उन्हें टोनही (डायन) न मान लिया गया हो। बड़े भाई की विधवा पर छोटे भाइयों में से एक के उत्तराधिकार परंपरा के सिवाय पुनर्विवाह की प्रथा भी बहुधा प्रचलित थी। परंतु विधवा का विवाह उत्सव रूप नहीं होता था और न उसमें विशेष व्यय ही किया जाता था।

पारिवारिक तालमेल

बोडो परजा जैसी कुछ जनजातियों में पारिवारिक तालमेल को वहुत महत्व दिया जाता है। इस उद्देश्य के लिए न केवल दंपत्ति के नजदीकी संबंधी वरन् अलौकिक शक्तियों की सहायता भी ली जाती है और गृह देवता 'गुप्तासिंह' को प्रसन्न करने के लिए पूजा दी जाती है। गुप्तासिंह की पूजा न केवल अलौकिक विपदा के स्थान को शुद्ध करने के लिये वरन् वधू को उसके पति के वंश और कुल के भाईचारे में सम्मिलित करने के लिए भी की जाती है (एल्विन, 1954, पृ. 100)।

ओड़िसा के लोक साहित्य में संयुक्त परिवार के लोगों, दादा-दादी, माता-पिता, उनके भाइयों के परिवार, पुत्र-पुत्रियों, चचेरे भाई-बहनों, पौत्र-पौत्रियों के संबंधों का प्रचुर वर्णन मिलता है। किस प्रकार पत्नी को पति के बड़े भाई की नजर से बड़े सम्मान पूर्वक बचना होता है, अपने सास-श्वसुर का आदर करना होता है, किस प्रकार वह अपने देवर और छोटी ननद से हंसी-मजाक करती है परंतु पति की बड़ी वहन से सम्मानपूर्वक अलग रहती है, किस प्रकार ननदों से उसे प्रताड़ना मिलती है, किस प्रकार वह जो कुछ भी भला-बुरा

करे, उसका उलाहना उसके मां बाप, उसके मायके के संबंधियों और गांव को मिलता है, किस प्रकार पति उसके पास थोड़ा-सा भी समय नहीं बिता सकता है और न घर के अन्य सदस्यों को नजर-अंदाज कर उसकी छोटी-मोटी साध पूरी कर सकता है। यह सब अनेकानेक लोकगीतों, लोककथाओं और लोकोक्तियों में बड़े विशद रूप में मिलता है। इसी प्रकार भाइयों के बीच ईर्ष्या; भानजे तथा विवाह के बाद भाई और बहन के बीच स्नेह संबंध ; बहन अथवा लड़की के पति के परिवारों के लिए खाद्य और कपड़ों के उपहार भेजने की प्रथा, जिससे विवाह के आधार पर बने संबंध और भी सुदृढ़ होते हैं--इत्यादि बातें ओड़िसा के पारिवारिक जीवन से संबंधित लोकगीतों की प्रचलित विषय वस्तुएं हैं।

प्रजनन और बंध्यापन : मान्यताएं व मिथक

जिस प्रकार स्त्री और पुरुष की अविवाहित स्थिति असामान्य, लज्जाजनक और करुण मानी जाती है उसी प्रकार वंध्यापन भी अपमान जनक माना जाता है। वंध्या स्त्री इतनी अशुभ मानी जाती है कि यह विश्वास किया जाता है कि जहां वह स्नान करे वहां अन्य स्त्रियों को स्नान भी नहीं करना चाहिए। वंध्या स्त्री के संपर्क से दूषित जल को बतख तक नहीं पीती है। लोग बंध्यापन के लिए भाग्य को दोष देते हैं परंतु लगभग सभी मामलों में वे पुरुष को दोष न देकर महिला को ही दोषी बनाते हैं। शिव तथा पार्वती एवं अनेक स्थानीय अन्य देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के उद्देश्य से अनेक प्रकार के उपवास, प्रायश्चित और अन्य साधनायें, आध्यात्मिक रूप से शक्तिशाली सन्यासियों की भक्ति पूजा, प्रसिद्ध तीर्थो की यात्रा और वहां स्नान, यह सभी कुछ वंध्यापन के अभिशाप से मुक्ति पाने के लिए किया जाता है।

जन जातीय समाज में वंध्यापन संबंधियों के लिए भी चिन्ता का विषय होता है और उसके कारण विवाह विच्छेद अथवा दूसरी या तीसरी स्त्री से विवाह तक हो सकता है। इन आदिम जातियों में प्रजनन और वंध्यापन से संबंधित कई मिथक भी हैं। कुट्टिया कंध जाति में विश्वास किया जाता है कि प्राचीन काल में निरंताली महाशक्ति ने बकरी को एक साथ दो बच्चे जनने के लिए कहा परंतु मनुष्य समाज में स्त्री को एक बार में एक संतान के लिए ही आज्ञा दी। बीस परिवारों के एक गांव में उन दिनों प्रत्येक स्त्री की संतान नहीं होती थी केवल पांच परिवारों में ही संतानें होती थीं। परंतु निरंताली ने सोचा कि यदि सभी स्त्रियों के एक बार में केवल एक ही संतान हो तो आबादी बहुत धीरे-धीरे बढ़ेगी। इसलिये उसने परमुगुट्टी की पत्नी को बुलाया और उसे एक आम और कुछ इमलियां खाने को दी और उसकी जीभ पर यह कहते हुए कि वह एक साथ ही एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म देगी एक चिह्न बना दिया। उसके बाद उसने लोहार की पत्नी को बुलाया और उसे दो आम दिये और उसकी जीभ पर मिर्च के आकार का एक निशान

बना दिया। कालांतर में दोनों महिलायें गर्भवती हईं और परमुगुट्टी की पत्नी के एक पुत्र और एक पुत्री हुई और लोहार की पत्नी के दो लड़के हुए। निरंताली ने बताया कि उन्हीं स्त्रियों को जुड़वां बच्चे होंगे जिनकी जीभ पर उसका विशेष चिह्न अंकित होगा। (एल्विन, 1954, पृ. 481) यद्यपि कुट्टिया कन्धजुड़वां बच्चे होने पर कोई चिन्ता नहीं करते, पर उनको जन्म देना शुभ नहीं माना जाता है और यही कारण है कि महिलायें और पुरुष तक दो जुड़वां केले या अन्य कोई जुड़े हुए फल और सब्जी खाने से परहेज करते हैं

कुट्टिया लूंध में गर्भाधान के विषय में कुछ रोचक मान्यताएं हैं। एक मिथक के अनुसार निरंताली के तीन बच्चे—एक लड़का और दो लड़कियां थीं। उन दिनों किसी और की कोई संतान नहीं थी। इसलिए निरंताली एक फल विशेष लायी और उसे लड़के के खाने के लिए अलग रख दिया। परंतु वह दोनों लड़कियों को रखा मिल गया और उन्होंने उसे खा लिया। उनके पेट में वह फल एक छोटे से पेड़ के रूप में जम गया और उसमें नाल-फूल रूपी फल लगा। इस नाल में से इस दुनिया के बच्चों का आगमन हुआ है।

पहाड़ी साबरा में भी ऐसा ही एक मिथक है जिसमें यह स्वीकार किया गया हैं कि पुरुष की भूमिका के बिना बच्चों का जन्म नहीं हो सकता है। पुराने समय में जिन महिलाओं के बच्चे नहीं होते थे, उनके पेट पर कोई निशान नहीं होता था। बड़े देव किट्टुंग ने दराम्मसुम देवता को बुलाया और उससे अपने कान में से कुछ मैल निकाल कर देने के लिए कहा जिससे कि वह महिलाओं को गर्भवती बनाने के लिए उनके सिर पर लगायी जा सके। परंतु वह देवता सहमत नहीं था और किट्टुंग को उसे यह वचन देकर जबरदस्ती मनाना पड़ा कि जब भी कोई संतान होगी, उसका पिता उसे एक मुर्गी चढ़ायेगा। उस देवता को यह भी कहा गया कि बच्चे पर वह अपने नाखून से एक निशान बना दे और बच्चा उसका हो जायेगा। तब जाकर दराम्मसुम राजी हुआ। जब भी बच्चे पैदा होते थे। दराम्मसुम उनके पेट को अपने नाखून से खरोच देता था, अथवा उनके गालों को चूम लेता था और इस प्रकार, जैसी यह कथा कहती है, सभी बच्चों पर यह सिंद्ध करने के लिए कि वे उसके कारण हुए हैं, चिह्न अंकित कर देता था। (एल्विन, 1954, पृ.482)

ओड़िसा के गैर आदिवासी लोगों में ऐसे मिथक और ऐसी कहानियां न भी हों, जिनमें पुरुष को गर्भाधान की क्रिया में लगभग संयोग रूप, आनुषंगिक भागीदार माना जाये, परंतु उनमें यह पक्का विश्वास है कि देवी, देवता विशेष, अथवा कुछ योगी और संन्यासी अथवा उपवास एवं तीर्थयात्रा के आध्यात्मिक गुण, बच्चों के जन्म के लिए, विशेषकर उस स्थिति में जब कोई स्त्री बहुत दिनों से निस्संतान रही हो, कारक हैं। नेक लोक कथाओं में बंध्या स्त्री को अलौकिक या मानवेतर स्रोतों से वरदान के रूप में संतानोत्पत्ति के लिए जनन शक्ति संपन्न एक विचित्र फल या फूल या अन्य कोई वस्तु देने का प्रसंग आता है।

बेटे की चाह

ओड़िसा की जनजातियां तथा अन्य समाजों में लड़के की चाह व्यापक रूप से विद्यमान है। चूंकि ओड़िसा में सभी समाज पितृवंशीय हैं, जिसमें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक तथा अनुष्ठानिक मामलों में पुरुषों का महत्त्व है। अतएव लड़की की तुलना में लड़के के जन्म के समय जन्मोत्सव अधिक विस्तृत और उल्लासमय होता है। परंतु केवल उच्च हिंदू जातियों में ही लोग कम से कम एक लड़का पाने को चिन्तित हो जाते हैं जिससे वह पूर्वजों की आत्माओं को उचित तर्पण देने के लिए अनुष्ठानिक रूप से अधिकृत हो सकें। जब तक एक ऐसी पुरुष संतान द्वारा तर्पण न दिया जो पितृवंश को चलाने वाला हो, पूर्वजों को नरक की यातना सहनी पड़ेगी। यह विदित है कि किस प्रकार लोग पुत्र की आशा में अनेक विवाह करते हैं और किस प्रकार यदि संयुक्त परिवार में कई भाइयों के एक ही पुत्र हों तो उसकी कितनी लाड़ प्यार से देख-रेख होती है। परिवार में लड़कियों की कीमत पर लड़कों का ध्यान केंद्रित होने से लड़कियों के शारीरिक और बौद्धिक विकास पर भी बहुधा अत्यंत कुप्रभाव पड़ता है।

मृत्यु एवं अंत्येष्टि

भारत के सभी हिंदुओं की भांति ओड़िसा के हिंदू भी लाश को जलाते हैं परंतु कुछ स्थितियों में इसके अपवाद भी मिलते हैं। छोटे बच्चे, महामारी या सर्पदंश से मरने वाले प्रौढ़ और संसार का त्याग करने वाले संन्यासी को दफनाया जाता है अथवा कुछ स्थितियों में शव को जल में प्रवाहित किया जाता है। जन जातियों में यह प्रथा विभिन्न जातियों में अलग-अलग है। गोंड, भुइयां तथा अन्य जातियां जो हिंदू हो गयी हैं, अपने मृतकों का दाह संस्कार करती हैं और शेष जातियां उन्हे दफनाती हैं। परंतु यदि किसी व्यक्ति को शेर मार डाले तो दाह संस्कार की प्रथा होने पर भी उसका दाह संस्कार नहीं किया जाता है। जब एक गर्भवती स्त्री मरती है तो उसके पेट से भ्रूण को निकालकर उसे अलग से गाड़ते हैं। चूंकि यह आम धारणा है कि गर्भवती स्त्री मरने पर भयंकर भूत बन जाती है जो अपनी अतृप्त आकांक्षा के कारण दूसरों के बच्चों को छीनने की कोशिश करती है। अतएव उसकी हड्डियों को तोड़कर फेंक दिया जाता है। तथा कांटे और अन्य अवरोधक वस्तुएं भी उसकी कब्र में रख दी जाती हैं जिससे कि जहां वह गाड़ी जाये, वहीं पर बंधी रहे।

आत्मा की अमरता में आस्था

हिंदू, ईसाई, मुसलमान या जनजाति, चाहे कोई भी क्यों न हो, आत्मा की अमरता में सभी विश्वास करते हैं। हिंदुओं का विश्वास है कि पूर्वजन्म के पाप पुण्य के आधार पर आत्मा

मनुष्य या किसी अन्य योनि में ज़न्म लेती है। शरीर से निकल कर आत्मा को अपने कर्मफल अथवा अपने अनेक पूर्व जन्मों के कर्मो के फलों के संतुलन के आधार पर स्वर्ग नरक में जाना पड़ता है। प्रति वर्ष पूर्वजों की आत्माओं को कम से कम एक बार 'श्राद्ध' तर्पण दिया जाता है। मुसलमान और ईसाइयों के अनुसार आत्माओं की सृष्टि से अंत में परमात्मा के अंतिम निर्णय के दिन का इंतजार करना होता है। परंतु जन-जातियों में विश्वास है कि आत्मा बहुधा पाताल लोक में जाती हैं परंतु वह अपने जीवित वंशजों से सदा संपर्क बनाये रखती है तथा उनकी रक्षा करती है। अथवा यदि वे चरित्र से या आध्यात्मिक दृष्टि से कुमार्ग पर जायें तो उन्हें बीमारी या अन्य कष्ट दे कर दंडित करती हैं। अनेक जन जातियों में यह विश्वास है कि दादा-दादी अपने ही परिवार में फिर से जन्म लेते हैं और इसी कारण नाती पोतों को उन्हीं का नाम दिया जाता है।

खर्चीली अंत्येष्टि : एकता और सहानुभूति

लगभग सभी समाजों में अंत्येष्टि संस्कार इतना खर्चीला होता है कि अनेक आदिवासी परिवार उसका भार उठाने के निमित्त किये गये कर्ज के कारण पीढ़ियों तक अपने समृद्ध भाई बंधुओं या पड़ोसियों के बंधक से बन जाते हैं। कोरापुट के गदबा अथवा गंजाम और वहीं के ही साबरा तथा कुछ अन्य जातियों को मरने के बाद होने वाले प्रारंभिक आयोजन के कुछ साल बाद विशद आयोजन करना पड़ता है। अंतिम क्रिया को पूरा करने के बाद आदिवासियों में पूरा गांव ही आमोद प्रमोद में लीन हो जाता हैं जबकि अन्य जातियों में सगे संबंधी ही इस खुशी में शामिल होते हैं। परंपरागत आदिवासी गांव की एक यह भी विशेषता है कि मृत्यु के दिन वे सब अपना पूरा काम बंद कर शोकाकुल व्यक्तियों का सभी तरह से हाथ बंटा कर एकता और सहानुभूति का प्रदर्शन करते हैं।

मृत्यु से जुड़े मिथक व कथाएं

हिंदू पुराणों की सत्यवान सावित्री की कथा के समानांतर यहां हम एक बिंझवार कहानी का वर्णन करेंगे। एक साबरा किसी नगर में अपनी पत्नी और पुत्री के साथ रहता था। माता पिता के मरने के बाद लड़की अकेली रहने लगी। अम्फापुर के एक साबरा ने आकर उससे विवाह प्रस्ताव किया जो उसने स्वीकार कर लिया। परंतु वह चाहती थी कि वह छह महीने तक प्रतीक्षा करे तब उसने अपने मृत माता पिता की आत्माओं का आह्वान किया। उसके माता पिता अपने साधारण मानवीय रूप में प्रकट होकर उसे उस व्यक्ति के साथ विवाह करने की अनुमति दे दी और उसे यह वर भी दिया जिससे कि वह मृत्यु के दूत को देख सुन सके। उसके बाद वह लड़की विवाह कर अपने श्वसुर के घर छह महीने रही। तदनंतर उसका पति बीमार पड़ गया। एक दिन उसने मृत्यु के दूतों को देख

लिया जो उसके पति की आत्मा को लेने आये थे। लड़की ने उसकी आत्मा को तीन महीने तक छोड़ देने की उनसे प्रार्थना की। मृत्यु के दूतों ने उससे कहा कि यदि वे खाली हाथ जायेंगे तो यमराज उन्हें प्रताड़ित करेंगें, तो उसने उन्हें एक भैंस के सींग में छिपा दिया। यमराज को चिंता हुई और उसने अम्फापुर से साबरा की आत्मा को लाने के लिए और दूतों को भेजा, तब वह मर गया। लड़के के माता पिता ने उसके उचित संस्कार किये। उसके कुछ समय बाद लड़की ने साढ़े ग्यारह बोतलें मद बनायी और मातमियों को दी। संध्या के समय जब वे मद पी रहे थे तो यमराज अपने पांच अनुचरों के साथ एक साबरा के रूप में आये और उस रात पूरे सौ आदमियों ने मद पिया। लड़की भी मदमस्त हो गयी थी और बेझिझक बात कर रही थी। उसने घमंड के साथ कहा "देखो मैंने यमराज के दूतों को अपने भैंसे के सींगों में कैसे बंद कर दिया है और मैंने साढ़े ग्यारह बोतल शराब से सौ आदमियों को मदमत्त कर दिया है। यमराज ने उसे दिखाने आग्रह किया। तब उसने घमंड के साथ उस सींग को उठाया और वे दूत उसमें से निकल भागे। और तब से आदमी मृत्यु से नहीं बच सका। यमराज और उसके अनुचरों की इस स्पष्ट रूप से हिंदुकृत कहानी में विशिष्ट आदिवासी सौरभ भी पहचाना जा सकता है (एल्विन, 1954, पृ. 507-508)।

कोरापुट के गदबा, जिन पर हिंदू प्रभाव अत्यल्प है, कहते हैं कि इस संसार में मृत्यु लाने के लिए देवता जिम्मेदार थे। प्राचीन काल में कलका देवता नाम का एक देवता था, जिसके अन्य कई छोटे देवता अनुचर थे। उन दिनों मनुष्य मरते नहीं थे और देवता अच्छी तरह से काम नहीं करते थे क्योंकि उन्हें मानव लाशें खाने को नहीं मिलती थीं। कलका देव को उनकी भूख और कमजोरी का कारण मालूम हो गया था। वह अपनी बहन के पास गये, जिसने उसी समय एक लड़की को उठाया, उसे मारा, उसकी हड्डियों को पीसकर चूरा बनाया और उसकी एक रोटी बनायी। एक बुढ़िया मालिन के रूप में वह गांव गांव उस रोटी को बेचता फिरा। जिसने वह रोटी ली, वह मर गया। इस प्रकार मृत्यु संसार में आयी और देवता संतुष्ट हुए (एल्विन, 1954, पृ. 509)।

जाति पंचायतें, सामाजिक कानून और अपराध

ओड़िसा में चाहे हम विभिन्न जातियों को लें अथवा जनजातियों को, यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक समाज में व्यवहार और नैतिकता के अपने अपने मानदंड हैं। भारत के दूसरे भागों की तरह ही सभी जातियों में ग्राम अथवा ग्रामों के छोटे समूह और कुछ मामलों में पूरी जाति के लिए ही विभिन्न स्तरों पर जाति पंचायतें होती हैं। जुलाहा, कुम्हार, तेली, अथवा ब्राह्मण जैसे एक व्यापक जाति वर्ग हैं, जिसके अंतर्गत अनेक उपजातियां प्रभावी सामाजिक इकाइयों के रूप में क्रियाशील रहती हैं। वास्तव में जाति पंचायतों से तात्पर्य

पारंपरिक ढांचे में उपजाति पंचायतों से ही है। उप जातियों के वयोवृद्धों की इस पंचायत को सामाजिक अंतर्संबंधों, विशेषकर अन्य जातियों के सदस्यों के हाथ से खाना और पानी लेने एवं तथाकथित नीची जातियों के सदस्यों से यौन संबंध न रखने की दृष्टि से नियंत्रण रखने का अधिकार था। इसके अलावा पंचायतों को विवाह नियमों के उल्लंघन, विवाह विच्छेद और पर-स्त्री-पुरुष संबंध अथवा पारिवारिक बंटवारे के मामलों में तथा व्यवसाय या जजमानी के नियम निर्धारण इत्यादि पर विचार कर निर्णय देने का अधिकार था। इसके साथ ही पंचायत अपने नियमों और निर्देशों का पालन न करने की स्थिति में उपजाति के सदस्यों को जाति च्युत करने के लिए भी सक्षम थी और वह किसी विशिष्ट पापकर्म – जैसे–वर्जित यौन संबंध, गो हत्या, ब्रह्म हत्या, किसी घाव का नासूर बन जाना, व उसमें कीड़े पड़ जाना; ये सभी घोर अतिचार आदि माने जाने वाली घटना के शमन के लिए अनुष्ठान भी निर्धारित करती थी। यद्यपि सामाजिक और जातीय मामलों में हिंदू राजा अपील के लिए सर्वोच्च बिंदु था और उसे अपने ब्राह्मण कुल-पुरोहित या अन्य विद्वान ब्राह्मणों पर निर्भर रहना होता था, तथापि जाति-पंचायतें अपना कार्य स्वयं निपटाती थीं और वे अर्ध-स्वायत्त होती थीं तथा आत्म नियंत्रण की स्थिति में थीं। संबंधित जाति के लिए उसकी विचित्र प्रथाएं एवं परंपराएं सामान्य कानून की तरह से होती थीं और राजा तथा न्यायालयों को उनकी वैधता स्वीकार करनी होती थी।

राजनैतिक शक्ति एवं प्रभुत्व

जातियों की तरह ही प्रत्येक आदिवासी समाज में गांव के अनुष्ठानों, सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक कार्यों के लिए, कम से कम एक ग्राम परिषद होती थी। उरांव, मुंडा, संथाल, हो इत्यादि समुदायों में ग्राम समूहों के लिए भी संगठन होते थे जिनमें आनुवंशिक पदों के लिए समय समय पर चुने हुए अनेक पदाधिकारी होते थे। एक राजा को अपना समर्थन समाप्त कर अन्य राजा से संबंध स्थापित करने का राजनीतिक निर्णय लेने का अधिकार केवल आदिवासी ग्राम तथा आंतरिक परिषदों को प्राप्त था, अन्य जाति पंचायतों को नहीं। आदिवासी समाज राजाओं से लगभग स्वतंत्र थे। संबंधों में इन्हें कई मामलों में आदिवासियों ने प्रस्तावित किया, समर्थन दिया और इस प्रकार आवश्यक वैधता प्रदान की थी। जाति पंचायतों की तरह इनके स्व-नियंत्रण के अधिकार और कर्तव्य थे, पर राजा अथवा ब्राह्मण विद्वानों के उच्चाधिकार को या तो आवश्यक नहीं माना जाता था अथवा उनका विरोध होता था। उत्तर भारत के आदिवासियों में गांव के बूढ़े, कुल के अग्रज, पुजारी और अंतर्ग्राम संगठनों के अधिकारी अथवा दक्षिणी ओड़िसा के कंध और साबरा में प्रचलित राज्य के प्रशासनिक कार्यों के लिए अनेक संबंधित ग्रामों को समाहित करते हुए "मुठा" संगठनों के पदाधिकारियों का सामान्य आदिवासी जीवन पर व्यापक प्रभाव

था। इसका कारण यह था कि वे परंपरागत कानूनों का अर्थ निकाल सकते थे और उन्हें नयी आवश्यकताओं और परिस्थितियों के संदर्भ में लागू भी कर सकते थे।

कानूनी अपराध जिन्हें आदिवासी अपराध ही नहीं मानते

ओड़िसा के कृषक और अन्य ग्रामवासी बहुत समय तक, पहले स्थानीय राजाओं के न्यायालयों के अंतर्गत रहे, फिर अफगान और मुगल शासकों के कानूनों और उसके बाद अंग्रेजी न्यायालयों के अधीन हुए जिनमें अपराध की गंभीरता को आंकने के लिए एक विशद प्रक्रिया है। इस प्रकार वे अपराध का निर्णय करने और उसके लिए दंड निर्धारण करने में विदेशियों के तौर-तरीकों से भी परिचित हो गये थे। हिंदू ग्रामवासी या आदिवासी कई अपराधों को अपराध ही नहीं समझता। उदाहरण के लिए अंग्रेजी भारत के विधि विधान में जातिगत अपराध के लिए किसी व्यक्ति को जाति से बहिष्कृत करना गैरकानूनी था अथवा आदिवासी का अपने घर पर शराब बनाना जिसे वह अनादि काल से करता चला आ रहा है, अथवा चक्र कृषि के लिए जंगल काटना आदि को अपराध मानना, उनकी समझ से परे था। चूंकि अंग्रेजी कानून और एक आधुनिक कल्याणवादी प्रजातांत्रिक राज्य के कानून—अभी भी प्रशासकों के लिए आदर्श माने जाते हैं इसलिए स्वतंत्रता के बाद से वर्तमान कानून के अंतर्गत आचार संहिता में ध्यान दिया गया है। अतएव यह आश्चर्य की बात नहीं कि जब पहाड़ी बोडो न्यायालय की दृष्टि में 'अपराध' कर रहा हो, उस समय वह 'अपराधी' हत्या या हिंसा की अन्य घटनाओं के संबंध में वस्तुतः अपनी परंपरा के अंतर्गत अपने न्यायोचित कर्तव्य का पालन कर रहा हो।

हत्या

ओड़िसा के आदिवासियों में संपत्ति पाने के लिए हत्याएं बहुत कम होती हैं। जबकि अन्य लोगों में हत्या का एक महत्वपूर्ण कारण यही है। परंतु यौन-संबंध में ईर्ष्या-जनित हत्या का उनमें बाहुल्य है। एल्विन ने बस्तर के मुरियों में हत्या और आत्महत्या के मामलों का अध्ययन किया था। उनके अनुसार मुरिया के द्वारा की गयी शायद ही कोई हत्या 'मारने की लालसा जनित हत्या' कही जा सकती है। वह इस निष्कर्ष पर पहुंचा था, कि मुरियों द्वारा की गयी हत्याओं में से अनेक हत्याएं असामाजिक अपराध नहीं मानी जा सकती है। वरन् प्रबल सामाजिक प्रकृति की अभिव्यक्ति है। उन्होंने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं : एक पिता अपने पुत्रों की पत्नियों को प्रलोभन देता है और उनका स्वच्छन्द उपभोग करने के लिए लड़कों और उनकी मां को अपने घर से निकाल देता है। उनका भरण पोषण करने से इन्कार कर देता है। ऐसे व्यक्ति की हत्या असामाजिक न होकर सामाजिक सहज प्रवृत्ति का उद्घाटन है। मारिया की दृष्टि में दैनिक जीवन की व्यवस्था और सुरक्षा के

लिए डायन सबसे बड़ा खतरा है, इसलिए जब वह डायन समझकर हत्या किसी स्त्री की करता है, तब वह किसी हिंसावेश में नहीं बल्कि बोध संबंधी कमी के कारण यह हत्या करता है (एल्विन, 1950, पृ.54)।

एल्विन ने थकान को अपराध का एक महत्वपूर्ण कारण माना है। थकान या घोर परिश्रमपूर्वक कठोर कार्य अथवा तदनुरूप अन्य परिस्थितियां जो व्यक्ति की कार्य क्षमता एवं उसकी कार्य इच्छा को तनावपूर्ण बनाती है, वही मस्तिष्क में गंभीर विकृति या रुग्णता उत्पन्न कर देती है, जिससे अपराध होते हैं। जीवन और कार्य की कठोर स्थितियों में अपराध स्वाभाविक हैं। ओड़िसा के अनेक आदिवासी समुदाय बड़ी कठिनाई से मात्र जीवन धारण के स्तर पर जीवित हैं। एल्विन ने ऐसे अनेक असंगत अपराधों का उल्लेख किया है। जैसे किसी आदमी का खाना समय पर नहीं बना, क्षणिक क्रोध के वश में अपनी अत्यन्त प्यारी पत्नी को भी मार डालता है। एल्विन के अनुसार इसका कारण थकान ही है। शराब दूसरा महत्वपूर्ण कारण हो सकता है। परंतु मारिधों में हत्या के सौ मामलो में से केवल उन्नीस मामलों में ही चावल का लारा या महुए की शराब, सुलफी या ताड़ी पीने को एल्विन ने हत्या के कारण के रूप में पाया (वही 3, पृ.140–147)।

यहां हम लांदा, मद और शराब से संबंधित कतिपय लोक-कथाओं का ही उल्लेख करेंगे जिसमें यह कहा गया है कि जब आदमी ने ताड़ी पीना शुरू किया तभी उन्होंने एक दूसरे की चोरी करना सीखा और अनेक झागड़े और बलवे भी हुए (एल्विन, 1954, पृ. 199)। वैसे जनजातियों में जो कृत्य, उनकी अपनी दृष्टि में अपराध होते हैं, उन अपराधों के मामलों के निराकरण के लिए उनकी अपनी व्यवस्था और न्याय के अपने मानदंड होते हैं। परंतु आधुनिक राज्य संगठन सामाजिक नियंत्रण के अनेक परंपरागत तरीकों को मान्यता नहीं देते और उन्हें ध्यान में भी नहीं रखते। इसीलिए यह आश्चर्य की बात नहीं कि कभी कभी यह सुनने में आये कि कुछ अपराधों में साक्ष्य दबा दिया गया। दूसरी ओर ऐसे भी अनेक उदाहरण है जिनमें आदिवासी हत्या करने के तुरंत बाद स्वयं ही निकटतम पुलिस थाने पर उस अपराध की सूचना देने चला जाता हैं। जनजातियों की ईमानदारी, सत्यवादिता और सरलता अपराधों के दायरे में भी स्पष्ट रूप से विद्यमान है।

3

ओड़िसा का मौखिक साहित्य : एक पर्यवलोकन

किसी लब्धप्रतिष्ठ लेखक की उक्ति है – "ओड़िसा में वृक्ष और वल्लरियां गाती हैं" यह बहुत कुछ सत्य भी है। ओड़िसा लोकसाहित्य में अत्यंत समृद्ध है। सामान्यतया यहां के लोग स्वभाव से भावुक और चेतना से सृजनशील हैं। कोई भी गीत या कथा, लोक गायकों अथवा कथागायकों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी सुरक्षित रखी जाती है, क्योंकि अपने साहित्य प्रेम के कारण उसके गायन या पाठ में उन्हें आनंद मिलता है। एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति, एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक संप्रेषित करने की प्रक्रिया में क्रमशः गायकों की रुचि के अनुरूप लोकगीतों का परिवर्तित हो जाना अवश्यम्भावी है। ऐसी स्थिति में गीतों को मूल रूप को पहचानना और उसके विकास को खोज लेना कठिन है। हां, देश के विभिन्न भागों में इनके जो कई प्रकार के रूप प्रचलित हैं उनमें एक समान विचारों की अभिव्यक्ति पायी जाती है।

लोकगीत मौखिक रचना है, जो कुछ प्रतिभाशाली लोगों की तत्काल स्वयंस्फूर्त सर्जना होती है, जिनके पास कहने के लिए भी न तो कवि-कर्म योग्य आवश्यक शिक्षा होती है और न ही प्रशिक्षण; पर ये लोग परंपरा से या सप्रयास काव्य रचना की दक्षता प्राप्त कर लेते हैं।

लोक रचनाएं कई मामलों में परिष्कृत साहित्य से भिन्न हैं। उनमें ऐसी कोई काव्यात्मक महत्वाकांक्षा नहीं होती कि उन्हें कीर्ति मिले या धन और अमरता की प्राप्ति हो। वे गाते हैं गाना गाने के आनंद के लिए। वे उन्हें दुहराते हैं, उसके दुहराने मात्र से मिलने वाले आह्लाद के लिए। फिर भी दोनों साहित्य लक्ष्य की दृष्टि से भिन्न नहीं हैं। गायकों या श्रोताओं को आनंदित करना और गायन, पाठन और सर्जन के दौरान स्वयं आह्लादित होना – ये दोनों के मूल लक्ष्य कहे जा सकते हैं।

मौखिक रचनाएं कुछ विशेष परिवेश की देन होती हैं। उस परिवेश से निकल कर जब उनका संकलन, संपादन और प्रकाशन होता है तो वे बहुत कुछ अपनी सार्थकता और सहज सौंदर्य खो देती हैं।

लोकसाहित्य के अध्ययन से एक और विलक्षणता मिलती है। रचनाओं में कवियों या गायकों का नामोल्लेख नहीं होता। रचयिता यह नहीं मानते कि उनकी रचनाएं विशिष्ट हैं या वे बड़े प्रतिभाशाली कवि हैं।

रचना किसी एक व्यक्ति की सर्जना का प्रमाण-पत्र या कीर्ति की प्रतीक नहीं होती। वरन् वह अनेक कवियों की सामूहिक सृष्टि तथा जनता की प्रतीक मानी जाती है; किंतु फिर भी उसमें वैयक्तिक अनुभूतियां और भावनाएं अनुगूंजित होती हैं, वैयक्तिक दुःख हमें व्यथित करते हैं और व्यक्तिगत हर्ष हमें उल्लासित करता है। परंतु ये भाव सामूहिक सचेतनता में अनदेखे रह जाते हैं, नजरअन्दाज कर दिये जाते हैं। फिर भी हम सहज ही इन कवियों और रचनाकारों की अनंतधारा का जिनकी संख्या हजारों होती हैं, अनुमान लगा सकते हैं। अनेक गाड़ीवान, नाविक, किसान मजदूर, डोलीवाहक, घास काटने वाले, चरवाहे, लकड़हारे, भिश्ती तथा महिलाएं अनायास रचनाएं करती हैं। उस समय जब बच्चों को खिलाती हैं या झूला झुलाती हैं, पति-वियोग भाव से भरकर गा उठती हैं स्त्रियां वियोगिनी अश्रुसिक्त गीत गाती हैं अथवा अश्रुपूरित नयनों से जब पीहर छोड़कर सुसराल चलती हैं तब वे गा उठती हैं – व्यथा-गीत। सास या ननद से सताई बहू भी ऐसे ही वेदना भरे गीत गा उठती है।

गांवों में लोगों का जीवन व्यस्त होता है। उनकी रचनाएं अवकाश के क्षणों में नहीं होती है। वे गाते हैं खेतों में हल चलाते समय, फसल काटते हुए, नाव खेते हुए या गाड़ी हांकते समय। ये गाते हैं धार्मिक त्यौहारों और उत्सवों पर और वे गाते हैं केवल आनंद के लिए। वे किसी कठिन काम अथवा पैदल लंबी यात्रा की एकरसता को तोड़ने के लिए गाते हैं। ये गायक स्वभाव से कम कल्पनाशील तथा अधिक यथार्थवादी होते हैं। उन्हें अपने अस्तित्व के लिए सदा जीवन के कठोर यथार्थ से संघर्ष करना पड़ता है। फिर कल्पना लोक में विचरण का उन्हें अवकाश ही कहां? उनकी रचनाओं का उनके जीवन के साथ सीधा संबंध होता है। वे आडंबर और अलंकरण से रहित होती हैं।

वे अपने दृष्टिकोण में अधिक परंपरावादी होते हैं। वे परंपरा से समर्पित हर पुरानी बात को पवित्र विश्वास के रूप में लेते हैं तथा उसमें व्यतिक्रम को पाप समझते हैं। वे भूत, प्रेतात्मा, टोना टोटका जादूगरी आदि में और अपने जीवन की समस्याओं के समाधान के लिए आराध्य देवी देवताओं की शरण में जाते हैं। वे अनेक ऐसे रीति-रिवाजों और अंधविश्वासों का पालन करते हैं जो शहरी समाज के लिए अनगढ़ और अरुचिकर लगते हैं। हम उन्हें धार्मिक विधि विधानों, पर्वों, लोकगीतों और लोक कथाओं में अभिलिखित पाते हैं।

हम आज भी ग्रामीण समाज पर राजा, जमींदार, साहूकार, और दलालों का प्रभुत्व पाते हैं। वे लोगों की अज्ञानता और निरक्षरता का फायदा उठाते हैं, सामाजिक न्याय सभी

वर्गों को एक समान उपलब्ध नहीं है। कभी-कभी किसी ग्रामीण का किन्हीं अपराधों के लिए सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है। धोबी को उसके कपड़े धोने की अनुमति नहीं होती, नाई को उसकी हजामत बंद कर देनी होती है। सभी को उससे बोलने या व्यवहार रखने को मना कर जाता है।

ये परंपराएं सामाजिक बहिष्कार के सबसे बुरे रूप हैं जो स्वार्थी दलालों और कट्टर धर्मांधों के निर्देशन में संचालित होती हैं। अपराधी को सामूहिक दबाव के सामने घुटने टेकने पड़ते हैं। उसे अधिष्ठित देवता व समाज के ठेकेदारों को भारी जुर्माना देना होता है; तब कहीं उसे क्षमा मिलती है।

ग्रामीण पुरोहित परोपजीवी होता है तथा अनेक बुरे सामाजिक रिवाजों और अन्धविश्वासों के बने रहने के लिए जिम्मेदार होता है। यदि कोई अशुभ पक्षी जैसे गिद्ध किसी घर पर बैठ जाये अथवा कोई बूढ़ा बैल गले में जेवरा लिए खूंटे में बंधा मर जाये तो गृहस्वामी को भारी हर्जाना देना पड़ता है। उसकी आर्थिक स्थिति कितनी ही दयनीय क्यों न हो, शुद्धिकरण के लिए उसे सैकड़ों ब्राह्मणों को खिलाना ही पड़ता है। फलतः थोड़ी बहुत भूमि के रूप में जो पैतृक संपत्ति होती है उसे बेच देनी होती है, और इस प्रकार वह सम्मानित किसान न रहकर एक दैनिक मजूर वन जाता है।

पुरोहित ही प्राचीन् काल से चली आने वाली जाति-प्रथा के कठोर परिपालन के लिए मुख्यतः उत्तरदायी होता है जो किसी भी जन कल्याणकारी कार्य के लिए सहकारी प्रयास में सबसे बड़ा अवरोध वनता है। ब्राह्मण तथा दूसरे उच्च वर्ग के लोग हरिजन और आदिवासियों पर शासन करते हैं और उन्हें मजदूर बनाकर उनका शोषण करते हैं।

इस समाज में स्त्री होना एक अभिशाप है। लड़के और लड़कियां बचपन से एक समान व्यवहार नहीं पाते। स्त्री को घर की चहारदीवारी से परे कोई स्वतंत्रता नहीं है। एक पुरुष बुढ़ापे में भी शादी कर सकता है। कभी-कभी वधू का पिता बूढ़े वर से एक मोटी रकम लेकर सन्तुष्ट हो जाता है और अपनी किशोरी कन्या की खुशियों की बलि चढ़ा देता है।

ओड़िसी समाज में भी बाल-विवाह का प्रचलन था। यदि लड़की बालिग होने से पहले विधवा हो जाती है तो उसे आजीवन अविवाहित रहने को वाध्य किया जाता था। उन अकिंचन और असहाय विधवाओं का ब्यौरा कौन दे सकता है, जो प्रताड़ित होती थी, आत्महत्या कर लेती थी।

इन सामाजिक समस्याओं से परे, ग्रामीण जन अनेक घरेलू समस्याओं का भी सामना करते हैं। संयुक्त परिवार प्रथा बहुतों के लिए हानिकारक सिद्ध होती है। परिवार के कुछ सदस्य कठिन श्रम करते हैं तथा दूसरे बेकार समय गुजारते हैं। एक या दो सदस्य कमाते हैं और शेष सदस्य अपने जीवन निर्वाह के लिए उन पर अवलंवित रहते हैं। फलतः झगड़े

होते हैं, जिससे घर व संपत्ति का पारिवारिक बंटवारा हो जाता है।

निर्मम मृत्यु जब गृह स्वामी को, जो एक मात्र अर्जक होता है, अथवा गृह-स्वामिनी को जो गृहस्थी की धुरी होती है, अथवा माता-पिता की आंखों का तारा इकलौते पुत्र को उठा ले जाती है तब शोकाकुल लोगों का विगलित हृदय अश्रुसिक्त संगीत की लयों में बहने लगता है। लोक-गीत सामाजिक चरित्र के प्राचीन और नवीन दोनों ही रूपों को रूपायित करते हैं तथा सामाजिक विकास व परिवर्तन की विभिन्न स्थितियों को दिखाते हैं और विभिन्न वर्गों के लोगों का चित्रण करते हैं जो सामाजिक स्तर, विचार और भाषा की दृष्टि से एक दूसरे से भिन्न हैं।

लोकगीतों का स्वरूप

लोकगीत मोटे रूप में दो भागों में बांटे जाते हैं। एक वे जो गेय हैं तथा दूसरे वे जो पठनीय हैं। गेय गीत, हमें तब सुनने को मिलते हैं जब किसान खेतों में जुताई करता है अथवा मांझी नाव खेता है। पठनीय रचनाओं का रूप गद्यात्मक होता है और वे केवल पठ्य होती हैं। कहावतें डाक-वचन (लोक रचनाकार के कथनों को डाक कहते हैं), खेती के संबंध में उक्तियां, पहेलियां इत्यादि इसके अंतर्गत आती हैं।

प्रथम कोटि के गेय लोकगीतों को पुनः दो श्रेणियों में बांटा जाता है :- मौखिक और लिखित।

कृषि गीत, शोक गीत, क्रीड़ा गीत, झूला गीत और लोरी आदि गीत प्रथम कोटि में आते हैं। वे अपनी नैसर्गिकता तथा काव्यात्मक संवेदना से मुग्ध कर लेते हैं।

दूसरे प्रकार के गीत ग्रामीण कवियों द्वारा रचित होते हैं तथा पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित होकर गांव के मेले व त्यौहारों में बेचे जाते हैं। कुछ रचनाएं अनियमित होती हैं तथा कुछ में राष्ट्रीय संकट जैसे भूकंप, बाढ़, तूफान, युद्ध जैसी भीषण घटना अथवा पौराणिक प्रसंग जैसे रावण वध, कुंभकर्ण वध, जगन्नाथ अथवा लिंगराज मंदिर आदि मंदिरों का वर्णन होता है।

उनके निर्माण की कथा और उनका महत्त्व और माहात्मय

मौखिक गीतों को चार भागों में बांटा जा सकता है। (1) केवल पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले (2) केवल स्त्रियों द्वारा गाये जाने वाले (3) पुरुषों और स्त्रियों द्वारा समवेत रूप से गाये जाने वाले, (4) लड़के और लड़कियों द्वारा गाये जाने वाले।

जुताई गीत, माझी गीत, गाड़ीवान गीत, चरवाहा गीत, संपेरा गीत, चकुलियां, पंडागीत, जोगी गीत, सारथी गीत, युद्ध गीत, झाड़ फूंक संबंधी गीत आदि पुरुषों द्वारा गाये जाते हैं।

अधिकतर गाथा गीत, शोकगीत, फुगड़ी गीत, झूला गीत, गोदना गीत आदि स्त्रियों द्वारा गाये जाते हैं। भजन, होम, स्तर केलि, दलखाई गीत, चैत्र उत्सव गीत पुरुष और स्त्री दोनों गाते हैं। क्रीड़ा गीत लड़के और लड़कियां दोनों गाते हैं।

लोकगीतों के प्रकार

लोक गीतों के कतिपय प्रकारों का विवरण नीचे दिया जाता है :-

(1) **हलवाहा गीत :** यह तीन चरणों वाला वृत्त होता है जिसमें अंतिम पंक्ति सबसे लंबी होती है। इसे एक सांस में जितना बन सके उतना लंबा किया जा सकता है। इससे लय में बाधा नहीं पड़ती है। इसके लघु आकार का कारण यह है कि हलवाहों का मनोरंजन अवकाशजनित नहीं होता, उसके गीत उसके कठिन परिश्रमी जीवन के अंग होते है। कर्म और गीत दोनों साथ साथ चलते रहते हैं। अतः यह सोचने का समय नहीं होता कि पद तुकान्त हैं या नहीं, अथवा कहीं वह अनायास किसी नये छंद या विचार की रचना तो नहीं कर रहा है? उसका जीवन ही उसकी प्रेरणा है। जब उसके पास जीवन व प्रकृति की जीवंत समृद्ध अनुभूति है तब फिर क्यों वह कल्पना जगत या स्वप्नलोक की लंबी-ऊंची उड़ानें भरे।

किसान आषाढ़ के महीने में सिर पर ताड़पत्र निर्मित टोपी पहनकर जमीन को समतल करने में जुटा रहता है। आग उगलता सूरज, मूसलाधार वर्षा, कोई भी उसे डिगा नहीं सकते।

बैल उसके परिवार के सदस्य माने जाते हैं। रूखा-सूखा खाते और उसके लिए कठिन श्रम करते हैं। उसकी उनके प्रति पूरी हमदर्दी होती है। वह संपूर्ण रूप से विश्वास करता है कि मनुष्य अथवा पशु भाग्य के कारण ही कष्ट पाते हैं।

कभी कभी भूख और थकावट से वह अपना विवेक खो बैठता है। वह पत्नी से लड़ता व उसे पीटता है। जब भूख शांत होती है, उसे भूल की प्रतीति होती है और वह अपने आवेश के लिए पछताता है। कृषक कवि इस प्रकार की अप्रिय घटनाओं से जुड़े गाने देवी और देवताओं के नाम पर करता है।

शिव खेतिहर हैं जो सूर्योदय के पहले खेत जोतने चले जाते हैं। उनकी पत्नी पार्वती उनके लिए रोज खाना ले जाती है। दुर्भाग्यवश एक दिन देर हो जाती है। शिव भूखे होते हैं। उन्होंने दूर से देखा कि उनकी पत्नी उनकी ओर आ रही है। वह सुंदर वस्त्र पहने है तथा मंथरगति से चली आ रही है। वे गुस्से में उसे इस देरी का कारण बताने को कहते हैं। वह उत्तर में कामों की एक लंबी तालिका गिना देती है – झाड़ू-बुहारी, खाना पकाना, बच्चों को खिलाना आदि आदि। शिवजी में इन्हें सुनने का धैर्य नहीं। वे कसकर उसके बाल पकड़ लेते हैं। किंतु तभी उसके आंसू देखकर उनका हृदय पसीझ उठता है।

हलवाहे के देवी देवता उसी के समान हाड़ मांस के प्राणी हैं। वे अपना समय कभी भी फालतू नहीं नष्ट करते। वे अपना समय खाना, सोना, मौज मनाना या फालतू बातें सुनना आदि में बरबाद नहीं करते। हलवाहे के देवी देवता उसी के समान परिश्रमी तथा कष्ट सहिष्णु हैं। वे भी सामान्य जन की तरह अपनी आजीविका के लिए हल चलाते, जमीन समतल करते तथा खेतों की रोपाई और निराई करते हैं। वे भी झोपड़ी में रहते, सादा भोजन करते तथा जमीन पर सोते हैं। हलवाहे सरल अवश्य होते हैं पर बेवकूफ नहीं। जहां तक किताबी शिक्षा का प्रश्न है वे अशिक्षित हैं। पर जीवन का उनका अनुभव व्यापक होता है। मानवीय चरित्र संबंधी उनका अध्ययन अनन्य होता है। रोपाई या कटाई के समय जब हलवाहे खेत या कृषि प्रक्षेत्र में इकट्ठे होते हैं तब व्यंग्यात्मक रीति से अपने गीतों में अपने मालिक को कंजूस या शोषक के रूप में चित्रित करते हैं:-

"हमारे मालिक बड़े दयालु हैं। उनकी पत्नी इमली, कनकी और पानी एक साथ उबालती हैं। जब खेतिहर भूख और थकावट से खाना मांगता है तब वे केवल यही झोल परोसती है।"

हलवाही गीतों में विविधता तथा भव्यता का अभाव होता है। अभिव्यंजना सामान्य होती है। पर संभावित लघुतम पंक्तियों में जिस गहन कारुणिकता, यथार्थता तथा नैसर्गिकता की अभिव्यक्ति होती है, वह वस्तुतः सराहनीय है।

(2) **संपेरा गीत :** ओड़िसा में अनेक तरह के बड़े बड़े सांप, जैसे अहिराज सर्पसम्राट अजगर, शंखचूड़ (शंख के समान सिर वाले) आदि तथा जहरीले सांप जैसे नाग, निकुंचित, अजगर आदि पाये जाते हैं। संपेरा प्रदर्शन के लिए बड़े सांपों को रखता है। वे संपेरे के मधुर गीत पद्मतोला (कमल तोड़ने पर बना गीत) अथवा नागेश्वर (वाद्ययंत्र) की स्वर लहरी नहीं सुन सकते हैं। नाग कालिय का वंशज है और उसके फन पर श्री कृष्ण का खड़ाऊं चिह्न है। सांप गीत की लय व बीन के स्वर पर नाचता है।

ओड़िसा का संपेरा दो पिटारियां जो कसकर बंद की हुई तथा रस्सी से बंधी हुई होती हैं, अपने कंधे पर लिए गांव गांव घूमता है। उसके बाल लंबे होते हैं और वह मूंछ रखता है तथा चांदी के कड़े व सोने के कुंडल पहनता है।

पद्मतोला गीत में श्रीकृष्ण का कालिन्दी सरोवर में स्वर्ण कमल तोड़ने का वर्णन है। कालिय सप्त-फणी-दानवी सर्प उस सरोवर का एक छत्र राजा होता है। उसके कारण झील का पानी इतना जहरीला हो गया था कि कोई भी पशु पीते ही मर जाता था। कंस ने नंद को एक लाख कमल के फूल जो इस जहरीले पानी में फूलते थे, तुरंत उसके पास भेजने का ओदश दिया था। उसका मुख्य उद्देश्य कृष्ण को, जो उसका जनम जनम का शत्रु था, मार डालना था। कृष्ण बहादुरी से पानी में घुस गये, फूल तोड़ने लगे तथा कालिय के राज्य में हलचल मचा दी। कालिय के भेजे सारे दूत एक एक कर मार डाले गये। अंत

में सर्पों के राजा ने क्रोधित होकर उन्हें डंस लिया। कृष्ण मूर्च्छित होकर पानी में गिर पड़े। बलदेव, उनके बड़े भाई, उन्हें सूखी जमीन पर ले आये और उन पर गरुड़ द्वारा स्वर्ग से लाये गये अमृत को छिड़कने लगे। चेतना लौटने पर कृष्ण ने उस सर्पराज को पकड़ लिया और उसके सातों फन पर निर्ममता से तब तक नाचते रहे जब तक उसने आत्मसमर्पण नहीं कर दिया।

संपेरा महाप्रभु कृष्ण के पुनीत नाम का गुणगान करते हुए सांप पकड़ता है। जैसे ही वह पद्मतोला गाता है, नाग वांवी से निकल आता है और अपने चौड़े फन को जिस पर अब भी कृष्ण की खड़ाऊं का चिह्न है, घुमाता हुआ नाचने लगता है। संपेरा उसे डंडे के सहारे पकड़ लेता है तथा उसका विषैला दांत तोड़ देता है। यदि संयोग से सांप उसे काट देता है तो उसे विष-निरोधक गद खिला देता है। संपेरा पूरी तरह अच्छा हो जाता है।

(3) **गोदना गीत :** तथाकथित छोटी जाति की महिला कलाकार घर घर घूमती हुई प्रेम गीत गाकर, क्वांरी या दुल्हन सभी युवतियों को आकर्षित करती है। वह उनके माथे, वक्ष, हाथ आदि पर छेदकर, फिर उसपर वर्णक मलकर अमिट चित्र अंकित कर देती है। यह बड़ी पीड़ादायक प्रक्रिया है। गोदने वाली का मधुर प्रेमगीत ही उसे सह्य बनाता है। वह बाहों पर मंजरी से लदे आम्र-वृक्ष अंकित करती है जिस पर कोयल कूक रही हो, वक्ष पर बकुल फूलों का हार, जांघ पर लता-गुल्म जिसमें हिरण दौड़ रहा हो तथा माथे पर कामदेव के फूलों का वना पंचशर अंकित करती है। वह गाती है "ओ, रमणियों में हीरा, मोती, तेरी देहयष्टि पुष्पित कुंजों और मधुमक्खियों, उड़ते विहग और तितलियों, चमकते चांद सितारों से अलंकृत हो जायेगी। मनमोहक चित्रों से विभूषित हो तुम अपने प्रिय पति के निकट जाकर प्रणाम करना जव वह हमारी कला की सराहना करे, जिससे युवतियों के रूप में चार चांद लग जाते हैं, तब मुझे चित्रांकन का पारिश्रमिक देना।"

गोदना अब चलन में नहीं रहा। अब सभ्य महिलाएं इसे अनगढ़ रुचि का प्रतीक मानती है। कभी-कभी भक्त लोग इस विश्वास से अपने शरीर पर राधा-कृष्ण, राम सीता आदि के चित्र तथा प्रार्थनाएं एवं देवी-देवताओं के नाम गोदवा लेते हैं जिससे वे पाप मुक्त रह सकें।

(4) **बांसरानी के गीत** : यह एक तरह का ग्रामीण सर्कस है जिसे दो या तीन व्यक्तियों का दल प्रस्तुत करता है। एक स्त्री बांस के खंभे पर चढ़ जाती है और बहुत ऊंचाई पर से अनेक तरह के शारीरिक संतुलन के खेल दिखाकर जनसमूह को चकित कर देती है। खेलों के बीच के समय गुजारने के लिए गीत-संगीत होता है और उसके बाद नगाड़ा बजाते हैं और फिर नागेश्वर की धुन के साथ सिद्ध बांसुली मंगला, तथा अन्य देवी देवताओं की वन्दना दुर्घटना से बचने के लिए करती है। संगीत और खेल एक के बाद एक करके

चलते हैं। नटी (बाऊंस रानी) के उत्तर आने तथा खेल के खत्म हो जाने पर दर्शक उस मंडली को अपनी इच्छानुसार पैसे देते हैं।

(5) **चकुलिया पंडा के गीत :** चकुलिया पंडा एक प्रतिष्ठित भिक्षु है। वह नीचे की श्रेणी का ब्राह्मण होता है। वह माथे पर चंदन का श्वेतटीका लगाता है। वह ताड़-पत्र से बना छाता लिये रहता है और कंधे पर चावल से भरा झोला लटकाये गाता घूमता है एवं साथ ही गीत गाता रहता है--"दान दो, दूसरों से दिलवाओ, जितना दोगे उसका सौगुना वापस पाओगे"। उसके गीतों में संदेश होता है कि संसार सदा के लिए किसी का नहीं है। मृत्यु अनुलंघ्य है और यहां हमारा पड़ाव हमारी जीवन-यात्रा अस्थायी है। केवल धर्म ही चिरंतन है। जीवन संग्राम में धर्म की ही सर्वत्र विजय होती है। अधर्म की सदा हार होती है। सच्चे दानी का धन देवताओं और ब्राह्मणों की सेवा जैसे उत्तम कार्यों में खर्च होता है और कृपण का धन आग में जल जाता है। इसलिए व्यक्ति को अपने सामर्थ्य भर देना चाहिए तथा दूसरों को देने को प्रेरित करना चाहिए। गरीब और जरूरतमंद को दिया गया धन विफल नहीं जाता। यह दाता के पास कई गुना बढ़कर लौट आता है। दानी के हाथ पवित्र होते हैं और उसकी आत्मा का उन्नयन होता है। गरीवों को भोजन देना हर प्रकार के परोपकारी कार्यों में सर्वश्रेष्ठ है।

चकुलिया पंडा कर्ण, बालि, जीमूतवाहन और हरिश्चंद्र आदि विश्व के महान दानी पौराणिक व्यक्तियों की स्तुति में गीत गाता है। वह कंजूसों तथा पापियों की निंदा करता है वह कहता है कि विश्व में दुःख संताप बढ़ गया है, क्योंकि आज दानी निर्धन है, कृपण धनवान है, पापी दीर्घायु, पुण्यात्मा अल्पायु है। पंडा दूसरे भिखारियों की भांति द्वार-द्वार घूमकर भीख नहीं मांगता वह राह चलते गाता जाता है। उसे बड़ा ही पवित्र व्यक्ति माना जाता है और बिना मांगे ही उन्हें भिक्षा दी जाती है। पंडा को मुट्ठीभर चावल देकर जितना पुण्य मिलता है वह 108 ब्राह्मणों को खिलाने के पुण्य के बरावर है।

चकुलिया पंडा गांव में केवल--प्रतिपदा, पूर्णिमा, एकादशी आदि व्रतों और पर्वों के अवसरों पर दिखाई पड़ता है और लंबी परंपरा से यही रीति चली आयी है। महाभारत की कुन्ती, भीम के दुर्दांत स्वभाव को भली भांति जानती थी, अतः उसे नम्रता एवं धैर्य सिखाने के लिए इस प्रकार की भिक्षा वृति को अपनाने का उसने उपदेश दिया था। कुन्ती को शायद यह डर रहा हो कि यदि भीम घर घर भिक्षा मांगने जाते हैं और दुर्योग से कोई ग्रामवासी भिक्षा नहीं दे पाता है तो भीम आग बबूला होकर उस पर मुष्टि प्रहार कर सकता है। कहा जाता है कि चकुलिया पंडा भीम की तरह विचरण कर रहे हैं। उन्हें पवित्र भिक्षु की तरह माना जाता है।

(6) **चरवाहा गीत :** चरवाहे अपने मवेशियों के साथ मैदान, जंगल और पहाड़ों पर घूमते रहते हैं और अपने नीरस क्षणों को खेल और संगीत से भर देते हैं। वे गोधूलि-वेला

में लौटते और सो जाते हैं। पर जिनके पास भैंस अथवा सूअर होते हैं वे खुले मैदानों में ताड़ पत्र की छतरी के नीचे लंबी रातें काटते हैं। बरसात में वे भैसों से घिरे, गीली जमीन पर थोड़े से बिछौने पर सोते हैं। वहां मच्छर काटते हैं। सर्द हवा और घनघोर वर्षा उन्हें सोने नहीं देती। प्राकृतिक प्रकोप के शिकार से बेचारे अपनी निद्राहीन रातें अपने प्रिय बाजा 'दुडुका' को बजाते हुए, होठों पर जो कुछ आ जाये, उसे गाते हुए गुजार देते हैं। ये गीत, दुडुका की अवसादपूर्ण स्वरलहरी और मधुर रात्रि की बातें पवन और पानी की मर्मर ध्वनि से एकाकार होकर, रात की उस गहनता में ग्रामीणों के हृदयों को अनंजानी अनुभूतियों से भर देती हैं। इन गीतों में उनके कठिन जीवन, ताड़-पत्र की छतरी के नीचे जागरण, निरस दिन और दलदले मैदानों में मक्खी और डांस से सताये जाने पर मवेशियों के साथ घूमने की एकरसता आदि का वर्णन रहता है, जो एक गहरी वेदना तथा अध्यात्मिक संवेदना जगाते हैं।

(7) **झूला गीत** : फूलों के हार से सजा झूला किसी आम और बरगद के तने से बांध दिया जाता है। गांव की किशोरियां वहां किसी पर्व, जैसे झूला त्यौहार, जिसे रजत पर्व कहते हैं, पर एकत्रित होती हैं। उनमें से किसी को दोली रानी चुन लिया जाता है। जब रानी झूले के गद्देदार आसन पर बैठती है तो दूसरी लड़कियां वृंदगान के साथ उसे झुलाती हैं। ये गीत मोहक विनोद से परिपूर्ण होते हैं तथा उनमें कैशौर्य की प्रफुल्लता की गंध होती है। इनमें, मनोहर, सुंदर भविष्य, मुखर प्रेम तथा उपयुक्त पात्र से विवाह आदि का संकेत होता है।

(8) **प्रेम-गीत** : पुरुष और स्त्री में गाने की प्रेरणा जगाने वाला सर्वप्रमुख मनोभाव प्रेम है। मत्रा, राना, भुइयां, सूअर, परजा, गड़बा, सांभाल, कंध, सबर, जुआंग आदि जनजातियां किसी विशेष स्थान पर एकत्रित होते हैं और वसंतोत्सव नृत्य एवं प्रेमगीत गाकर मनाते हैं। वे पिछले वर्ष के दुःख कष्टों को बिसरा देते हैं और जीवन की एक नयी शुरुआत की स्फूर्ति पाते हैं। वसंत ऋतु में युवाजन फूल की तरह खिल उठते हैं और भावप्रवण कवियों की तरह बातें करते हैं। इन गीतों में वैवाहिक इच्छा, वियोग-व्यथा, रोमानी जीवन की चुटकियां आदि होते हैं। 'दलखाई', 'सजनी', 'हुमों,' आदि शृंगार-गीत संबलपुर बलांगीर और कालाहांडी जिलों में लोकप्रिय हैं।

(9) **लोकप्रिय गाथा-गीत** : ये लोकप्रिय गाथा गीत मौखिक परंपरा के वर्णनात्मक गीत होते हैं। उनके रचयिता का नाम अज्ञात होता है। ये गीत सभी तरह के साहित्यिक प्रभावों से मुक्त होते हैं तथा बहुत कुछ समरूप होते हैं। इन पर व्यक्ति की कोई छाप नहीं होती। कवि शायद ही अपने विचार को कलात्मक रूप से व्यक्त करने की अथवा आवश्यकतानुसार भावावेग को संयमित करने की अथवा छंद और तुकांत को नियमित करने की चेष्टा करता हो।

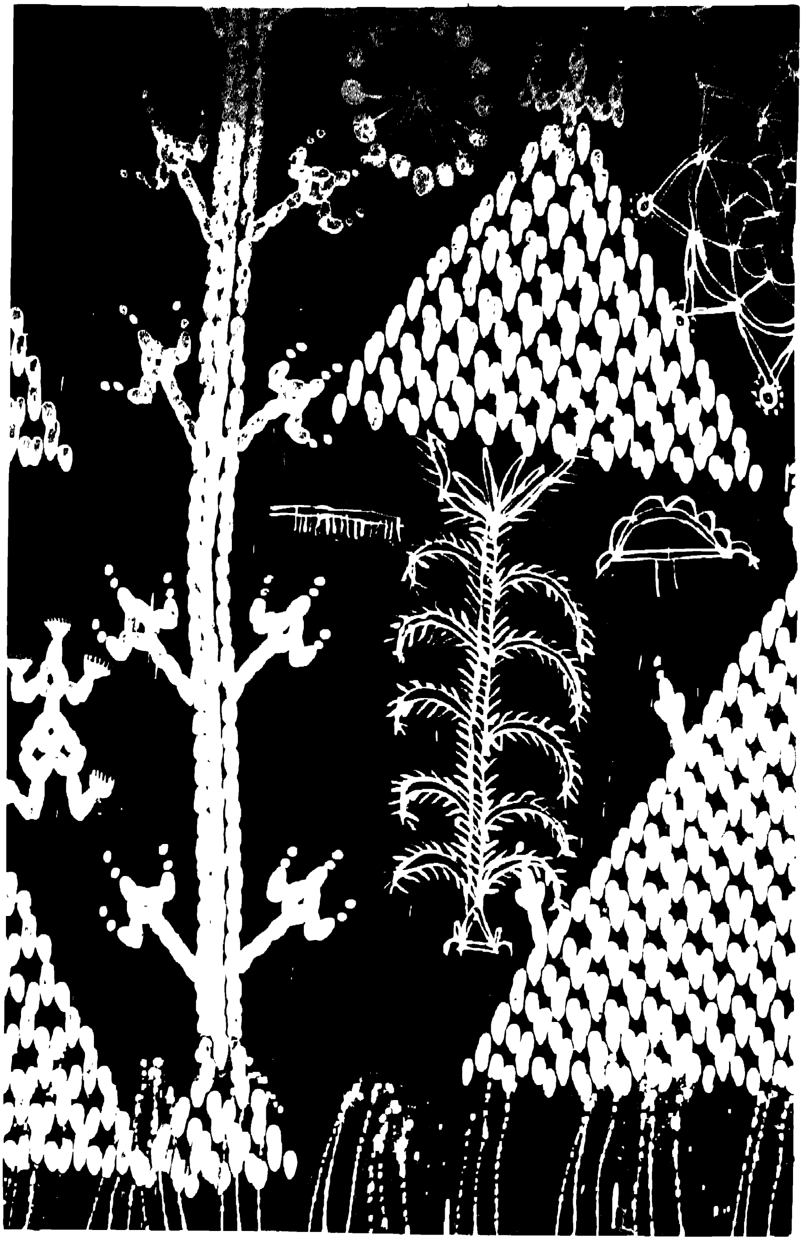
(क) *घरेलू गाथाएं :* ये गीत कभी कभी घरेलू जटिलताओं का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। घरेलू व्यवस्था मां पर अवलंबित होती है जो दिन भर गाय बांधने की जगह साफ करना, भोजन बनाना, बच्चों की देखरेख आदि अनेक प्रकार के काम बिना घरेलू नौकर की सहायता के करती रहती है। जब बेटा विवाह योग्य हो जाता है, वह एक अच्छी बहू की तलाश के लिए पति पर जोर डालती है, क्योंकि वह अकेली घर का काम-काज अब नहीं कर सकती तथा उसे किसी और की सहायता की जरूरत है। इसके अलावा उसकी हमउम्र कई गृहणियां अब अपनी बहुओं की बनी रोटी खा रही हैं। यदि वह बेटे की शादी से पहले मर जाती है तो इस सुख से सदा के लिए वंचित रह जायेगी।

जब विवाह हो जाता है, सास बहू को अपनी बेटी की तरह रखती है और आस-पड़ोस में उसके सद्‌गुणों की चर्चा बड़े गर्व से करती है। दिन बीतते जाते हैं। घर के बुजुर्ग वृद्ध और अशक्य हो जाते हैं। बेटा घर का मुखिया हो जाता है जिसकी कमाई पर सारा घर चलता है। अब गृह-स्वामिनी कौन हो? सास अब भी यथास्थिति बनाये रखना चाहती है। वह बहू को स्वच्छंद रूप से बोलने चालने की छूट नहीं देती। बहू वर्षों तक रसोई में बंदिनी बनी रहती है।

बहू विद्रोहिणी हो जाती है। वह ऐसी घंमडी सास के सामने क्यों झुके जो उसे प्यार नहीं करती है? ज़ब सहिष्णुता से हृदय परिवर्तन नहीं होता, जब दुर्बलों का महाअस्त्र रोदन विफल हो जाता है, तब वह उग्र विरोध करता है। कलह शुरू हो जाता है, और घर में फूट पड़ जाती है। बेटा अपने को विवश पाता है। एक ओर मां और दूसरी और प्रेयसी। वह किसे दबाये, किसे समर्थन दे? किसी भी प्रकार का पक्षपात जटिलताओं की वृद्धि ही करेगा।

समय आने पर उत्पीड़ित बहू स्वयं सास का स्थान लेती है। इस प्रकार यह चक्र चलता जाता है। आजकल अधिकांश ग्रामीण परिवार ऐसे गृह-कलहों से मुक्त हैं। किंतु बहूरानी के पुराने व्यंग्यात्मक गीत, जो आज भी ग्राम्य सुंदरियों द्वारा गाये जाते हैं, हमें सास की तानाशाही की याद दिलाते हैं।

(ख) *जोगी गीत :* अधिकांश गाथा-गीत जो जोगियों द्वारा गाये जाते हैं, मौखिक रचनाएं होती है। गांव में योगी का अर्थ है भिक्षु। उसका योग या ध्यान आदि के साथ कोई संबंध नहीं होता। वह अपने शरीर पर कई तरह की आकृतियां बनाता है। बायें कंधे पर झोला लटकाता है। बाएं हाथ में एक तूंबा लिये रहता है तथा दांयें हाथ में खंजड़ी, केंदरा (बाजा) अथवा आंख कान से चित्रित एक टेढ़ा दंड लिये रहता है। गले में तुलसी के मनके की माला होती है जो दर्शाती है कि वे भक्त हैं तथा सहानुभूति के पात्र हैं। वह अपने हृदयस्पर्शी गीतों के द्वारा जिनमें पौराणिक बलिदान और दानशीलता का वर्णन होता है, अपने प्रति धर्मपरायण स्त्रियों के मन में करुणा का संचार करता है। कुछ गीतों का आशय



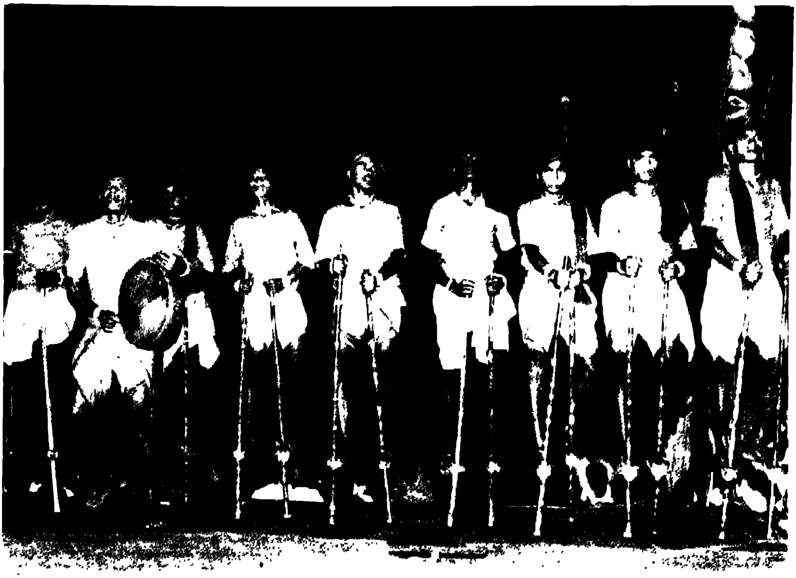
दिवाल पर चित्रकला जिसे 'चिता' कहा जाता है।



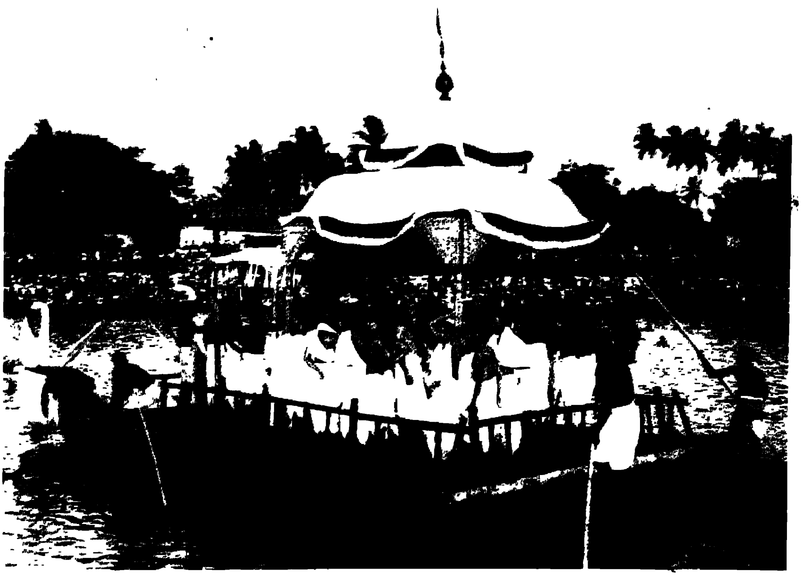
दलखाई नृत्य



महिमा धर्म संन्यासी



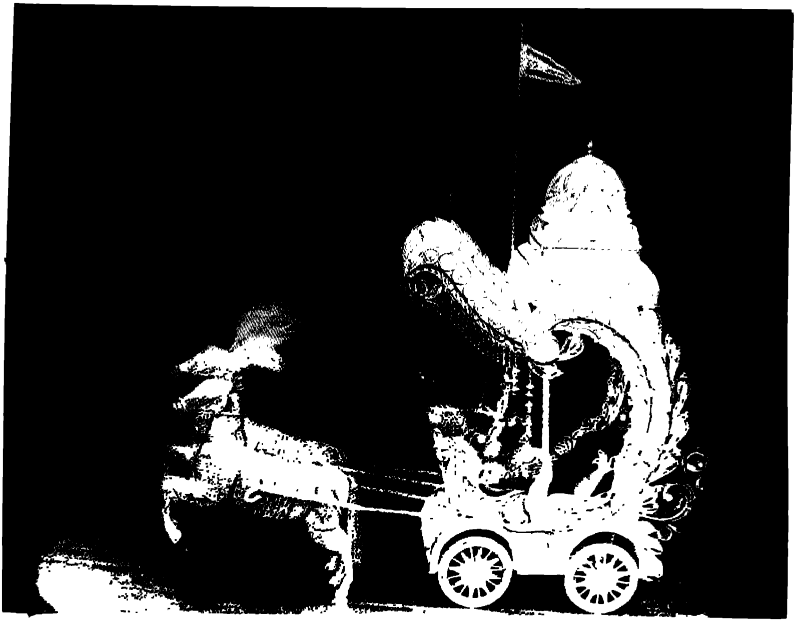
रनपा नृत्य (गंजम)



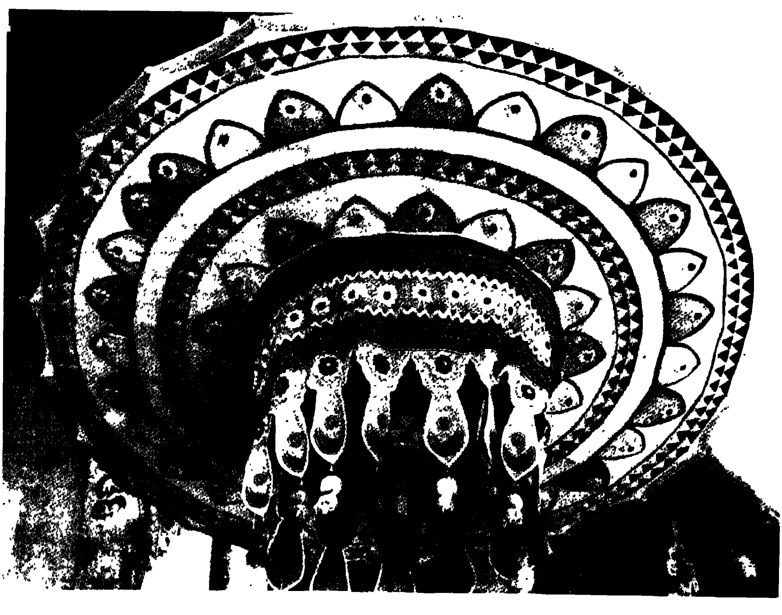
चन्दन जात्रा (पुरी)



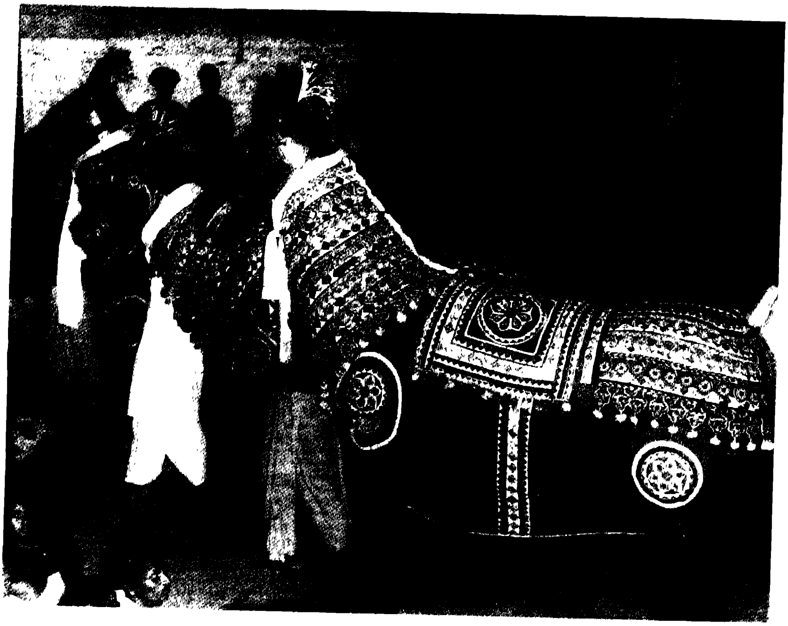
छऊ नृत्य (बारिपदा)



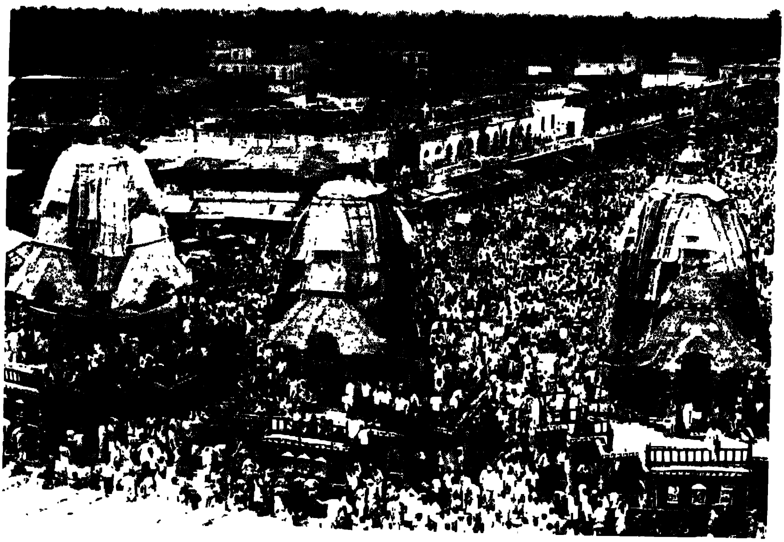
जरीदार काम



पिपिली जरी हुई 'छतरी'



चैती घोड़ा



रथ जात्रा (पुरी)



दुर्गा पूजा (कटक)



नागा (पुरी)

नीचे दिया जाता है :-

एक थी गाय। जिसका नाम बउल था। वह अपने तीन दिन के बछड़े को गोशाला में छोड़कर जंगल में चरने जाती है। सहसा एक शेर प्रकट हो जाता है और उसे खाने की इच्छा प्रकट करता है। गाय वचन देती है कि वह अपने भूखे-प्यासे बछड़े को दूध पिलाकर तथा नाते-रिश्तों से विदाई लेकर लौट आयेगी।

शेर को पहले विश्वास नहीं होता कि कोई शिकार एक बार अहेरी की मुट्ठी से निकल जाने के बाद फिर लौटेगा। गाय उसे विश्वास दिलाती है कि वह किसी भी कीमत पर अपना वचन अवश्य पूरा करेगी। क्योंकि जीव का तुच्छ जीवन सत्य से बड़ा नहीं है। वह घर पहुंचती है। अपने बन्धुजनों से विदाई लेती है जो भरसक उसे रोकते हैं। पर वह सत्यनिष्ठ गाय सबकी अनुनय विनय को अनसुना कर देती है और शेर के पास अपने बच्चे के साथ पहुंचती है। शेर का दिल इस दृश्य से पिघल उठता है। वह गाय को सही सलामत छोड़ देता है। साथ ही उसी क्षण अपना नश्वर शरीर त्यागकर स्वर्ग का अधिकारी हो जाता है।

एक शेर का ईश्वर और धर्म आदि पर उपदेश हास्यास्पद सा लगता है। पर इस कथा का सार यह है कि सत्य जीवन से बड़ा है और आत्मा शरीर से महान है। यह कथा इतने करुणामय भाव से गायी जाती है कि श्रोता अपने आंसू नहीं रोक पाते।

बंगाल नरेश राजा गोविन्दचंद्र का जीवनवृत्त भी योगी गाता है। राजा मानिकचंद्र की एक रानी मौनावती संत हड़प्पा की शिष्या बन जाती है। वह अपने पुत्र गोविंदचंद्र को साधु बन जाने का उपदेश देती है। वह राजकुमार मां से बहुत तर्क-वितर्क करने के बाद संत जीवन की श्रेष्ठता मान लेता है। अपनी 99 रानियों, भव्य प्रासाद, सांसारिक सुखों को त्याग कर गुरु का अनुगमन करता है जो उसे एक गणिका की देख-देख में छोड़ देते हैं तथा उसके चरित्र और व्यक्तित्व की कठिन परीक्षा लेते हैं। वह सफल हो जाता है तथा साधु के योग्य सिद्ध होता है।

ग्राम्य कवि के गीतों में मौनावती की शिक्षा वस्तुतः सराहनीय है। सागर पार जाने को मगरमच्छ का उपयोग करो। भौतिक ऐश्वर्य की चमक दमक से भ्रमित मत होओ। यह सब मृग-मरीचिका है। नारी महाकाल-फल के समान है। बाहर से सुंदर पर तोड़ने पर भीतर से स्याह कोयले के अलावा कुछ नहीं। वह वसंत ऋतु में सेमल के फूल की तरह आकर्षक है। थोड़े समय बाद तुम देखोगे कि वहां कुछ भी सार नहीं है, उड़ती रूई ही मिलती है।

तीन मुख्य विभाग : धार्मिक, ऐतिहासिक, सामाजिक

ओड़िसा गाथा काव्य को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—धार्मिक, ऐतिहासिक,

सामाजिक। कर्ण अपने पुत्र बिसिकेशन की बलि विशिष्ट अतिथियों की संतुष्टि के लिए चढ़ा देता है। हरिश्चंद्र अपना वैभव, प्रभुता आदि सभी कुछ विश्वामित्र को दे देते है। राजा शिवि पंडूक (कबूतर या तीतर) की जान बचाने के लिए अपनी देह का मांस काटकर भूखे बाज को दे देते हैं जो छद्म-वेषी इन्द्र होता है और शिवि के सत्यव्रत को परखने आता है। सास बहू पर आपेक्ष लगाती है कि वह बेशर्म है, पान बहुत खाती है, सस्ते गहने पहनती है, घर के काम काज में मन नहीं लगाती है। इसी प्रकार कुछ गाथा गीत है जो पुत्र की अकाल मृत्यु अथवा देश निष्कासन पर मां के गहन दुःख का अथवा मृत्यु से पहले सगे संबंधियों से विदाई का अपने पति के साथ चिता पर जल मरने काली सती का अपने सब संबंधियों से विदाई वर्णन करते हैं। ओड़िसा के लोकप्रिय अधिकांश गाथा गीतों का स्वर विषादपूर्ण होता है। उनमें वर्णित चरित्रों का संबंध ग्रामीण स्त्री से होता है जिसकी पीड़ा पुत्र, पुत्री, पति के अभाव में अथवा पारिवारिक उत्पीड़न के कारण असहनीय होती है।

(10) **अश्रु गीत** : (क्रंदणा या क्रंदण) जब विवाह के बाद लड़की को ममतामयी माता और वत्सल पिता को छोड़ना पड़ता है तो वह रोती है। यह रोदन आंशिक रूप से माता-पिता, सखी-सहेलियों, आस-पड़ोस आदि घरेलू जीवन के आत्मीय-परिवेश से बिछुड़ने के कारण होता है, आंशिक रूप से सास के पारंपरिक जुल्म की आशंका और पुरजन-परिजनों से यह वियोग वस्तुतः करुण होता है। सांसारिक अनुभव के बिना वह नहीं जानती कि नयी स्थिति के साथ तालमेल कैसे बिठायेगी? वह असहाय रूप से रोती है। उच्च वर्ग के परिवारों में यह एक रिवाज सा बन गया है। अब शिक्षा के प्रसार से यह बहुत कम हो चला है।

(11) **शिशु-गीत (लोरी) :** बंध्या स्त्री समाज में समादृत नहीं होती। संतानहीन व्यक्ति के अपवित्र हाथों से पितृ-पितामह तर्पण ग्रहण नहीं करते। जो घर बच्चों की किलकारियों से गूंजा नहीं, वह मरुस्थल है। लक्ष्मी ऐसे मनहूस घर में नहीं रहती। शिशु मां की स्नेहिल आंखों का तारा है। वह बच्चे को दुलारती, सुलाती और हार्दिक ममता व आशीष उड़ेलती सहज भाव से गाती है। बच्चा इन वात्सल्य भरे गीतों से बहल जाता है। प्रसन्न हो उठता है।

लोरी असंबद्ध और अर्थहीन होती है। प्रत्येक पंक्ति एक चित्र उभारती है- असंबद्ध, अर्थहीन पर आनंदमय। उसमें भोलेपन और प्रसन्न भावों की गंध होती है। इसमें वैचारिक गहराई नहीं होती। छंद भी अनियमित होता है तथा उसका स्वरूप और शैली अनगढ़ पर शिशु के लिए इन बातों का कोई अर्थ नहीं होता। उसके लिए सुसंबद्ध स्वरूप और शैली की तुलना में व्यंजना और नाटकीय भावभंगिमा का अधिक महत्व हैं।

(12) **किशोरों-किशोरियों के विविध गीत :** किशोर गीत अनेक प्रकार के होते हैं। एक तो है क्रीड़ा गीत। यह ग्रामीण खेल होता है। डू, डू और बहुचारी में लड़कों का

दो दलों में बंटना जरूरी होता है। ऐसी स्थिति में असमान विभाजन से मनमुटाव हो सकता है। लड़के इस समस्या का समाधान ऐसे ढंग से करते हैं कि किसी को शिकायत का मौका नहीं मिले। पहले दो नेता चुन लिये जाते हैं। और नेताओं से पूछते हैं- कौन राम लेगा और कौन लक्ष्मण? कौन रावण लेगा और कौन कुंभकरण? कौन बलराम लेगा और कौन अर्जुन? आदि आदि। चुनने वाले को यह नहीं मालूम होता है कि किसका नाम क्या है। उसे केवल एक बार चुनने की छूट होती है। दूसरी वार विरोधी दल के नेता को मौका मिलता है। इस प्रकार वारी वारी से वे उनमें से आधे को चुन लेते हैं।

खेलते हुए हर एक लड़का एक सांस में एक पूरा गीत गाता है। गीत दो या चार चरणों का होता है जो अर्थहीन तथा खेल से प्रत्यक्षतः असंवद्ध होते हैं। पर गीत की शब्द-योजना इतनी सुंदर होती है कि एक वार सुन लेने के वाद सुनने वाला उसे भुला नहीं सकता।

व्यंग्य

गांव के छोटे छोटे वालक और वालिकाएं तव तक गोल गोल घूमते रहते हैं जव तक गिर न जाएं। गोल-गोल घूमते समय वे एक गीत गाते हैं जिसे भंवर-गीत कहते हैं। कुछ गीत व्यंग्यात्मक होते हैं। सियार, शैतान लड़कों को देखते ही भाग जाता है। जव वे देखते हैं कि सियार इतनी दूर चला गया है, जहां से पत्थर उन तक नहीं आ सकता, तव वे सियार को चिढ़ाने के लिए एक व्यंगात्मक गीत गाते हैं, "ओ मेरे वड़े भाई सियार, पीछे देखो तुम्हारा घर जल रहा है।"

उसका तथाकथित भाई उसके साथ रूखा व्यवहार करता है। भला क्यों वह पीछे मुड़कर देखे? सियार इंसान के समान घर नहीं बनाता है। उसका घर जल कैसे सकता है? फिर भी सुरक्षित दूरी तक पहुंच जाने के वाद वह पीछे मुड़कर (जलती हुई, आखों से) उन शैतान लड़कों को घूरता है, मानों उन्होंने सचमुच उसका घर जला दिया हो।

करुणा

कुछ गीत बड़े करुण होते हैं। एक मादा सारस भोजन की खोज में जाती है। उसके दोनों पंख एक शिकारी के बाण से टूट कर गिर जाते हैं। वह घर लौटने से लाचार हो जाती है। बच्चे देर होने पर अधीर हो उठते हैं, बुरी तरह रोते हैं। एक सहानुभूतिशील लड़का सांत्वना देता है कि मां गाय चराने गयी है और वह उनके रात के भोजन के लिए एक पका हुआ बेल का फल लायेगी।

कलरेई

अभागिन लड़की कलरेई की करुणा गाथा भी है। कोई उसकी उम्र व वंशावली नहीं जानता। गांव की लड़कियां आंखों में आंसू लिये यह गीत गाती हैं। कलरेई का भाई एक पका हुआ लाल फल तोड़ता है और घर में सभी से यह कहते हुए रख देता है कि जो भी इस फल को खायेगा उसे उसके साथ विवाह करना होगा। दुर्भाग्य से कलरेई जो इस बात से अनजान होती है, फल खा लेती है। उसका भाई उसे शादी करने पर जोर डालता है। भाई व बहन में शादी बड़ी लज्जा की बात है। कलरेई जो बड़ी संवेदनशील थी, इसे सह नहीं पाती है और तालाब में डूब मरती है। इस दुःखपूर्ण क्षण का वर्णन अत्यंत कारुणिक है -

"आजा ओ कलरेई
दूल्हा मंडप में बूढ़ा हो रहा है।"

कथावाचक और लोककथाएं

लोककथा ओड़िसा के मौखिक साहित्य का एक अंश है। कुछ ग्रामीणों के लिए कहानियां कहना बुद्धि-विलास का एक साधन है विशेषकर उन वयोवृद्ध पुरुषों और महिलाओं का जो कल्पना, अभिव्यंजना और नाटकीय भाव-भंगी के धनी होते हैं। कहानी कहने वाला व्यक्ति प्रतिभावान व्यक्ति होता है। जो अपने में शिशु सुलभ सरलता, यौवन की स्फूर्ति सहानुभूतिपूर्ण हृदय और दूसरे में भावना का उद्रेक करने की शक्ति रखता है। वह स्वभाव से मिलनसार, चरित्रवान, प्रभावशाली व्यक्तित्व का व्यक्ति होता है, जिसका भाषा पर पूर्ण अधिकार होता है और जो किशोर श्रोताओं को घटनाओं की सत्यता की प्रतीति करा देता है। श्रोताओं के लिए भी बिना रुके और बिना शंका निवारणार्थ प्रश्न किये कहानी की धारा में एक रूप होकर बहना आवश्यक है। कहानी कहने वाले के साथ एक प्राण होने का अर्थ है कि वे कहानी के साथ हंसें, रोयें और उसके साथ अचंभे में उनकी आंखें फैल जायें तथा उपयुक्त स्थल पर हर्षातिरेक से उछल पड़ें।

ओड़िसा के गांवों में लड़के और लड़कियां कहानी कहने वाले के द्वार पर एकत्रित होते हैं। कहानी कहने वाली कोई वृद्धा होती है जिसके ऊपर बच्चों को बहलाये रहने का जिम्मा होता है। उसके पास घर का कोई अन्य काम नहीं होता। वह अपनी मां को या दूसरे लोगों को तंग कर सकता है। उसे शांत रखने का सर्वोत्तम साधन है कहानी सुनाना इससे वह घंटों शांत और धैर्यपूर्वक बैठा रहता है। इससे उसमें आत्मसंयम और दूसरों की बात सुनने की आदत पड़ती है।

कहानी का आरंभ, विस्तार और अंत

सूरज डूब गया है। तारे टिमटिमा उठे हैं। हलवाहे विश्राम कर रहे हैं। गांव निस्तब्ध, प्रशांत और पवित्र लग रहा है। दादी मां अपनी कहानी कुछ अर्थहीन पंक्तियों से शुरू करती हैं-

आओ कहें एक कहानी।
किसकी कहानी? मेंढकी की कहानी।
कौन-सी मेंढ़की? काठ की मेंढ़की।
कैसा काठ? तेली का काठ।
कैसा तेली? जो चलाये कोल्हू।
कैसा कोल्हू? गन्ने का कोल्हू।
कैसा गन्ना? गांठ वाला गन्ना।
कैसी गांठ? जादूगरनी दादी बूढ़ी की गांठ।
कैसी बूढ़ी?

मल्लाह की औरतें चूड़े की टोकनी को लेकर नाचती हैं और कहानी बढ़ती जाती है। फिर जब कहानी खत्म होती है, तो वह कहती है-

"मेरी कहानी खत्म हो गयी।
फूल की बेल मर गयी।
अरी फूल की बेल तू क्यों मर गयी?
मुझे काली गाय खा गयी।
क्यों री काली गाय तू बेल क्यों खा गयी?
चरवाहे ने मेरी देख-रेख नहीं की।
क्यों चरवाहे तुमने गाय पर नजर क्यों नहीं रखी?
बड़ी बहू ने रोटी नहीं दी।
क्यों बड़ी बहू, तुमने उसे रोटी क्यों नहीं दी?
बच्चा रोने लगा।
अरे बच्चे, तुम क्यों रोये?
मुझे काली चींटी ने काट खाया।
क्यों री काली चींटी तुमने क्यों काटा?
मैं धरती के नीचे रहती हूं; जब नरम मांस पाती हूं, काट लेती हूं।"

इससे पहले प्रथम गीत का पाठ खत्म होने पर वृद्धा बच्चों से पूछती है – कहो, किसकी कहानी सुनोगे? राजा, सौदागर, शेर, सांप, मगर या भूत? क्या दुःख की कथा कहें? या सुख की? या अपने उतार चढ़ाव भरे जीवन की अनुभूतिपूर्ण कथा कहें? लड़के

लड़कियां अपनी अपनी रुचि और मनःस्थिति के अनुसार कहानी चुनते हैं। अधिकांश कहानियां उनकी पहले से ही सुनी हुई होती हैं। इसलिए उनकी मांग बहुत अलग-अलग होती है। जब वे आपस में नहीं तय कर पाते हैं तो वृद्धा अपनी समझ-बूझ से ही कोई कहानी कहना शुरू करती है –

"एक समय की बात है कि एक राजा या सौदागर था।" हर विराम पर श्रोता को कहना होता है, "हूं" – ताकि जिससे कहानी कहने वाला उत्साहित होता रहे और कथा चलती रहे।

लोक कथाएं मोटे रूप से जन-श्रुति और लोककथा के रूप में बांची जाती हैं। अभी तक ऐतिहासिक चरित्रों, देवी-देवताओं तथा ओड़िसा के गगनचुम्बी मंदिरों के निर्माण से संबंधित असंख्य किंवदंतियों के संकलन का कोई नियमित प्रयास नहीं हुआ है।

सिबेई सांतरा : सिबेई सांतरा की जनुश्रुति प्रसिद्ध है। महाराजा नरसिंह देव के इस महान वास्तुकार को विश्वविख्यात कोणार्क के निर्माण की जिम्मेदारी दी जाती है। नींव के लिए चुना गया स्थान चन्द्रभागा नदी के गहरे जल में होता है। शिल्पी सैकड़ों गाड़ियों में पत्थर भर-भर कर नदी के जल में फेंकता जाता है, पर परिणाम कुछ नहीं निकलता। कहा जाता है कि एक प्रख्यात समुद्री मछली, सबको निगलती जाती है। वह फिर भी अपनी भूल नहीं पहचान पाता और हताश होकर उसे काम बंद कर देना पड़ता है। एक बार जब थका मांदा वह घर लौट रहा था, वृद्धा ने उसे रात के भोजन के लिए बुलाया और गर्म खीर परोस दी। सिबेई किनारे से ही नहीं बीच से गर्म खीर खाने लगा। फलत : उगलियां जल गयी और इस तरह वह अपनी भूख नहीं मिटा सका। वृद्धा ने झिड़का कि उसे सिबेई सांतरा जैसा काम करना चाहिए। वह उसे पहचान नहीं पायी थी। ऐसा सुनकर उसने सिबेई सांतरा की गलती पूछी तो उसने बताया कि वह अपनी महान बौद्धिकता और शिल्पी प्रतिभा के बावजूद सहज बुद्धि से रहित है। वह नींव डालने की कोशिश बीच से कर रहा है, एक तरफ से नहीं। फलतः अपने प्रयास में असफल हो जाता है। सिबेई की आंखें खुल जाती हैं और इस बार उसका प्रयास सफल हो जाता है।

धरमा : एक और किंबदंती जो इस मंदिर के साथ जुड़ी है, इस प्रकार है – मंदिर बारह सौ कारीगरों के अनवरत सोलह वर्षों के कठिन प्रयास के बाद भी पूरा नहीं हो सका। महाराजा ने आदेश दिया कि यदि वे कल तक काम पूरा न कर सके, तो उन सबके सिर काट लिये जायेंगे। धरमा उस समय बारह वर्ष का था। उसका पिता विसु महाराणा जब कोणार्क निर्माण के लिए आया तो वह मां के गर्भ में शिशु था। उस धरमा ने कलश चढ़ाकर काम पूरा कर दिया और बाहर सौ कारीगरों को बचा लिया। इस पर प्रसन्न होने की बजाय उन कारीगरों ने सोचा कि महाराजा लड़के को तो पुरस्कृत करेंगे पर उन्हें उनकी अयोग्यता के लिए दंड देंगे। अतः उन्होंने बिसु से दो विकल्पों में से एक को चुन लेने को कहा–समाज

का त्याग या पुत्र का बलिदान। धरमा समाज के लिए, बलिदान हो जाने के लिए स्वेच्छा से आगे आया और अपने पिता को मनाकर मंदिर के शिख़र से समुद्र में कूदकर प्राण दे दिये।

लोगों में प्रचलित इन कथाओं को सात भागों में रखा जा सकता है। (1) पौराणिक कथाएं (2) प्रतिज्ञा, व्रत और पर्व कथाएं (3) साधु और भक्तों की कथाएं (4) जन श्रुतियां (5) सत्यनारायण की कथाएं (6) वर्ष के पुनीत महीनों की कथाएं और (7) लोककथाएं। लोक कथाओं का विभाजन निम्नानुसार है :-

(क) देवता, दैत्य, भूत, प्रेत और डायन की कथाएं (ख) पक्षी, पशु, सरीसृप और मछली की कथाएं (ग) साहसिक कथाएं (घ) प्रश्नोत्तरी (च) समस्याओं को प्रस्तुत कर उनके समाधान की कथाएं (छ) अपने जीवन में उतारी गयी नीति कथाएं (ज) विनोद और व्यंग्यपूर्ण कथाएं (झ) सामुद्रिक यात्रा कथाएं जो हमें उस स्वर्ण युग की याद दिलाती हैं जब ओड़िसा का समुद्र पर अपना साम्राज्य था तथा विश्व के बड़े राष्ट्रों के साथ उसका व्यापारिक संबंध था और उसके अपने समुद्री जहाज चलते थे।

राजा और राजकुमार

लोककथाओं में वर्णित राजा छोटे छोटे राज्यों के अधिपति थे। उनका प्रमुख मनोरंजन शिकार था तथा मुख्य अभिरुचि एक से अधिक राजकुमारियों से शादी करने की थी। उनमें स्वयं वीरता का अभाव था। परंतु उनके पुत्र साहसी, दैत्यों से युद्ध करने वाले तथा महान सफलताएं प्राप्त करने वाले होते थे। नरेशों का आदेश ही कानून था। प्राण प्रिय रानी या आज्ञाकारी, राजकुमार या परम विश्वसनीय मंत्री को उनके आदेश पर या तो चौवीस घंटों के अंदर राज्य छोड़ देना पड़ता था अथवा उसी जगह तत्काल किसी अपराध के लिए छिन्न-मस्तक होना पड़ता था। देश का कुबेरपति छोटे से दोष के लिए रास्ते का भिखारी हो जाता था। वे केवल ऋषियों के शाप से ड़रते थे।

दंड

राजा के विरुद्ध किसी भी प्रकार के अपराध के लिए प्राणदंड का विधान था। यदि राजा किसी दुराचारिणी रानी को दंडित करना चाहता था तो वह प्रांगण में एक बड़ा गड्ढा खोदने का आदेश देता था। गड्ढे में कितना अनाज समायेगा, इसका अंदाज लगाने को कहता था। जब वह गड्ढे के किनारे खड़ी अनुमान लगाने की कोशिश करती तो उसे अनजाने में ढकेल दिया जाता और तब कांटे एवं मिट्टी की कई टोकरियां उस पर डाल दी जातीं जिससे उसके प्राण जल्दी निकल जायें।

रक्षा

परंतु प्रायः राजा उस कर्मचारी के द्वारा ठगा जाता था जिसे किसी को मारने का दायित्व सौंपा जाता था। अधिकारी सोद्देश्य ऐसा करता था। क्योंकि उसे भली भांति ज्ञात होता था कि कथित अपराधी वस्तुतः निर्दोष है। वह राजा के सनकी तथा मूर्खतापूर्ण स्वभाव से अच्छी तरह परिचित होता था। फिर भी दंडित व्यक्ति को तुरंत राज्य छोड़ देने की सलाह दी जाती थी। क्योंकि राज्य में उसका बने रहना अधिकारी के लिए घातक हो सकता था।

मंत्री बुद्धिमान तथा चतुर होता था तथा अपने अधिकार के भीतर लोगों के कष्टों को हर संभव रूप से कम करने की कोशिश करता था।

मित्रता

मित्रता का बंधन बड़ा मजबूत होता था। मित्र अपने मित्र के लिए धन, सुख, यहां तक कि जीवन भी दे देते थे। मंत्री का पुत्र गुप्त रूप से भविष्यवक्ता गिद्ध से राजकुमार पर आने वाले संकट की बात सुन लेता है। वह राजकुमार के सिंहद्वार को तुड़वा देता है और विधाता द्वारा परोसे गये भात को न खाने की सलाह देता है। राजकुमार सलाह के अप्रिय होने पर भी उसकी निष्ठा का ख्याल करके उसे मना लेता है। एक बार मंत्री-पुत्र ने एक ऐसे अजगर को मार डाला जो राजकुमार और वधू को उनके निजी कमरे में लीलने जा रहा था। रक्त की एक बूंद राजवधू के गालों पर पड़ जाती है जिसे मंत्री-पुत्र पोंछ देता है। इससे राजकुमार जग जाता है और क्रोध में आक्षेप लगाता है कि उसका धोखेबाज मित्र उसे मार डालाना चाहता है, जिससे वह राजवधू से विवाह कर सके। जब कोई भी स्पष्टीकरण राजपुत्र को स्वीकार्य नहीं हुआ तब भावनात्मक रूप से आहत मंत्री-पुत्र ने सच्ची बात बता दी, जिसे कहने की उसे मनाही थी और वह प्रस्तर-खंड को सिर पर लिये बारह वर्षों तक यहां वहां घूमता रहता है। उसे गंधभैरव नामक एक दिव्य पक्षी द्वारा स्वर्ग से चुराये गये अमृत से वह पुनर्जीवित करने में समर्थ होता है।

मालिन

मालिन, जो फूलों का हार बनाती है, जीवन-रूपी नाटक में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। वह चतुर, चालाक तथा जादूगरी में निपुण होती है। वह प्रेमियों के बीच एक विश्वसनीय मध्यस्थ का काम करती है। राजकुमार किसी दूर देश से आते हुए उसके घर पर विश्राम करते हैं और राजकुमारी से उसकी लड़की बनकर मिलते हैं। वह दोनों में पत्र व्यवहार बनाये रखती है। राजकुमार के पत्र उसी के द्वारा गूंथे गये फूलों के हार में छिपाकर राजकुमारी को पहुंचाये जाते हैं।

कभी कभी मालिन बड़ी घातक सिद्ध होती है। वह अपनी सनक को पूरी करने के लिए राजकुमार को दिन में मेढ़क और रात को पुरुष बना देती है।

साथी पशु

जानवरों से संबंधित कहानियों में पशु अभिनेता होते हैं जो मानव के समान बोलते और व्यवहार करते हैं। पशु बुद्धिमान, सहानुभूतिशील तथा उदात्त होते हैं तथा वे कभी भी आदमी के साथ छल नहीं करते। एक शेर के बच्चे का जीवन एक दयालु राजकुमार द्वारा दावानल से बचा लिया जाता है। कृतज्ञ शेर और शेरनी उसे इसके लिए एक बच्चा उपहार में दे देते हैं तथा संकट के समय स्मरण करने पर सहायता का वचन देते हैं।

किंतु शेर तब कठोर व्यवहार करता है जब आदमी उसे धोखा देता है। टिमाटिमी उसके वन राज्य से लकड़ी काटकर लाते हैं तथा बदले में उसे रोटी देने का वचन देते हैं। किंतु रोटी इतनी स्वादिष्ट बनती है कि वे उसे पूरा खा लेते हैं और शेर के लिए गोबर और पत्थर की रोटी बनाते हैं। जिससे शेर के दांत टूट जाते हैं और वह गुस्से से पागल हो उठता है और बदले की ताक में रहता था।

जानवर परस्पर सहानुभूतिशील होते हैं, आम दुश्मन का मिलकर मुकाबला करते हैं। राज्याभिषेक में हाथी की महत्वपूर्ण भूमिका थी। वह अपनी सूंड में लपेटे हुए, स्वर्ण-कुंभ से, राजकुमार अथवा किसी अन्य भाग्यवान व्यक्ति के सर पर पवित्र जल डालता है, जिसे सम्राट घोषित कर दिया जाता है। इस प्रथा का वहीं पालन होता था जहां राजा अपने पीछे कोई उत्तराधिकारी छोड़े बिना अथवा निश्चित किये बिना मर जाता था।

दानवी

दानवी अपने पैरों को जलाऊ लकड़ी के गोलों की तरह प्रयोग करती है। उसके भयानक रूप को देखकर कभी कभी शिकार तेज घोड़े पर बच निकलता है। वह तुरंत ही जानवर के रोएंदार पूंछ में सरसों के दाने की एक छोटी थैली बांध देती है। घोड़े की दौड़ के साथ सरसों के दाने रास्ते भर छितराते जाते हैं और पौधा बनकर खिल उठते हैं। जादू के जोर से यह सब एक क्षण में हो जाता है। दानवी के बेटे उसका पीछा करते हैं और सरसों के पौधे की पांतों से रास्ता खोज लेते हैं। ज्यों ही वे शिकार तक पहुंचने को होते हैं कि राजकुमार कुछ मंत्र पढ़ता है, जिससे उनके रास्ते में घना कोहरा छा जाता है। वे दानव बड़ी कठिनाई से उसका पीछा करते हैं। उसके बाद रास्ते में कांटे और फिर आग मिलती है। वे आग को भी तैर कर पार कर जाते हैं और इस प्रकार शिकार का निरंतर पीछा करते हैं। बचाव का कोई और उपाय न पाकर वह आम के पेड़ के तने में छिप जाता है। जब दानव पेड़ को उखाड़ने की कोशिश करते हैं, तुरंत फल उठता है। वह आम का

फल पककर जल में गिर पड़ता है, जिसे मछली निगल जाती है। राजकुमार उसी आम के भीतर होता है। मछली पकड़ी जाती है तो आम उसके भीतर निकलता है। उस आम में छिपा राजकुमार प्रकट हो जाता है। लोग प्रसन्न हो उठते हैं।

शंकर-पार्वती

शिव और पार्वती संकट में पड़े स्त्री और पुरुष की बड़ी सहायता करते हैं। वे मृत व्यक्ति पर पवित्र जल छिड़कते है और वह जी उठता है। कथाकार कई आश्चर्यजनक बातों की परिकल्पना करता है। उड़ते घोड़े, जादुई नाव, जादुई रत्न, आदि की अद्‌भुत करामातें होती हैं। "अम्बुजमणि" ने एक महल बनाया तथा एक तालाब बनाया। रातों रात एक पूरी वाटिका लगा दी।

उड़न घोड़ा या जादुई घोड़ा सवार को पलक झपकाते ही कहीं का कहीं पहुंचा सकता है। जादुई खड़ाऊं पहनते ही व्यक्ति एक क्षण में ही दूर दूर तक उड़कर पहुंच सकता है। एक जादुई छड़ी से सेना की एक पूरी टुकड़ी पैदा हो सकती है। जादुई थैली से हजारों को स्वादिष्ट भोजन मिल सकता है, जादुई आम से किसी व्यक्ति के हंसते ही रत्न झड़ सकते हैं, उड़ने वाला वृक्ष किसी भी व्यक्ति को अपने गंतव्य पर पहुंचा सकता है।

4

मिथक और मिथक शास्त्र (पुराणकथा और पौराणिकी)

मिथक लोक-संस्कृति के केवल अभिन्न अंग नहीं हैं वरन् उसके सारभूत मर्म भी हैं। परीकथाओं और पशु कथाओं से भिन्न मिथकों को धार्मिक गंभीरता के साथ ग्रहण किया जाता है। विभिन्न लेखकों और नृतत्वशास्त्रियों ने उनकी अलग-अलग व्याख्याएं की हैं। उनके इतने अधिक रूप हैं जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक जीवन में उनकी अनेकानेक भूमिकाएं हैं। किंतु एक बात निश्चित है – यद्यपि वे मिथकीय युग की घटनाओं की ओर संकेत करते हैं जो बहुधा विलक्षण होते हैं पर मिथकों का महत्व चिरंतन है तथा उन लोगों के लिए वे आज भी कम प्रासंगिक नहीं हैं जो उन्हें सत्य और अकाट्य मानते हैं। अनेक विद्वानों के मतानुसार मिथक एक तरह से रूपकात्मक शब्द चित्र प्रस्तुत करते हैं। उनमें मानव जीवन की साधारण घटनाओं तथा प्रकृति अथवा मानव समाज की असाधारण घटनाओं की कोई न कोई व्याख्या रहती है। कुछ विद्वान उन्हें आदिम दर्शन या आध्यात्मिक चिंतन का रूप भी मानते हैं। अनेक मिथक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक अथवा धार्मिक संरचना की यथास्थिति के समर्थन के प्रयास के रूप में भी लिये जा सकते हैं। वर्तमान रीति-रिवाजों के उद्‌गम और विकास का समर्थन करने वाले मिथक इस विचारधारा के अंतर्गत माने जा सकते हैं।

सृष्टि की उत्पत्ति : सृष्टि की उत्पत्ति और प्राकृतिक घटनाओं से संबंधित मिथक आदिम हों अथवा सुसंस्कृत, पूर्व या पश्चिम की सभी जातियों में पाये जाते हैं। यद्यपि ओड़िसा के अधिकांश आदिवासियों के ऐसे मिथकों का संकलन कर लिया गया है परंतु व्यापक स्तर पर अभी तक इसका समग्र अध्ययन हाथ में नहीं लिया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति विषयक मिथकों के बारे में वेरियर एलविन, जो आदिवासी मिथकों के प्रतिष्ठित विद्वान हैं, का कहना है कि सामान्यतः उनका एक समान प्रतिरूप होता है तथा अंततोगत्वा वे पौराणिक स्रोत पर आधारित होते हैं। एलविन के अनुसार सूर्य और चंद्र से संबंधित मिथक भारत के सभी आदिवासियों में प्रायः संलग्न हैं और ग्रहण संबंधी मान्यताएं भी एक समान

हैं। और चंद्रमा का सूर्य को धोखा देकर उसके बच्चों को खा जाने (फलतः दिन में तारे नहीं दीखते) का चित्रण सर्वभौम है (एलविन 1954 पृष्ठ XIX-XX)।

इन मिथकों के विवेचन में उनके स्वरूप का अध्ययन आदिवासियों के दो भिन्न समूहों को ध्यान में रखकर करना होगा। पहला, सामान्य आदिवासी तथा दूसरा, हिंदुओं के साथ विभिन्न स्तरों पर संपर्क में आने वाले आदिवासी। यह संपर्क सामान्यतः उनकी संस्कृति को तथा विशेषकर उनके मिथकों के स्वरूप को परिवर्तित करता है। सबसे अधिक आदिम जातियां जैसे कोरापुट जिले के दिदई तथा फुलबानी जिले के कुटिया कंध, कई अन्य जातियों की तरह यह दावा करते हैं कि आरंभ में पानी ही पानी था। या तो अनेक सृष्टिकर्ताओं (कुटिया कंध के निरन्ताली और कपनतली) अथवा किसी एक स्रष्टा (दिदई लोगों के रूमरोक) ने ठोस धरती वनस्पति तथा जीव-जंतुओं को बनाया। परंतु यह निर्विवाद है कि विभिन्न जातियों के आदि पूर्वजों को ही प्रथम मानव के रूप में बनाया गया। कुटिया कंध के एक वृत्तांत के अनुसार सबसे पहले दो कंध पानी में प्रकट हुए और सृष्टिकर्ता निरन्ताली और कपनतली के पास शिकायत लेकर जाने से पहले उन्होंने एक बड़े पहाड़ पर घर बनाया। एक और भी अधिक आदिम जाति, कोरापुट जिले के पहाड़ी बोंडो में प्रचलित सृष्टि-रचना की कहानी में हमें सबसे पहले दो पुरुष और उनकी पत्नियां मिलती हैं, जिन्होंने एक छोटे से अनाथ बालक को अपना लिया था जिसके शिश्न की असाधारण लंबाई थी। एक दिन पुरुषों की अनुपस्थिति में उनकी पत्नियों में से एक को उस लड़के के लंबे शिश्न की जानकारी हो गई और उसने उसका आनंद लेना चाहा। लड़के और स्त्री ने सहवास किया और स्त्री मर गई। लौटने पर पुरुषों ने लड़के को मार दिया और उसके हाथ व पैर से पेड़, बालों से घास, हड्डियों से पहाड़, खून से लाल मिट्टी और खोपड़ी से नारियल आदि बने (एलविन 1954, पृ. 3-4)। सृष्टि रचना की यह कथा सामान्य से नितांत भिन्न है। बोंडो लोग प्रायः सूर्य देवता को महाप्रभु कहते हैं, और उन्हें सृष्टि रचना से संबद्ध करते हैं। दिदई कथा में बाराह की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि सृष्टिकर्ता रूमरोक ने सबसे पहले उसकी पूंछ में थोड़ी मिट्टी चिपकी देखी। इस तनिक सी मिट्टी से पृथ्वी बनी, किंतु उस दलदली पृथ्वी का रूप पथरीला और कड़ा तभी बना जब रूमरोक ने बाराह को मारकर और उसकी हड्डियां पीसकर उस चूर्ण को पृथ्वी पर फैला दिया। (एलविन 1954, पृ0- 4) इस प्रकार की सृष्टि-रचना संबंधी कथाएं, जिसमें सृष्टि-रचना सूअर या कोई अन्य पशु अथवा शिश्न तथा प्रथम जनजाति पुरुष से संबंधित होती है, आदिवासी समाजों की अत्यंत आदिम प्रशाखाओं में आवश्यक रूप से मिलती हैं। सृष्टि रचना संबंधी उनके मिथक हिंदुओं के सृष्टि-रचना संबंधी मिथकों से बिलकुल भी प्रभावित नहीं प्रतीत होते हैं। परंतु कहीं कहीं उनके समांतर कोई

हिंदू-सृष्टि-रचना-मिथक हो सकते हैं (जैसा कि पहाड़ी बोंडों में मिलता है) और र मिथक के साथ साथ प्रचलित बने रहते हैं।

किटिंग महाप्रभु

गंजाम जिले के पहाड़ी सबर जैसी अपेक्षाकृत अधिक हिंदूकृत आदिवासी जातियों कुरइतुसुम किटिंग अथवा किटिंग महाप्रभु सृष्टिकर्ता के रूप में मिलते हैं। यहां वह पुरोचीन अथवा स्थानीय वृत्तांत देखने को सहज ही मिल जाता है जिसमें सू चंद्र का जन्म सृष्टि के पहले माना गया है। जल पर तैरते हुए, एक तूंबे में से कुर किटिंग निकले जिन्होंने कुछ जानवर और जंगल बनाये और तब राम और भीम को जो उनके आदि पुरुष हैं। संबलपुर की बिंझल अथवा बिंझवर जातियां अथवा उर्स की कामर जाति जैसी अधिक हिंदूकृत आदिवासी जातियां यह मानती हैं कि हिंदू व देवता भगवान ने पृथ्वी और इन्सान को बनाया है (एलविन 1954 अध्याय-1)

केंउझर और सुंदरगढ़ जिले के पहाड़ी भुइयों ने, जो धर्मानुष्ठान इत्यादि व हिंदू जाति ही माने जाते हैं, स्पष्टतया अपने सूर्य देवता को धरम देउता के रूप में रूप कर दिया है और उन्हें सृष्टि का रचयिता मान लिया है। उन्हें धरती माता वे संबंधित किया गया है, और वे धरमदेउता और धरती माता का आह्वान ओड़िसा के हिंदुओं की तरह ही करते हैं।

ठाकुर जी

यह भी देखा गया है कि इस हिंदू प्रभाव के कारण परम सृष्टिकर्ता भगवान का न बदल गया है, जैसा कि ओड़िसा के संथालों में मिलता है। संथालों के सिंगबोंग सूर्य देवता का कहीं कहीं दूसरा नाम हो गया है। मयूरभंज जिले में वे ठाकुर जी हैं। (मुखर्जी 1962)

त्रिमूर्ति

सृष्टि-रचना संबंधी हिंदूमिथक, जो पुराणों में वर्णित हैं, ओड़िसा की साधारण ज प्रचलित हैं। हिंदू देवताओं की त्रिमूर्ति—सर्जक ब्रह्मा, पालक विष्णु, संहारक शिव- मान्य हैं। सृष्टि रचना संबंधी हिंदू मिथक सुप्रसिद्ध है, जिसकी चर्चा की यहां आवश् नहीं है।

वाराह (शूकर)

हम यहां केवल सृष्टि रचना संबंधी आदिवासी एवं हिंदू मिथकों में समानता पर ही

करेंगे, जैसे कि आदिवासी मिथक शूकर और विष्णु के अवतार के रूप में। दोनों ही धारणाओं में वाराह ही पृथ्वी को स्थिरता देते हैं।

सूर्य-चंद्र मित्र

भिन्न आदिवासी मिथकों में सूर्य और चंद्र प्रायः एक साथ संबद्ध मिलते हैं। बोंडो में वे दो मित्रों के रूप में चित्रित हैं और महाप्रभु को सिंगी आर्के अथवा सूर्य चंद्र का रूप माना जाता है। (एलविन 1950,पृ. 12) उत्तरी ओड़िसा के जुआंग मिथक में संस्कृति नायक और सर्जक रुशी ने सूर्य और चंद्र को दो प्रकार की लकड़ियों से बनाया है। कुटिया कंध मिथक के अनुसार सर्जनकर्ता ने सूर्य और चंद्र को प्रकाश देने का कार्य नहीं दिया था। आगे चलकर उन्होंने सात सूर्य और सात चंद्र बनाये थे। किंतु उन्होंने इतना अधिक प्रकाश और ताप दिया कि छः सूर्यों और छः चंद्रों को खा लिया गया। इसी तरह हिंदूकृत पहाड़ी सबर अपने सर्वोच्च देवता महाप्रभु को सूर्य और चंद्र के निर्माण के साथ एक अनोखे ढंग से संबद्ध करते हैं। सूरज जब बना तब इतना गर्म था कि चट्टानें चटक गयीं, वृक्ष झुलस गयी, मनुष्य ताप से मर गये। तब महाप्रभु ने सूरज को अभिशाप दिया और उसकी एक आंख फूट गई। उसकी दूसरी आंख जो इतनी गर्म नहीं थी, चंद्रमा थी (एलविन 1954 पृ. 50)। पहाड़ी सबर का एक और मिथक देते हैं, जिसमें सूर्य और चंद्र को दंपत्ति के रूप में चित्रित किया गया है। सूर्य (डयूंगसूम) के बालों में एक फूल है। जब इसे लगाकर वह चंद्र के पास जाता है, विश्व बहुत गर्म हो जाता है क्योंकि इसका अर्थ सूर्य की उद्दीप्तावस्था है। जब वे अपने ऊपर पंखा झलते हैं, तब हवा चलने लगती है और विश्व ठंडा हो जाता है (एलविन 1954,पृ. 49)। सूर्य और चंद्र के निर्माण संबंधी मिथक का एक और वृतांत कोरापुट जिले के पहाड़ी सबरों में मिलता है, जिसमें सूर्य के ज्वालामय और तापमान होने की व्याख्या है; यद्यपि प्रारंभ में यह चंद्र के समान ही प्रकाशयुक्त था। सूर्यदेवी, इयुंगसूम की एक छोटी-सी लड़की थी जिसे वह सदा साथ रखती थी। जब उसे लंबे अर्से तक कुछ खाने को नहीं मिला, तब एक दिन उसने अपनी लड़की को ही खाने के लिए उसकी गर्दन काट दी। किंतु उसकी आत्मा बाहर निकल आयी और जमीन पर गिर पड़ी। उससे आग जल उठी, उसने बच्चे की देह जला डाली और आसपास का सारा कुछ भस्म कर दिया। वह आग सभी कुछ नष्ट कर देगी--इस भय से इयूंगसूम इस भय से बच्ची की जलती देह निगल गई और इस तरह इतनी गर्म और तेज हो गयी, जितनी आज है। यह ध्यान देने योग्य है कि अंजाम जिले में सूरज एक देवी है जबकि कोरापुट में वह पुरुष है।

संबलपुर जिले के हिंदूकृत बिंझवारों में एक और रोचक मिथक दिखाई पड़ता है, जिसके अंतर्गत न केवल देवता वरन् हिंदू समाज भी आ जाता है। जब कहीं कुछ नहीं

था, चारों और जल ही जल था, देवता पवन में रहते थे। एक दिन वे एकत्रित हुए और अपने शरीर के मैल से धरती और आकाश की रचना की। उसके बाद उन्होंने मानव बनाया, जो बढ़ईगिरी में निपुण थे। महादेव, महाप्रभु, बालि और सुग्रीव, ये चार देवता थे, जिन्होंने मानवों को जातियों में बांटा और उन्हें सभा के लिए बुलाया। चूंकि उस समय चंद्रमा नहीं था और न ही कोई तारा और रात घनी अंधेरी थी इसलिए देवता परेशान हो गये और सभा रोक दी। उन्होंने एक सुनार को एक दीपक बनाने के लिए बुलाया और उसने अपनी दुकान आकाश में बना ली तथा चांदी का एक दीपक बनाया और उसे बादलों के बीच जड़ दिया। महादेव ने अपने बायें अंग से कुछ चर्बी ली और उसे तेली के पास तेल बनाने ले गये। उन्होंने उसे दीपक में डाल दिया और जला दिया और तब आकाश प्रकाशित हो उठा। उसके बाद उन मनुष्यों की सभा फिर से भर गयी और यह तय किया कि प्रत्येक जाति कौन सा काम करेगी। महादेव और सुग्रीव ने दीपक को आशीर्वाद दिया कि वह रात को जला करे और दिन में बुझ जाय। यही चंद्रमा का मूल है। सुंदरगढ़ जिले के हिंदूकृत पहाड़ी भुइयां बसुधा देवी बासु की माता का आह्वान करते हैं; जिन्हें मनुष्यों पर दया आ जाती है क्योंकि वे सूर्य और चंद्र के बिना एक अंधकारपूर्ण विश्व में रहते थे। उनके नेत्रों में प्रकाश था और वे जो कुछ भी देखतीं उसमें प्रतिबिंबित हो जाता। उन्होंने अपनी आंखों से ज्योति निकाली और दायीं भुजा से एक लड़का लिया तथा बायीं भुजा से एक लड़की। लड़की का प्रकाश अपेक्षाकृत फीका था। वे दोनों प्रकाश की संतानें थीं। बासु की माता ने दोनों का परस्पर विवाह करा दिया। इस प्रकार सूर्य और चंद्र की रचना हुई। उनकी असंख्य संतानें हैं (स्पष्ट है कि ये तारे हैं) जो अपनी मां चंद्रमा के साथ सदा खेला करती हैं। केवल दो तारा संतानों को छोड़कर और कोई संतान दीखने में पिता के समान नहीं है। जब पिता ने यह देखा, वे कुछ और शंकालु हो उठे। उन्हें लगा कि दूसरी नक्षत्र संतानों को उनकी पत्नी ने किसी और के संपर्क से पाया होगा क्योंकि वे दीखने में उनके समान नहीं हैं। इसलिए उन्होंने उसे छोड़ दिया और तब से वे अलग रहते आ रहे हैं।

पर महीने में एक बार वे एक दूसरे को याद करते हैं। जब पति ब्यालू के लिए बैठता है, पत्नी उसके पास आती है, वह खाना छोड़ देता है और उसे पकड़ने की चेष्टा करता है। किंतु वह लाल हो जाती है, केवल यह दिखाने के लिए कि वह रजस्वला है (एलविन 1954 पृ. 37)। क्या अद्‌भुत काल्पनिक पद्धति है--तथ्यों को स्वप्न चित्रों और काव्य-कला में रूपायित करने की!

पहाड़ी बोंडो में सूर्यग्रहण और चंद्रग्रहण को समझाने की एक विलक्षण कहानी है। सूर्य और चंद्र ने भालू और बिच्छू से खूब सारी बांस की सीकें पत्तलें सिलने के लिए उधार लीं। चूंकि उन्होंने वे सीकें वापिस नहीं की, इसलिए भालू या बिच्छू कोई भी, दोनों (सूर्य व चंद्र) में से एक को जब भी पाते हैं, पकड़ लेते हैं (एलविन 1954 पृ. 50-51)।

यह बांस की सीकों के ऋण लेने की बात दिदई मिथक में भी मिलती है, जहां सृष्टिकर्ता भगवान रूमरोक सूर्य और चंद्र के विवाह का प्रबंध करते हैं और बांस की सीकें एक चांडाल सौदागर से उधार लेते हैं। जब सौदागर ब्याज सहित ऋण वापस लेने जाता है, सूर्य ब्याज नहीं चुका पाते। सौदागर अपने रुपयों के लिए कई बार आता है और हर बार उसे देखते ही सूरज छिप जाता है। किंतु एक दिन सौदागर उसे पकड़ लेता है और मांग करता है कि वह सीकों के बदले उसकी पत्नी को ले जायेगा। किंतु सूरज मना कर देता है, सौदागर चंद्र को पकड़ने की चेष्टा करता है। किंतू सूरज किसी तरह ऐन मौके पर दरवाजा बंद करने में सफल हो जाता है, केवल किवाड़ की एक फांक खुली रखता है जिससे पति पत्नी झांक सकें कि कहीं उनका साहूकार तो नहीं है? प्रायः हर साल इस घटना की पुनरावृत्ति होती है, यही कारण है कि हम ग्रहण देखते हैं। फुलवाणी जिले में कुटिया कंध, दूसरी आदिम जाति है, जो यह विश्वास करती है कि आकाश रूपी साम्राज्य पर सूर्य और चंद्र शासन करते हैं। सूर्य के बच्चे निरंतर चंद्र को तंग करते हैं, सो एक दिन चंद्र अपने बच्चों को बालों के जूड़े में छिपा लेती है और सूरज से कहती है कि उसने बच्चों को खा लिया है ताकि वह उस प्रचंड गर्मी को कम कर सके जो विश्व को सता रही है। सूर्य उसका विश्वास कर लेता है और अपने बच्चों को खा जाता है। किंतु बाद में चंद्र अपने बच्चों को बाहर निकाल लेती है और वे आकाश में चमकते हैं। इससे सूर्य आग बबूला हो उठता है और दोनों में भारी झगड़ा होता है। सूर्य ने चंद्र को धमकाया कि यदि कहीं भी उसकी (सूरज की) मुलाकात उससे (चंद्र) हुई तो वह उसे मार डालेगा। कभी कभी वे मिलते हैं, सूर्य चंद्र को पीटता है, बांध देता है और उसे कुछ देर के लिए कारागार में डाल देता है। और इस तरह हम चंद्र-ग्रहण देखते हैं। किंतु जब कभी चंद्र के बच्चे उसके साथ होते है, वह उसे (सूर्य को) अपने वश में कर लेती है, सूर्य बंदी बना लिया जाता है और सूर्य ग्रहण होता है।

ओड़िसा में हिंदूकृत आदिवासियों तथा सामान्य जनता दोनों में ही सूर्य भगवान और बसुधा देवी वासु कि माता का आह्वान किसी पवित्र कथन अथवा कर्म के साक्षी रूप में किया जाता है। पर ऐसा सदा नहीं किया जाता। सूर्य भगवान का पूजन प्रजनन के लिए भी एक खास अनुष्ठान है। इस ओषा के साथ संबद्ध मिथक स्पष्ट करता है कि किस प्रकार लोक-स्तर पर भी सूर्य देवता की परिकल्पना पौराणिक मिथक के अनुरूप (पांडवों की माता कुंती के पति के रूप में) की गई है। अर्क-क्षेत्र में निर्मित सूर्य मंदिर कोणार्क से स्पष्ट है कि ओड़िसा में सूर्य भगवान की पूजा अवश्य ही बहुत प्रचलित रही होगी। एक मिथक है जिसका संबंध इस पवित्र क्षेत्र से है। इसके अनुसार यहीं पर महाभारत के एक पात्र शाम्ब ने सूर्य भगवान की पूजा की थी तथा कुष्ठ रोग से मुक्ति पायी थी। सूर्य भगवान के सम्मान में रवि नारायण व्रत, पौष रविवार व्रत जैसे कुछ दूसरे व्रत भी

हैं, जिनमें संबंधित मिथकों, जो अब प्रकाशित हैं, का पाठ होता है।

सामान्य रूप से और लोकगीतों में भी, सर्वत्र चंद्र की परिकल्पना बच्चों के मामा "जन्ह मामूँ" के रूप में की जाती है। यद्यपि चंद्र पृथ्वी का एक उपग्रह है और इसकी पूजा एक प्रभावकारी ग्रह के रूप में की जाती है। जो विविध स्थितियों में स्त्री पुरुषों के क्रिया कलापों को, जब वह राशिचक्र की विभिन्न स्थितियों में रहता हैं, निर्धारित करता है। ओड़िसा में मांगलिक और महत्वपूर्ण धर्मानुष्ठानों के निर्धारण की दृष्टि से चंद्र पंचांग, सूर्य पंचांग से अभी भी अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। ग्रहण से संबंधित हिंदू पौराणिक कथाएं, जिनमें दैत्य राहु, सूर्य को निगलने की चेष्टा करता है, फलतः सूर्य ग्रहण होता है और दैत्य केतु चंद्र को निगलने का प्रयास करता है, फलतः चंद्र ग्रहण होता है—ओड़िसा में भी प्रचलित है।

प्रलय

(जल प्लावन) जल प्रलय संबंधी हिंदू पौराणिक अवधारणा आवर्तनमय है। सन् 1942 ई. के बाद जब आठ ग्रहों का अशुभ संयोग हुआ था तब आनेवाले जल प्रलय के बारे में कई भविष्य-वाणियां की गयी जो भविष्य-पुराण जैसे पुराणों के उल्लेखों के अनुरूप थीं। सामान्यतया लोक विश्वास के अनुसार जल-प्रलय विश्व के आवर्ती विनाश से संबद्ध है, जिसके बाद एक नये, बेहतर, सुखद और अधिक सदाचारी विश्व का जन्म हो सकेगा। जल प्रलय तब आता है जब मानव समाज अत्यंत प्राचीन धार्मिक नैतिक संहिता के विरुद्ध गंभीर भूलें, बुराइयां और पाप आदि में अंधाधुंध वृद्धि और संचय करता है। यद्यपि शिव संहार के देवता हैं, उन्हें सदा प्रलय के लिए जिम्मेदार नहीं माना जाता है।

सृष्टि रचना के पूर्व एक आद्य जल-प्रलय हुआ था। यह जल प्रलय एक ऐसा विश्वास है जिसे विश्व के प्रायः सभी लोग तथा ओड़िसा के हिंदू और आदिवासी जातियां भी मानती हैं। कोरापुट के पहाड़ी बोंडो में जल-प्रलय संबंधी एक ऐसा मिथक है जो संपूर्ण विश्व को ढंक लेता है। इस मिथक के अनुसार सर्वोच्च देवता महाप्रभु ने विश्व की पुनः रचना की (एलविन 1950 पृ. 35-36)। एक राजा के एक लड़का और एक लड़की थी। एक दिन उस लड़की को लौकी का बीज मिला और उसने उसे एक पहाड़ी पर फेंक दिया। उसमें बहुत बड़ी-बड़ी लौकियां लगीं। लड़के ने एक लौकी को भीतर से खोखला कर दिया और कहा कि यदि मूसलाधार वर्षा हो तो वे दोनों उसमें छिप सकते हैं। एक बार कई दिनों तक भीषण वर्षा होती रही, सारा विश्व जल प्लावित हो गया और वह तूँबा उस पानी की सतह पर तैरता रहा। तूंबे के भीतर वे बच्चे भूख से रोने लगे तो महाप्रभु उनकी सहायता को आये। उनके आदेश पर वाराह पृथ्वी को पाताल लोक से चुरा लाये। पृथ्वी के साथ वाराह सात पेड़ भी चुरा लाया। वाराह ने चुराई हुई मिट्टी शरीर पर पोत ली और

पानी में कूद पड़ा। जब बाहर आकर उसने शरीर को झंझोड़ा तो समुद्र की सतह पर सर्वत्र मिट्टी फैल गई और इस तरह एक नयी पृथ्वी का निर्माण हुआ। वाराह के बालों से घास बनी, सात पेड़ों के बीज से जंगल बना। तब महाप्रभु ने चेचक से उस भाई और बहन का चेहरा बदल दिया, जिससे वे एक दूसरे को पहचान न सकें। उन्होंने शादी कर ली और परिणामतः मानव जाति का उद्भव हुआ।

इसी प्रकार जल प्लावन संबंधी एक और कथा है जिसमें गिलहरी और हिरण आने वाले जल प्लावन के बारे में पहले से जानते थे। एक बार जब हिरणी झरने पर पानी पीने गयी तो वहां एक बोंडो उसका शिकार करने की ताक में बैठा था। गर्भस्थ भ्रूण ने उससे कहा कि वह पानी पीने जाये और यदि बोंडों उसे मार देता है तो वह उसके लिए अच्छा होगा क्योंकि किसी भी स्थिति में अगले दो दिनों में वह डूब जायेगी। बोंडों ने उसकी वह आवाज सुन ली और उसने हिरणी को छोड़ दिया। पूछने पर स्वयं महाप्रभु ने गर्भ के भीतर से घोषणा की और निर्देश दिया कि वह बच्चों को भोजन तथा हर तरह के अनाज के साथ तूंबे में ले जाये। महाप्रभु ने चारों और देखा कि जलप्रलय के बाद कहीं कोई मानव बचा है या नहीं? उन्होंने एक केंचुआ काटा और उसके अंदर कुछ मिट्टी देखी। वह तूँबा उस पर स्थापित कर दिया गया। महाप्रभु ने भाई और बहन को चेचक से आक्रांत कर दिया, जिसके बाद वे एक दूसरे को पहचान नहीं पाये, और दोनों ने विवाह कर लिया तथा मानव जाति का जन्म हुआ।

कोरापुट जिले की एक आदिवासी जाति दिदई में सृष्टि और संहार के देवता रूमरोक ने पृथ्वी को जलमग्न कर दिया। किंतु प्रलय के वाद नई रचना के लिए एक दिदई लड़का और लड़की बचा ली। तब उन्होंने एक नया विश्व बनाया, प्राणियों की रचना की और मनुष्यों को संस्कारवान बनाया। इस प्रकार के जल प्रलय संवंधी मिथक जो बोंडो और दिदई में मिलते हैं, ओड़िसा की दूसरी आदिवासी जातियों में सामान्यतया प्रचलित नहीं है। ये मिथक या तो एक ऐसी एकांतिक विचारधारा को चित्रित करते हैं, जिसमें हिंदुओं के आवर्तीय प्रलय की धारणा नहीं है अथवा कहीं हिंदू विचारणा के साथ एक हल्की सादृश्यता भी हो सकती है। इस संबंध में किसी भी मत की निभ्रांत स्थापना के लिए और अधिक अध्ययन की जरूरत है।

वर्षा

ओड़िसा के आदिवासियों में वर्षा की उत्पत्ति पर कई मिथक मिलते हैं। हिंदू मिथकों में वर्षा के देव स्वर्ग के इंद्र देवता हैं। कोरापुट जिले के गड़बा आदिवासियों के अनुसार इंद्र महाप्रभु ने वर्षा को अपने हौज में बंद कर दिया था। जब मनुष्यों को पीने तक को पानी

नहीं मिला, उन्होंनें सर्वोच्च भगवान इसपुर महाप्रभु से शिकायत की। इस पर महाप्रभु ने सारे देवों को बुलाया और कुछ वर्षा करने को कहा।

भीम और भिमाई

देवताओं ने इंद्र से लड़ाई का सुझाव दिया और इसपुर ने स्वीकार कर लिया। देवों ने इंद्र को हरा दिया और उसे बांध दिया। किंतु हौज की दीवार तोड़ी नहीं जा सकी। अंत में भीम महाप्रभु ने दीवार तोड़ी और वर्षा के रूप में धरती पर पानी गिरा। इंद्र महाप्रभु की लड़की ने उन्हें मुक्त किया और उन्होंने हौज की दीवार फिर से बनायी और वर्षा बंद हो गयी। इंद्र महाप्रभु ने अपनी लड़की का हाथ उस देवता को देने की इच्छा व्यक्त भी जो उनके दोनों जंगली भैसों को पालतू बना ले और उन्हें हल जोतने में लगा दे। इसमें केवल भीम महाप्रभु सफल हुए और वे अपने ससुराल में रहने चले गये। जब इंद्र मद्यपान कर लेते हैं, वे भीम से अपने लिए कुछ मछली मांगते हैं। भीम और उनकी पत्नी हौज को जाते हैं और मछली पकड़ने के लिए कुछ पानी उलीच देते हैं। इस प्रकार गिराया गया पानी पृथ्वी पर वर्षा के रूप में गिरता है। एक दूसरी गदबा कथा में भीम और भीम रानी वर्षा के लिए जिम्मेदार हैं। किंतु इस मिथक में वर्षा को सिर धोने से जोड़ा गया है, जो भीमरानी मासिक धर्म के बाद करती है। यही कारण है कि आषाढ़ में मूसलाधार वर्षा होती है। बाद के महीनों में भीमा राजा अपने नौकरों को बेड़े में बंद कर देते हैं। और वे पानी छिड़कते हैं, फलतः वर्षा होती है।

बोंडो वर्षा का श्रेय भिमाई को देते हैं। भिमाई आकाश में सोते हैं। जब वे जगते और मुंह धोते हैं, तब पानी गिरता है। जब वे कपड़ा पहन लेते हैं तो ठंड हो जाती है। जब वे नग्न हो जाते हैं तब गर्मी हो जाती है। (एलविन 1950 पृ. 141)

यहां भिमाई स्वर्ग के देवता हैं। एक दूसरे मिथक में भिमाई जलखामुई को प्रेम करते हैं जो असंख्य मेंढकों की मां है। वे कुछ मेंढक चुरा लेते हैं और अपने खाली हौज में रखते हैं। तब वे उनकी मां (अपनी प्रेमिका) को प्रेरित करते हैं कि वह समुद्र से पानी लेकर हौज में गिराये। यही पानी वर्षा बनकर गिरता है (एलविन 1950 पृ. 142)।

करवटी राजा

हिंदूकृत बिंझवार जाति में एक मिथक है कि एक राजा का स्वर्ग और पृथ्वी के बीच साम्राज्य था। वह एक बार में चौबीस वर्ष सोता था और हर बारह वर्षों के बाद सोते हुए करवट बदलता था। उसके कान पर्वताकार थे और वह अपना एक कान छत के रूप में तथा एक कान बिछौने की तरह उपयोग करता था। एक बार ऐसा हुआ कि जिस दिन उसने करवट बदली उसी दिन इंद्र राजा का पेट फट गया तथा सारा पानी निकलकर फैल गया।

धरती पर बाढ़ को देखा, उसे मनुष्यों पर दया आ गयी। उसने सारा पानी अपने कानों में भर लिया। दूसरे वर्ष उसने मनुष्यों को बताया कि जब कभी उन्हें पानी की जरूरत होगी तो वह अपने कानों को हिला देगा। उसने लोगों से कहा कि जब कभी उन्हें वर्षा की जरूरत हो, वे उसे जगा दें। संबलपुर के सूखे प्रदेशों में बिझवार अभी भी विश्वास करते हैं कि करवटी राजा सो रहा है और कोई उसके पास पहुंच नहीं पा रहा है, और जगा नहीं पा रहा है और इसलिए सूखा और अकाल है।

नदियां

भारत के हिंदुओं की तरह ओड़िसा के लोग भी गंगा, यमुना, सरस्वती, नर्मदा, गोदावरी, कावेरी और ब्रह्मपुत्र आदि नदियों के संबंध में पुराणों में वर्णित कथाओं पर विश्वास करते हैं। फिर भी वैतरिणी नदी सांस्कृतिक रूप से अत्यंत प्रसिद्ध है क्योंकि पवित्र आत्माओं को स्वर्ग पहुंचने के लिए इसे अपनी यात्रा में पार करना पड़ता है। इसकी तुलना ग्रीक मिथक स्टीक्स से की जा सकती है। वैतरिणी तट पर स्थित पवित्रपीठ जाजपुर शक्ति पंथ का प्रसिद्ध केंद्र है। ऐसा विश्वास है कि भगवान शिव की पत्नी, सती पार्वती की योनि उनकी आत्महत्या के बाद इस स्थान पर गिरी थी। गंगा और यमुना देवियां भारत में सर्वत्र पूजी जाती हैं। जबकि कावेरी, गोदावरी और नर्मदा, सावी स्त्रियां थीं जो कालांतर में देव तुल्य मानी गयीं। ब्रह्मपुत्र का देवीकरण हुआ है।

ओड़िसा की दूसरी पवित्र नदियों में चंद्रभागा है, जिसका संबंध महाभारत के शाम्ब तथा सूर्य भगवान संबंधी मिथक से है। ब्राह्मणी नदी का संबंध महाभारत के रचयिता वेदव्यास के आश्रम से है; जो राऊरकेला के पास दो पहाड़ी नदियों के संगम पर स्थित है, जहां वह एक विशाल नदी का रूप धारण करती है। ब्राह्मणी नदी की उत्पत्ति के संबंध में एक और मिथक है। एक किसान की दो लड़कियां थीं, शंखा और कोइली। वे विमाता के दुर्व्यवहार के कारण घर से भाग गयीं और उन्होंने वन में कुछ अनजान अंडे खा लिये। परिणामस्वरूप उनके शरीर के निचले हिस्से कमर तक सांप की तरह हो गये और ऊपर के हिस्से स्त्री के समान बने रहे। देवताओं ने उन्हें दो नदियों का रूप दे दिया जिनका संगम वेदव्यास में होता है तथा यहीं वे ब्राह्मणी नदी बन जाती हैं। वैतरिणी नदी की उत्पत्ति संबंधी मिथक और भी पुनीत है। भगवान महादेव ने एक दिन क्रोध में पवित्र गाय कचिलौ के बछड़े बउल का गला काट दिया क्योंकि बउल ने भगवान की पूजा के लिए रखी हुई कुश दुर्वा खा ली थी। चूंकि महादेव जी ने गोहत्या का महापाप कर डाला था। इसलिए उस बछड़े का सिर उनके हाथ पर लगा रहा। उन्हें बारह वर्षों तक प्रायश्चित करना पड़ा और उस सिर को हाथ पर धारण करना पड़ा। प्रायश्चित के फलस्वरूप अंततोगत्वा वह सिर उनसे अलग हुआ और एक पहाड़ पर गिर पड़ा। जिसका नाम

गो-नाशिका पड़ा। उस पहाड़ी पर शिवजी की पत्नी पार्वती जी के डर से गंगा छिपी हुई थीं। गो-नाशिका पहाड़ी जुआंग आदिवासियों के इलाके में आता है जो गोमांस खाते हैं। गंगा उस पहाड़ पर से नीचे बहना नहीं चाहती थी, जो गो-हत्या के कारण अपवित्र हो गया था। अतः ब्रह्मा जी को स्थान-स्थान पर यज्ञ करते हुए उनके आगे आगे चलना पड़ा और इस प्रकार से शुद्ध किये गये मार्ग पर गंगा वैतरिणी के रूप में प्रवाहित हुई। विशालतम नदी महानदी का भी इसी भांति पवित्र संबंध है। महानदी के उद्गम का संबंध भी महान संत सुकांति के प्रायश्चित से है। उनके मार्ग को एक पर्वत ने सात कोश अथवा चौदह मील तक रोक दिया था। उसके लिए संत सुकांति को तपस्या करनी पड़ी और देवराज इन्द्र से प्रार्थना करनी पड़ी, जिन्होंने अपने वज्र से उसे चकनाचूर कर दिया। यह महानदी की विशाल कटान का उद्भव है जो चौदह मील तक फैली है।

ढेंकानाल जिले के जुआंगों का, पानी के संबंध में एक मिथक है। सात भाई थे जो शिकार को गये और बड़े प्यासे हो गये। उन्होंने दूर-दूर तक पानी खोजा, किंतु उन्हें प्यास बुझाने को कुछ नहीं दिखाई दिया। सबसे छोटे भाई ने अपनी मां का नाम लेकर पुकारा क्योंकि उसने प्यास लगने पर ऐसा करने को उससे कहा था। उसने सृष्टि के रचयिता रूसी और पतर सउरूनी के नाम लिये तथा एक पत्थर उठाया और वहां पानी मिल गया। उस दिन से विश्व में पानी हो गया (एलविन 1954 पृ. 83)। कोरापुट जिले की एक और आदिम जाति पहाड़ी सअर नदी की उत्पत्ति के संबंध में एक कथा कहते हैं। प्राचीन काल में केवल पानी के गढ़वे और सोते थे किंतु नदियां नहीं थीं। वाएनो सअर की लड़की थी, जो बड़ी हो गयी और वयस्क होने लगी पर रजस्वला नहीं हुई। उसका विवाह भी हुआ किंतु उसके दो वर्षो बाद ही वह रजवती हुई। जिस दिन उसने झरने में स्नान किया, उसने अपना घड़ा पानी से भर लिया और लौट आयी। रास्ते में वह एक पत्थर से टकरा गयी और घड़ा गिरकर टूट गया। पानी इतने वेग से बहा कि उसने जमीन में घाटी बना ली और वहीं पहिली नदी बनी।

कलाहांडी जिले के कंध, नदियों की उत्पत्ति के संबंध में एक कथा कहते हैं। सुकाबेंज और उदलावेंज के दो बच्चे हुए। उनके पास उन्हें नहलाने को पानी नहीं था और उनकी माताएं बड़ी प्यासी थीं। अतः वे अपने कुत्ते के साथ पानी की खोज में निकलीं। जब वे थक गयीं, वे बैठ गयीं। किंतु कुत्ते ने पेशाब किया और उस गीली जमीन को खोदा जिसके नीचे उसे थोड़ा पानी मिला। कुत्ता दौड़ता हुआ औरतों के पास पहुंचा, भौंका और पैर चाटने लगा। वे उस पर नाराज हुईं और कुत्ते को भगा दिया। अतः कुत्ता चला गया और पानी के पास सो गया। सुकावेंज और उदला बेंज को कुत्ते की याद आई और जब उन्होंने उसे पानी के निकट पाया तो वे बहुत खुश हुईं। किंतु जल घर लाने के लिये उनके पास कोई बर्तन नहीं था। अतः उन्होंने धनुष से एक लकीर खीचीं और पानी को उसमें

से होकर छलछलाते हुए घर तक ले गयीं। वहां उन्होंने एक तालाब बनाया और उसके चारों ओर मजबूत दीवार बनायी। इस तालाब से बहने वाली जल की धारा ही पहिली नदी है।

देव और देवियां

हिंदू देवकुल में असंख्य देव देवियां हैं जो एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में, एक भाषायी क्षेत्र से दूसरे में, एक जाति अथवा आदिवासी समुदाय से दूसरे में भिन्न भिन्न हैं। पूरे भारत में तो यह सामान्य स्थिति है ही। परंतु ओड़िसा में वह विशेष रूप से है। इस विविधता और विभिन्नता के बावजूद हम देव और देवियों में अनेक विभेदीकरण भी देख सकते हैं। सर्वप्रथम अखिल भारतीय वैदिक अथवा पौराणिक देव-देवियां आते हैं जिनके बारे में प्रायः एक समान मिथक सारे भारत में मिलते हैं। कहा जा सकता है कि ये देव देवियां उस परंपरा के अंतर्गत आते हैं जो परंपरा अथवा धर्मग्रंथ सम्मत-परंपरा अथवा संस्कृत परंपरा के रूप में मानी जाती है। द्वितीय स्तर का संवंध विशेष देव देवियों से हैं जो खासतौर पर कतिपय प्रदेशों में अथवा किसी प्रांत, जिला अथवा गांव के स्थानीय समुदायों में पूज्य हैं। तृतीय स्तर पर हम उन देवों को पाते हैं, जो किसी व्यावसायिक समुदाय या जातीय समुदाय अथवा आदिवासी समुदाय में वंदनीय हैं। जव हम लोकपरंपरा में आने वाले देव देवियों से संबद्ध मिथकों के बारे में सोचते हैं तव हम निश्चित रूप से अंतिम दो स्तरों के बारे में सोचते हैं, जिनमें संस्कृत परंपरा के वे देव देवियां भी आ जाते हैं, जिन्होंने स्थानीय रूप ले लिये हैं और वे प्रादेशिक या स्थानीय संस्कृति की जनश्रुति में सम्मिलित हो जाते हैं।

अखिल भारतीय स्वरूप

हिंदू त्रि देव--ब्रह्मा, विष्णु और महेश– के अखिल भारतीय स्वरूप हैं। किंतु कभी-कभी इसमें स्थानीय प्रभेद भी मिलता है। कुछ पुराणों के अनुसार ब्रह्मा जी को कलियुग में देवी का अवतार लेने तथा केवल त्रिदेव मूर्ति के अन्य देवों के साथ पूजा पाने का अभिशाप मिला था। हमें महाप्रभु जगन्नाथ से संबद्ध सुप्रसिद्ध मिथकों के विस्तार में जाने की जरूरत नहीं है, जिनका पावन मंदिर पुरी में है, जो लगभग आठवीं शताब्दी में बना था। ओड़िसा में वैष्णव परंपरा ने, जिसका प्रतीक जगन्नाथ पंथ है, लोक स्तर पर विष्णु से संबंधित अनेक मिथकों को जन्म दिया है। उदाहरण के लिए हमें वालसोर जिला के रेमुना में "खीर-चोर-गोपीनाथ" (गोपी-जन-वल्लभ जो खीर चुराते हैं,) की स्थापना मिलती है तथा पुरी जिले के साक्षी-गोपाल (गोपाल जिन्होंने साक्षी दी थी)। उक्त नाम वाले स्थान पर स्थापित है।

स्थानीय देव-देवी

हाल ही में त्रिदेव मूर्ति "त्रि-नाथ मेला-पंथ" के रूप में अत्यंत लोकप्रिय हो गयी है। यह पंथ पिछले सौ वर्षो से भी कम अवधि में समूचे ओड़िसा में तथा उसके बाहर भी फैल गया है। भगवान शिव अपनी पत्नी पार्वती अथवा गौरी के साथ अथवा उनसे अलग ओड़िसा के लोक स्तरीय मिथकों में इसी तरह प्रवेश कर चुके हैं। ऐसे अनेक धार्मिक पर्व हैं जिन्हें अधिकतर स्त्रियां मनाती हैं। इन पर्वों का उनसे संबद्ध मिथकों द्वारा समर्थन होता है, जिनसे उनके उद्‌भव पर प्रकाश पड़ता है। लक्ष्मी, काली, दुर्गा, धरती आदि के चारों और इसी तरह के अनेक मिथक और सहचारी धार्मिक प्रथाएं भी मिलती हैं। जब हम क्षेत्रीय और स्थानीय देवों पर आते हैं तो हमें ऐसे मिथकों पर विचार करना पड़ता है जिनका संबंध सर्प देवी, मंगला ग्राम्य देवी जैसी अथवा अन्य पूर्णतया स्थानीय देवों और देवियों, महाभारी देवी तथा पर्वत, सरिता, वन, पोखर आदि से संबद्ध स्थानीय देवी एवं देवताओं तथा राजकीय संप्रदाय से संबंधित देवी-देवताओं (जैसे पूर्व रियासतों—बस्तर की दन्तेश्वरी देवी, संबलपुर की समलेश्वरी, बोनाई की कंटकुँआरी आदि आदि) से है।

देशज रूपों की विशेषताएं

तीसरे स्तर के वर्गीकरण में हमें कुछ ऐसे अखिल भारतीय अथवा संस्कृत परंपरा के देव देवियां मिलते हैं, जिन्हें स्थानीय संदर्भ देकर व्यावसायिक अथवा जातीय समुदायों ने स्वीकारा है। उदाहरणार्थ-काष्ठकार, धातुकर्मी, राजमिस्त्री तथा नये युग में अभियंताओं के लिए विश्वकर्मा विशेष रूप से पूज्य हैं। उसी प्रकार योद्धाओं के लिए देवी दुर्गा विशेष रूप से पूज्य हैं और देवी लक्ष्मी व्यापारी समुदाय की परम पूज्या हैं। पर जब देवी लक्ष्मी अन्नदेवी अथवा सामान्यतया उर्वरता की देवी मानी जाती हैं, तव आधारभूत रूप से उनके मिथकीय स्वरूप में लोकतत्व मिलते हैं जिसका संबंध मुख्यतया कृषक वर्ग से रहता है। पश्चिमी ओड़िसा के कृषक वर्ग, जो कुलटा कहलाते हैं, की एक विशिष्ट जातीय देवी हैं जो उस जाति की नियति की संचालिका और हितों की संरक्षिका हैं। अन्य जातियों में भी इस तरह की देव प्रतिमाएं है; जिनके चारों और मिथकों की रचना हुई है।

परस्पर घुलते-मिलते मिथक

प्रत्येक आदिवासी समुदाय, यहां तक कि उन समुदायों में भी जो पूर्णतया हिन्दूकृत हो गये हैं, जैसे पश्चिम ओड़िसा के बिंझवार, कोरापुर जिले के मराठा और ओमानैय्या, सुंदरगढ़ जिले के भुइयां तथा कुछ वर्गों के कंध और शुद्ध सअर अथवा देंकानाल जिले के कुछ जुआंग गांव आदि में भी देवी देवताओं का एक ऐसा स्पष्ट वर्ग मिलता है, जो हिंदू देव-कुलों में नहीं है। हिंदू देवी-देवताओं तथा तत्संबंधी मिथकों का आदिवासी देव-प्रतिमाओं एवं

मिथकों में आत्मसात हो जाना कोई अचरज की बात नहीं हैं। क्योंकि आदिवासी समुदाय तथा उनके हिंदू पड़ोसी शताब्दियों से साथ-साथ रहते आ रहे हैं। और आदिवासियों द्वारा हिंदू तौर-तरीकों को आत्मसात कर लेना पारंपरिक एवं क्रमिक है।

सर्वोच्च देवता

हमें कई आदिवासी समुदायों में सर्वोच्च देवता की अवधारणा मिलती है जिसे अधिकतर सूर्य अथवा चंद्र रूप में जाना जाता है। उसे उरांव में धरमेश, संथाली तथा मुंडारी बोलने वाले कुछ अन्य लोगों में सिंगबोंग, बोंडो में सिंगी आर्के तथा भुइयां एवं कई हिंदूकृत आदिवासी समुदायों में धरम के देउता कहा जाता है। यहां तक कि बोंडो में उसे कभी-कभी महाप्रभु का रूप माना जाता है। सूर्य देव प्रायः सृष्टि-कर्ता माने जाते हैं, परंतु वे यदा-कदा नैतिक देव भी हैं जो सदाचारी का समर्थन करते और दुराचारी को दंडित करते हैं। कंधों में निरंतली परम देवी हैं और उन्हें वसुधा-देवी का रूप माना जाता है। कई और हिंदू-कृत आदिवासी जातियों में जैसे बिंझवार, झमार और कुछ गोंडो में सर्वोच्च हिंदू देव के नाम "भगवान" को अपना लिया गया है। चाहे वे उसे भगवान कहें या महाप्रभु और हिंदू सर्वोच्च देव की समस्त विशेषताएं उसमें विद्यमान हों या नहीं, परंतु बहुधा देखा जाता है कि उसकी पुनर्व्याख्या और रूपांतरण कर लिया जाता है कि जिससे वह उनका अपना लगने लगे।

देव, देवियां, पितर

सर्वोच्च देव के अतिरिक्त आदिवासी लोग पर्वत, नदी, वन, चक्रीय-कृषि, ग्राम्यक्षेत्र, आवास क्षेत्र इत्यादि के देवी-देवताओं तथा जन्म और विवाह आदि जैसे कतिपय महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठानों के अधिष्ठाता तथा रोगों और महामारियों से संबंधित देव और आत्माओं आदि पर भी विश्वास करते हैं। पूर्वजों की आत्माएं दूसरी कोटि में आती हैं और परिवार के महत्वपूर्ण अवसरों पर पूजी की जाती है। ऐसा माना जाता है कि वे किसी न किसी रूप में जीवितों के साथ संपर्क रखती हैं और उनके क्रिया-कलापों पर निगरानी रखती हैं और भूल-चूक पर रोग और विपत्ति भेजकर दंडित करती हैं।

आदिवासी जीवन में मादक द्रव्य–स्थान और मिथक

मादक द्रव्य सारे भारत के आदिवासियों के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं, यद्यपि अन्यत्र जन-साधारण के जीवन में उनका आपेक्षिक रूप से कम महत्व है। ओड़िसा में द्वितीय विश्व युद्ध तक अफीम अत्यंत लोकप्रिय रहा है। पर महात्मा गांधी के प्रभाव से सुधारकों तथा राजनीतिक कार्यकर्ताओं द्वारा इसके खिलाफ जोरदार आंदोलन से इसका

उपयोग प्रायः खत्म सा हो गया है। अंग्रेजों के द्वारा गांजे पर एकाधिकार लायसेंस नियम लागू कर देने से गांजा की चिलम और उसका पान समाप्त हो गया था। इसी तरह शराब के उत्पादन और विक्रय संबंधी एकाधिकार लायसेंस-नीति से शराब के पीने पर नियंत्रण लग गया था। इन क्षेत्रों में जहां आदिवासी अपने लिए तंबाकू उपजाते हैं, अपना मद अथवा मंड बनाते हैं तथा ताड़ी निकालते हैं, इस प्रकार के प्रतिबंध सीमित हैं। इसके अलावा आदिवासियों के अनेक धर्मानुष्ठानों में शराब आनुष्ठानिक रूप से देवताओं और आत्माओं को चढ़ायीं जाती है। गांजा और इसके साथ भांग– दोनों सामान्यतया आदिवासी क्षेत्रों में नहीं पाये जाते हैं।

ओड़िसा के आदिवासियों में तंबाकू और मंड से संबंधित अनेक मिथक प्रचलित हैं। कुछ मिथकों में जैसा कि बोंडा में मिलता है, स्वयं महाप्रभु ने बोंडो को तंबाकू का पौधा दिया और उसकी खेती कैसे करनी चाहिए तथा उसे कैसे पीना चाहिए, इसका निर्देश दिया। एक रोचक बोंडो मिथक उल्लेखनीय है। एक बार की बात है, एक विशाल सांप था जिसकी दियामती कनिया नामक एक अत्यंत सुंदर पर वासनामयी स्त्री थी। सांप उसे संतुष्ट नहीं कर सका। फिर भी वह विशालकाय था तथा दर्प से कहता था कि वह संपूर्ण विश्व तथा सारी मानव जाति को निगल सकता है। जव वह अपनी पत्नी पर गरजता था तब धरती डगमगा उठती थी। सांप छः महीने सोता था, एक दिन को जगता था और पुनः सो जाता था। महाप्रभु ने सोचा, यदि सांप को नहीं मारा गया तो वह सारे विश्व को नष्ट कर देगा। एक दिन वे सांप के घर उस समय गये, जब वह सो रहा था। वे दियामती के प्रेम में पड़ गए। यद्यपि उसने उनका स्वागत किया, पर उसे सांप के जग जाने का भय था। महाप्रभु उसे हमेशा अपने साथ रखना चाहते थे। चूंकि पत्नी राजी थी, महाप्रभु ने उसे सुझाव दिया कि वह पहले अपने पति को मार डाले। जब सांप सोकर जागा तो पत्नी ने उससे पूछा कि वह अपनी आत्मा को कहां रखता है? सांप ने उससे उलट कर पूछा कि उसने अपना जीव कहां रखा है? जब उसने उसे बता दिया तो सांप ने घड़ा, चमचा और पंखा उठाकर फेंक दिया और स्त्री मर गयी। पर फिर सांप को पछतावा हुआ। उसने उन वस्तुओं को वापस एक जगह रख दिया और तब उसकी पत्नी पुनर्जीवित हो गयी। अब उसे भी बताना पड़ा कि उसने अपने प्राण कहां रखे है। सांप के प्राण एक तोते में थे जो समुद्र में मगरमच्छ के साथ रहता था। जब पत्नी ने पूछा कि वह उसे कैसे देख सकेगी, उसने कहा कि वह अपने साथ एक सूअर का बच्चा ले जाये और उसे समुद्र में फेंक दे, जिससे मगरमच्छ उसे खा जायेगा और वह आसानी से तोता को पकड़ सकेगी। इसके बाद सांप सोने चला गया। जब महाप्रभु ने देखा कि वह सो रहा है, वे दियामती से मिले और उसने उन्हें बताया कि सांप के प्राण कहां हैं। उन्होंने तोते को अपने हाथों में पकड़ लिया और उसके पंख निकाल दिये तथा पक्षी को मार दिया। सांप मर गया।

किंतु अब महाप्रभु विधवा से डरने लगे। वे उसे तुष्ट करने के लिये एक हाथी ले आये, किंतु विधवा संतुष्ट नहीं हुई। वह महाप्रभु को अपने प्रेमी के रूप में चाहती थी। महाप्रभु ने फिर से इंकार कर दिया, तब विधवा बड़ी नाराज हुई। महाप्रभु ने तब उसकी खूब पिटाई की और वह मर गयी। उन्होंने उसे गाड़ दिया और तुरंत ही उसके सिर से एक सुंदर पौधा उगा। जब मनुष्यों ने उसे देखा, तब उन्होंने उसकी पत्तियां सब्जी की तरह पकायीं और खायीं। उन्हें नशा चढ़ गया। पहले वे पत्तियां कच्ची खाया करते थे, असंख्य व्यक्तियों ने पत्तियों का आनंद लिया और अब अंत में दियामती संतुष्ट हुई, क्योंकि शीघ्र ही सारा संसार उसका उपभोग करने लगा (एलविन 1954, पृ. 174-76)। एलविन के अनुसार विविध रूपों में यही मूल भाव गड़बा, जुआंग, कंध, मुरिया और गोंड लोगों की कथाओं में मिलता है। कंध भी तंबाकू के वरदान का श्रेय सर्वोच्च देव निरंतली को देते हैं, जिन्होंने उनके जीवन के कष्टों से द्रवित होकर उन्हें तंबाकू की पत्तियों से बने चुरुट को पीना सिखाया।

पहाड़ी और सअर, राम और भीम—इन दोनों देवों को, तंबाकू की खेती तथा चुरुट बनाने का श्रेय देते हैं। एक दिन राम अपने भाई भीम से झगड़ पड़े और अलग रहने लगे तथा उससे बोलचाल बंद कर दी। किटुंग ने दोनों में मेल कराना चाहा, पर वे विफल रहे। रात को किटुंग ने एक डोम को (एक हरिजन जाति जिसका संबंध कोरापुट जिले के पहाड़ी सअर से है।) भेजा जो चुरुट बनाना जानता था और उससे कहा कि वह राम के बगीचे में जितने भी तंबाकू के पौधे हैं, उखाड़ ले और उनके पास ले आये। अब राम के पास धूम्रपान करते हुए राम के घर के सामने घूमने को कहा। जब राम ने उन्हें देखा, तब अधिकाधिक उत्तेजित होने लगा। अंत में उसने भीम से थोड़ा तंबाकू देने का अनुरोध किया। इस तरह दोनों फिर से मित्र बन गये। तंबाकू के उपहार ने लोगों में आपस में मित्रता की भावना पैदा की है, यह मान्यता बोंडो तथा एक दूसरे आदिवासियों के मिथकों में भी मिलती है। एक और पहाड़ी सअर मिथक में कहा गया है कि चार सअर भाई जंगल में अपनी पत्नियों के साथ रहते थे। उन दिनों जब आदमी खांसते या छींकते नहीं थे तो स्त्रियों को यह चिंता रहती थी कि उन्हें पति या किसी अजनबी के आने की पूर्व सूचना नहीं हो पाती थी। कभी कभी वे असावधानी में सामने पड़ जाती थीं और लज्जित होती थीं। स्त्रियां, कुसुम देव के पास गयीं और उनसे इसके समाधान की याचना की। भगवान ने उन्हें एक तंबाकू की पत्ती दी और उसे पीसने तथा पति लोगों के घर आने पर उनके सामने फेंक देने को कहा। उन्होंने वैसा ही किया और पुरुष खांसने और छींकने लगे और तब से यह मानव जाति के पास हैं (एलविन 1954 पृ. 181-82)।

केंउझर जिले के आदिम जुआंग इस मिथक को अपने ताड़ मंद या ताड़ी के संदर्भ में कहते हैं। एक बार मलयावन बूढ़ा (शायद मलयगिरि पर्वत के नाम पर) और मलयावन

बूढ़ी को एक पोता हुआ, जिसका नाम चेरियोटका (शायद चेरियोटका पहाड़ी चोटी के नाम पर) था। सातों बहनों ने चेरियोटका के साथ सात दिन बिना खाये पीये नाचने की योजना बनायी। पर नाच के दौरान लड़के को बड़ी भूख लगी, वह चुपके से भोजन के लिए निकल गया और बिना कुछ कहे लौट आया। जब सात दिनों के बाद सभी नदी पर मुंह धोने गये, चेरियोटका के मुंह से चावल निकल आया। तब बहनों ने जाना कि उसने छिपकर खाना खाया है और उन्होंने कहा कि यदि हम इसे छुएंगे तो छूत लग जायेगी। लड़के ने उन्हें पकड़ना चाहा पर वे दौड़कर भाग गयीं। जब वे दौड़ रही थीं, उनके कानों से गहने गिर गये जो खजूर के पेड़ बन गये। बाहों से बाजूबंद गिर पड़े, जो सागू ताड़ बन गये। कौड़ियों का गुच्छा बालों से गिरा जो महुआ वृक्ष बन गया। सिर से बाल गिरे जो ताड़ वृक्ष बन गये। उस दिन से आज तक जुआंग जब भी किसी ताड़ वृक्ष का रस लेते हैं तो वे सात बहनों के नाम पर उसे पीते हैं और वे प्रथम पेय किसी स्त्री को देते हैं क्योंकि ऐसा विश्वास है कि इन पेड़ों में तभी रस अच्छा होगा (एलविन 1954 पृ. 189-90)। ढेंकानाल जिले के एक और जुआंग मिथक में संस्कृति नामक स्त्री महाप्रभु से पूछने गयी कि उनके लिए खाने को क्या है? महाप्रभु ने एक आम का पेड़, खजूर , एक बाड़ और एक जीरे का पेड़ उनकी सारी जरूरतों को पूरा करने के लिए दिया। मिथक में वर्णित हे कि किस तरह स्त्री खजूर और ताड़ का रस पीकर वेहद खुश हुई। ऐसे अनेक और मिथक बोंडो, गोंड, बिंझवार; कोया, कंध और पहाड़ी सअर में मिलते हैं, जिनका संबंध महाप्रभु भगवान और कभी-कभी आदिवासी देवताओं से है जिन्होंने विभिन्न प्रकार के ताड़ वृक्षों से इन्हें ताड़ी मंद पीने की विद्यि वतायी । पहाड़ी सअर के एक किथक का संबंध ताड़ीमंद पीने की विधि वतायी। पहाड़ी सअर के एक मिथक का संबंध ताड़ी मंद पीने की बुराइयों से है। पहले विश्व में बड़ी शांति थी, कोई बीमारी नहीं थी कोई धर्म ग्रंथ नहीं था, बलिदान नहीं था, पुरोहित नहीं था। पर जब से मनुष्यों ने ताड़ी मंद पीना सीख लिया, वे उन वृक्षों को पाने को गहन जंगल में जाने लगे। एक दूसरे की चोरी करना सीख गये और कई झगड़े और दंगे हुए। इस मिथक के अनुसार प्रथम (जगूड़ा को सागू वृक्ष से रस निकालने से प्रथम सिद्धि मिली तथा उसने देवों को सागू मंद चढ़ाया। स्वयं देवताओं ने ताड़ वृक्ष से जन्म लिया और वे उसके रस को मां का दूध मानते थे (एलविन 1954 पृ. 199)।

बोंडो, मारिआ और कमार लोगों को महुआ देने, उससे शराब बनाने और उसके फूल और फल को खाने की शिक्षा महाप्रभु तथा महादेव ने दी। कंधों की निरन्ताली तथा पहाड़ी सअर लोगों के किटुंग के लिए भी यही विख्यात है। गड़बा जीवन में महुआ की शराब कहां तक घुली मिली है, यह निम्नलिखित मिथक से ज्ञात होता है : एक बार एक गड़बा पुजारी के पास कंधों के एक देव आये। देव ने पुजारी से पीने के लिए शराब देने

को कहा, अन्यथा वह उसे अपनी कुल्हाड़ी से मार देंगे। पुजारी शराब ढूंढ़ने गया और एक पहाड़ी पर पहुंचा, जहां एक सुन्धीमारी देवता रहते थे। पुजारी ने इस देवता से शराब लेकर कंध देव को दिया। सुन्धीमारी देवता के आसवन की गंध चारों ओर फैल गयी और देवता आ गए और थोड़ी थोड़ी शराब मांगने लगे। चूंकि उसने उन्हें शराब देने से मना कर दिया, देवों ने उसका सिर काट लिया। सिर पहाड़ पर से लुढ़कता हुआ राजपूत गांव पहुंचा, जहां पत्थर बन गया। (जहां पर यह मिथक लिखा गया) गड़बा इस पत्थर पर प्रतिवर्ष बलि चढ़ाते हैं और जब यह मद बनाते हैं, सुन्धमारी देवता का आह्वान करते हैं।

ढेंकानाल जिले के पहाड़ी भुइयां चावल के मद के बारे में जो ओड़िसा के लगभग सभी आदिवासियों द्वारा पिया जाता है, एक मिथक सुनाते हैं। बोरम बूढ़ा, एक देवतुल्य संस्कृति-नायक ने घड़ा भर चावल लिया और जंगल में हल चलाने के लिए चला गया। वहां उसे बहुत सारी पितरु की जड़ें मिलीं। वह उन्हें घर खाने के लिए ले गया। चूंकि कुछ दूसरी जड़ें भी पितरु में मिल गयीं, वह दोनों प्रकार की जड़ों को अलग अलग रखने लगा। दूसरे प्रकार की जड़ें संयोगवश चावल के घड़े में गिर गयीं। किंतु बोरम बूढ़े ने इसे नहीं देखा। बोरम बूढ़े ने भुनी हुई पितरु की जड़ें खायी और उस चावल के बारे में कुछ दिनों तक भूल गया। जब वह घर गया, उसकी पत्नी ने देखा कि उसने कुछ भी नहीं खाया है। तो उसने सोचा कि कोई न कोई लड़की ने जरूर उसे खाना दिया होगा। जब संयोग से उसने उसे पितरु की जड़ें खाते देखा तो वह गुस्सा हुई और जादू से इन जड़ों को कड़वा बना दिया। जब बोरन बूढ़ा फिर से जंगल में गया, उसने जड़ें इकट्ठी की किंतु अब वे कड़वी हो गयीं थीं। तब उसे चावल की याद आयी। जब उसने घड़े में चावल सूखा पाया तो उसने उसमें पानी मिला दिया और पी गया। फौरन ही वह मदहोश हो गया। उसने एक छंगु बनाई और नाचते बजाते हुए और घर अपनी पत्नी के पास पहुंचा। जब वृद्धा ने इस मस्ती का राज जाना तो उसने भी पिया और वह भी नशे में आ गयी। तब वह भी उसके साथ नाचने लगी। तभी से भुइयां लोग चावल का मद पीते हैं।

5

धर्म और जादू-टोना

लोकसंस्कृति की सभी शाखाओं में से मिथकों का धर्म और जादू से सबसे अधिक घनिष्ठ संबंध होता है। क्योंकि देव, देवियां, आत्मा और धर्मानुष्ठान आदि उनकी विषय-वस्तु होते हैं। ऐसी कोई जाति नहीं है, जिनमें किसी न किसी रूप में धर्म और जादू न मिलते हों। यह कहा जाता है कि आदिवासी सर्वत्र अपने देवी-देवताओं पर दृढ़-विश्वास करते हैं तथा दृढ़तापर्वूक अपने आनुष्ठानिक विधि-विधानों का पालन करते हैं। उनके जीवन में प्रायः सभी पक्ष उनके धार्मिक और जादू-संबंधी विश्वासों एवं कार्य कलापों से प्रभावित होते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि धार्मिक और जादुई प्रथाएं तथा उनका परिपालन, ये दोनों बातें उनके संपूर्ण जीवन में विख्यात हैं। किंतु यह बात ओड़िसा की अनेक आदिम जातियों के लिए ही सत्य नहीं हैं, वरन् व्यापक रूप से ओड़िसा की ग्रामीण आम जनता पर भी लागू होती है। वही निषेध, वही शंकाएं और प्रायः समान धर्म-विधियां, आदिवासी और गैर-आदिवासी जनता के रोजमर्रे के जीवन में दिखाई पड़ती हैं। शकुन, शुभ-मुहूर्त, डायन में विश्वास, टोनहा, टोनहाई, मनोकामना के पूर्ण होने पर चढ़ावा, बहुधा रक्तवलि आदि में वे समान रूप से हिस्सा लेते हैं। हमने देखा कि ग्राम्य-देवियों और दूसरे स्थानीय पुजारी एवं देवता समान रूप से पवित्र होते हैं और ग्रामीण जनता के सभी वर्गों द्वारा समान रूप से समादृत होते हैं – चाहे वे आदिवासी हों या गैर आदिवासी, पुरोहित हों या माली या कोई दूसरा–(जरूरी नहीं कि वह ब्राह्मण हो)–जिसे देवपूजा, शिवलिंग पूजन से लेकर ग्राम्य देवी एवं आत्माओं की पूजा तक, का विशेषाधिकार होता है।

धर्म का आरंभ

ऐसे अनेक मनोहर मिथक हैं जो यह बताते हैं कि आदिवासियों में किस प्रकार धार्मिक पूजा और बलि आदि प्रारंभ हुए। एलविन ने कई आदिवासी समूहों से ऐसे अनेक-मिथक एकत्रित किये हैं। पहाड़ी-बोंडो की निर्भ्रांत धारणा है कि मनुष्य का जन्म देवों से पहले

हुआ है। उस समय लोग कृषि, मैथुन, खान-पान और नाच गाने में इतना व्यस्त रहते थे कि उनके पास देवों के लिए कोई संमय नहीं था और न ही वे बलि देते थे। देव जंगली-फल-फूल, हवा और पानी पर जीते थे। इस तरह धार्मिक चिंता के बिना ही लोग संपन्न हो गये। किंतु सर्वोच्च देव महाप्रभु चिंतित हो उठे क्योंकि उन्हें लगा कि मानव को किसी से डर नहीं रहेगा। अतः उन्होंने देवों के साथ मिलकर मानव को उसके ऐश्वर्य से वंचित करने के लिए योजना बनाई। महाप्रभु ने देवों को बुलाया और उन्हें लगातार छः महीने तक दूध और शक्कर का उत्कृष्ट भोजन कराया। तब उन्होंने उन्हें मनुष्यों में जाकर रहने को कहा और सवसे पहले अपने मित्र ग्राम-पुजारी सेती सीसा के पास भेजा।

देव सीसा के पास गये--(यह आगमन ठीक हत्या के मामले में पुलिस के आने के समान था) · और उसने उन सब के लिए व्यवस्था कर दी। उसने सभी देवों का नाम रख दिया और रहने का स्थान भी बता दिया। एक देवता को ग्राम के पास रख दिया और रहने का स्थान भी बता दिया। एक देवता को ग्राम के पास के पवित्र बाग में भेज दिया गया। बाघ देवता को चक्रीय खेती के रास्तों पर घात लगाने के लिए नियत कर दिया गया। कुछ अन्य देवता वन-दरिया, पहाड़ और झरने को भेज दिये गये। इन देवों को खिलाने पिलाने के लिए पुजारी सीसा को गांव वालों से चंदा लेना शुरू करना पड़ा और चतुर देवगण अव केवल कंदमूल से संतुष्ट नहीं होते थे। उन्होंने मांस और अन्न की मांग की। इस प्रकार लोग फिर से गरीब हो गये। धर्म और पशुबलि के उद्भव से संबद्ध यह मिथक चाहे राज्य और पुलिस द्वारा उनके वर्तमान दमन के अनुभव से परिपुष्ट हुआ हो, पर बुनियादी रूप से यह संकेत करता है कि देवों की संकल्पना भय से प्रारंभ हुई है तथा लोगों की दरिद्रता उसकी परिणति है (एलविन 1954 पृ. 536)।

लोगों में भय और यातना से धर्म की उत्पत्ति संबंधी एक कथा कुटिया कंधों में मिलती है (एलविन 1954 पृ. 541)। ऐसी ही लोंद्रुका और तिमाका दो कंध थे। जिन्होंने क्रमशः पुसारी और मन्द-जिलों से विवाह किया। वे एक ही मकान में रहते थे और कालांतर में उनके अनेक बन्चे हुए। किंतु देवताओं ने उन्हें सताना शुरू किया और कई वच्चे बीमार हो गये। इससे डर कर वे निरंताली, जो सर्वोच्च देव हैं, के पास उपचार के लिए गये। उन्होंने लोंद्रुका को पुरोहित तथा तिमाका को सिरहा बन जाने को कहा। लोंद्रुका से हर तीसरे वर्ष धरनी-पिनु को एक भैंस बलि चढ़ाने को कहा गया। उसने तिमाका से बीमारों की देखभाल करने को कहा। इस तरह संसार में बलि, पुरोहित और सिरहा की प्रथा चल पड़ी।

गाय की कुर्बानी

एक अन्य रोचक पहाड़ी सअर मिथक है जो बताता है कि किस तरह गो-बलि की प्रथा

प्रारंभ हुई। बहुत पहले किटुंग (शायद सर्वोच्च देव) गाय के एक अन्तरंग मित्र थे और वे सदा साथ रहते थे। किंतु एक दिन जब किटुंग ने अपना बिछौना बाहर धूप में डाला, गाय ने उसे खा लिया। किटुंग बड़े नाराज हुए, उन्होंने गाय अभिशाप दिया और मित्रता खतम कर दी "जैसे तुमने मेरा बिस्तर खाया है, वैसा ही लोग तुम्हारा मांस खायेंगे। पर चूँकि हम इतने दिनों तक मित्र रहे हैं, इसलिए जो मेरी पूजा करते हैं (सिरहा), वे तुम्हें नहीं खायेंगे।" उसी दिन से सिरहा गो-मांस नहीं खाते हैं। यदि वे गो-मांस खायें तो उल्टी हो जाती है और वे बीमार हो जाते हैं (एलविन 1954 पृ. 544)।

स्थानीय देवता

हम पहले देख चुके हैं कि ओड़िसा में गांव के लोग अनेक प्रकार के देवी, देवताओं और आत्माओं पर विश्वास और पूजा करते हैं। किंतु स्थानीय देवताओं (जिनका सर्वाधिक प्रभाव और अनुशासन रहता है तथा जिनका इतना भय और आतंक होता है) के विषय में विशेष विवेचन आवश्यक है। यह बात केवल आदिवासी लोगों तक ही सीमित नहीं है, जिनके लिए सर्वोच्च देवता और देवियां दूरस्थ या तटस्थ हैं और जिन्हें किसी भी तरह तुच्छ अथवा वैयक्तिक-लाभ के लिए आह्वान नहीं किया जा सकता है। दूसरी ओर, स्थानीय देव को प्रसन्न और अनुकूल बनाया जा सकता है और उन्हें संरक्षण और वरदान के लिए तथा प्रेतात्माओं और रोग तथा महामारी आदि की देवियों को भगाने के लिए राजी किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में स्थानीय देव ईर्ष्यालु अभिभावक हैं जो अवहेलना और अपवित्रता के लिए प्रतिशोध ले सकते हैं। पर सरलता से चढ़ावा या भविष्य में पूजा, मनौती आदि के द्वारा प्रसन्न और संतुष्ट किये जा सकते हैं। वे पारिवारिक संकट, कृषि, जन्म, विवाह और अंत्येष्टि, महामारी और सूखा आदि के अवसरों पर तथा सर्पदंश, स्त्री और पशुओं के बन्ध्यापन आदि में लोगों की सहायता करते हैं।

देव-देवियों को चढ़ावा

खेती की पहली उपज या पहला फल या पहली बार जने जानवर आदि ग्राम देवी को चढ़ाये जाते हैं। ये स्थानीय देव महान देवता विष्णु और शिव के स्थानीय रूप नहीं होते, जिन्हें मंदिरों में स्थापित किया जाता है और उनके लिए बहुधा भू-संपत्ति भी लगाई जाती है। ये न तो नियमित रूप से पूजे ही जाते हैं और न ही ब्राह्मण पुरोहित इनकी सेवा करते हैं। साधारणतया अछूतों में से अथवा स्थानीय आदिवासियों में से ही कोई व्यक्ति पारंपरिक रूप से स्थानीय देवों की पूजा के अधिकारी होते हैं। अधिकांश स्थानीय देव, देवी-रूप होते हैं और पारिवारिक या ग्राम संकट जैसे महत्वपूर्ण अवसरों पर उन्हें रक्तबलि चढ़ाई जाती है अथवा देवी के द्वारा स्वप्न में प्रकट हो बलि की मांग करने पर भी बलि दी जाती

है। सामान्यतया ओड़िसा के गांव में यह दृश्य देखने को मिलता है कि सड़क के किनारे किसी पुराने पेड़ के नीचे कोई पत्थर का टुकड़ा रखा हुआ है, उस पर सिंदूर की मोटी तह लगी हुई है और वह मिट्टी के बने बहुत से हाथी और घोड़ों से घिरा हुआ है। मिट्टी के ये खिलौने किसी व्रत के पूर्ण होने का अथवा किसी दुःस्वप्न या अपशकुन के कुप्रभाव को दूर करने के उपलक्ष में बलि के प्रतीक होते हैं। सामान्यतया सिरहा ही पुरोहित होते हैं, जिनपर वह देव आता है और जिनके माध्यम से देव अपना निर्णय सुनाते हैं अथवा किसी ज्वलंत समस्या पर जो गांव अथवा किसी परिवार या व्यक्ति के सामने होती है उसके संबंध में निर्देश देते हैं। ग्रामीण देवियों और स्थानीय देव प्रतिमाओं से संबंधित अधिकांश पौराणिक कथाएं एवं दंत कथाएं, वहां के लोगों (चाहे वे आदिवासी हों या गैर आदिवासी) की आशा आकांक्षाओं, परीक्षा, दुःख, तकलीफ, अधिकार और दायित्व आदि की अभिव्यक्तियां हैं। कुछ मेले और त्यौहार, इन स्थानीय देवों के सम्मान में आयोजित होते हैं, जो आसपास के कई गांवों के लोगों को, जिनमें श्रद्धालु एवं जिज्ञासु दोनों होते हैं, आकर्षित करते हैं।

स्थानीय देवी तथा व्यापक देव-कुलों का सहअस्तित्व

कई स्थानीय देवियां हिंदू देव-कुल में शक्ति के उपांग के रूप में मिला ली गयी हैं तथा दुर्गा और चंडी आदि का स्थानीय स्वरूप मानी जाती हैं। तटवर्ती ओड़िसा में व्यापक रूप से पूजित बासेली या बासुली देवी को चंडी (देवी) का रूप मानकर बालेसोर जिला के नीलगिरी क्षेत्र के सजनागढ़ मंदिर में प्रतिष्ठित किया गया है। बासेली देवी मनुष्य बलि लेती है और यह परंपरा ओड़िसा के कई क्षेत्रों में चंडी और दुर्गा के लिए भी कभी प्रचलित थी। इसके साथ ही बासेली या बासुली केउट जाति, जो मुरमुरे बनाती है, की जातीय देवी भी हैं। केउटों में बासेली को धन की देवी लक्ष्मी से और वास्तु-शिल्प, कला और दस्तकारी के देव विश्वकर्मा से संबंधित माना जाता है। इन तीनों की स्थापना ढेंकी में मानी जाती है, जो उनकी आजीविका का एक मात्र साधन है। यहां पर हमें वैष्णवीय देवताओं और स्थानीय आदिम देवी बासुली के बीच, एकीकरण न सही पर सहअस्तित्व तो मिलता ही है।

विविध मिथक

कुछ मिथकों एवं किंवदंतियों में स्थानीय देव-देवियों के आविर्भाव और उनकी अद्भुत शक्तियों का चित्रण मिलता है। वाड़म्बा रियासत में कभी एक सअर स्त्री रहती थी जिसका नाम था– सुकेशा। उस स्त्री ने घर के लिए पानी लाते समय एक बच्चे को जन्म दिया। फिर भी उस स्त्री ने शिशु के जन्म के तुरंत बाद ही घड़े को अपनी कमर पर रखा और बच्चे के साथ चलती गयी। इस चमत्कार से प्रभावित होकर राजा ने सअर स्त्री के लिए

एक महल बना दिया। पर उसने उसमें रहने का राजा का आदेश नहीं माना। अतः उस स्त्री को काटकर उसके दो टुकड़े कर दिये गये। उसके हाथ मुंडा-बारीक देव के रूप में तथा शरीर देवी साउरूनी के रूप में महल के दोनों और पूजा पाने लगे। (दास-1954 पृ. 776)। एक दूसरे मिथक में बताया जाता है कि दुष्ट मूर्ति-भंजक काला पहाड़ ने स्थानीय देवी सुकारमल्ला का मंदिर तोड़ दिया। देवी भाग गयी। काला पहाड़ पीछा करने लगा। देवी सुकरमल्ला पहाड़ की एक कंदरा में घुस गयीं। जब काला पहाड़ उन्हें पकड़ने लगा, तब उन्होंने पहाड़ को टुकड़े-टुकड़े हो जाने का आदेश दिया। देवी दरार में घुस गईं और काला पहाड़ उन तक पहुंच न सका। देवी उस दरार में से दिखाई पड़ती है और हर वर्ष स्थानीय लोगों द्वारा पूजी जाती है। लोग अब भी भाले के निशान और घोड़ों के खुरों के चिह्नों की ओर इंगित करते हैं और इनका संबंध काला पहाड़ से बताते हैं। (वही पृ. 771)

ग्रामदेवियां और कुल देवता

आदिवासी गांवों में साधारणतया बस्ती के वीचोंबीच कुछ देव प्रतिमाएं प्रतिष्ठित मिलती हैं और इन्हीं पर गांव और लोगों की रक्षा का भार होता है। उत्तरी ओड़िसा के भुइंया गांवों में मराल- स्तंभ देखा जा सकता है, जो इन बस्तियों की पहली बसाहट के समय स्थापित किये गये थे। दक्षिण- ओड़िसा के कंध गांवों में गांव के घरों के बीच वसुधा देवी (धरणी-पिन्नु) को अधिष्ठित किया जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य देव प्रतिमाएं भी आवास क्षेत्र में मिलती हैं, जिनकी समय समय पर पूजा की जाती है। प्रायः सभी आदिवासी समुदायों में पवित्र वृक्षों का कुंज होता है, जो गांव के पास पहले के सघन वन का एक अवशेष रूप है, जिसमें ग्राम्य देवियां, पर्वत देव, देव-तुल्य संस्कृति- नायक या पूर्वज आदि प्रस्तर- खंडों के रूप में पूजे जाते हैं। शहरी तथा ग्रामीण दोनों ही क्षेत्रों में आदिवासियों तथा गैर-आदिवासियों के घरों में एक पवित्र स्थान होता है जहां पूर्वजों की आत्माओं का आह्वान किया जाता है तथा उन्हें नैवेद्य चढ़ाया जाता है।

भिन्न समूहों के देव-देवियों तथा परंपराओं का आदर

आदिवासी क्षेत्रों में कभी कभी ऐसा होता है कि एक आदिवासी जाति प्रवासी आदिवासी जाति के दबाव में वह स्थान छोड़ कर अन्यत्र चली जाती है। उदाहरण के लिए ऐसा बोनाई के कुछ भागों में हुआ है - यहां पहले जुआंग रहते थे और अब वहां भुइयां रहते हैं। जुआंगों के स्थानीय देव प्रतिमाएं अब भी वहां हैं और आज भी उनकी पूजा जुआंगों के विधि- विधानों के अनुसार ही भुइयां पुजारियों द्वारा की जाती है। जुआंग समय समय पर इन देवताओं पर सूअर के बच्चे की बलि चढ़ाते थे। यद्यपि भुइयां सूअर नही पालते

और न ही सूअर का मांस खाते हैं, पर उन्हें अपनी स्थायी कल्याण- कामना से जुआंग देवों की विशेष जरूरतों को उन्हीं के तौर तरीकों से पूरा करना पड़ता है। हिंदू और आदिवासी लोगों के स्थानीय देवी-देवताओं का पारस्परिक अंतर्भाव दोनों समुदायों के सह-अस्तित्व की स्थिति का प्रतीक है। यह पश्चिमी ओड़िसा के एक दृष्टांत से स्पष्ट हो जाता है। हिंदू देवी रामचंडी कुलटा जाति की एक कुल देवी है। संबलपुर जिले के बरगढ़ क्षेत्र के एक गांव में इनका एक मंदिर है और साथ ही वहीं पर दूसरा मंदिर स्थानीय देव-प्रतिमा कामजीन बूढी का है। एक कुलटा कबीले का व्यक्ति राम चंडी का पुरोहित है और भइना, जो गांव में सर्वप्रथम बसने वाली जाति होने का दावा करते हैं, कामजीन बूढ़ी का पुजारी सिरहा है। दोनों देवियों में मैत्री तथा आनुष्ठानिक मित्रता है और वर्ष में एक बार दोनों आनुष्ठानिक मित्रों की समारोहपूर्ण भेंट होती है। जो कि कुलटा तथा भइना, दोनों जनजातियों की मैत्री का समारोह हो जाता है और पूरे समाज का समारोह भी।

प्रायः ऐसी ही रीति वहां भी मिलती है, जहां ब्राह्मण तथा हिंदू जातियों ने स्थानीय देवियों के आदिवासी पुजारियों को स्वीकार कर लिया है; जिनकी वे भी उतनी ही पूजा करते हैं, जितनी कि आदिवासी समुदाय। उत्तरी ओड़िसा के भुइयां क्षेत्र की तथा दक्षिण ओड़िसा के कंध और सअर गांवों की आप्रवासी हिंदू जातियां स्थानीय देवी-देवताओं की उपासिका बन गयी हैं । इसी तरह आप्रवासी हिंदू स्थानीय देवी-देवताओं के सम्मान में आयोजित होने वाले मेले और त्यौहारों में सम्मानित होते हैं। यह घटना, जिसे आदिवासीकरण कहा जा सकता है, आदिवासी बहुल क्षेत्र की राजनीतिक एवं सामाजिक वास्तविकताओं को देखते हुए आवश्यक सांस्कृतिक सामंजस्य का प्रतीक है। हम कदाचित ही ऐसी स्थिति पाते हैं जहां ब्राह्मण या दूसरे हिंदुओं के देव, आदिवासियों के स्थानीय देव ही बन गये हों जैसा कि हम कोरापुट जिले के पहाड़ी सअरों में पाते हैं (एलविन 1954 पृ. 542)। पहाड़ी सअर यद्यपि एक अत्यंत आदिम समुदाय है, पर ब्राह्मणों के बारे में बड़ी रोचक धारणा रखता है। उनके एक भगवान — सरगड़ा-किटुंग— एक ब्राह्मण थे। प्राचीन काल में विश्व भर में केवल सौ ब्राह्मण थे। वे इतने कंजूस थे कि दीपक जलाने के लिये तेल के बदले पेशाब का उपयोग करते थे। एक दिन निर्धन ब्राह्मण की स्त्री ने यह कहकर अपने पति का उपहास किया कि दूसरे समृद्ध ब्राह्मणों के समान उसके पास न तो दीपक है और न ही पेशाब। फिर भी निर्धन ब्राह्मण ने दावा किया कि वह इतना शक्तिशाली है कि यदि वह गांव के बाहर साठ कदम चलेगा तो सारा विश्व जलमय हो जायेगा । जब वह ब्राह्मण साठ कदम चलने लगा तो उसकी स्त्री ने उसकी गर्वोक्ति की ओर ध्यान नहीं दिया। तत्काल ही सारा विश्व जल मग्न हो गया और वे ब्राह्मण तथा उसकी शंकालु स्त्री उसमें डूब गये। उसने स्वयं एक किटुंग का रूप ले लिया और अब एक पेड़ की शाखाओं पर प्रज्वलित शिखा के समान रहता है।

एक देशज पंथ

उपनिषदों के उच्चतर दर्शन तथा जातिविहीन समाज के सामाजिक दर्शन (जो संभवतः बौद्ध दर्शन का प्रभाव है, जिसका प्रभाव प्रसार आरंभिक शताब्दियों में रहा है) को एक देशज संप्रदाय द्वारा जन-सामान्य के स्तर तक किस प्रकार पहुंचाया गया उसका एक अत्यंत उत्कृष्ट उदाहरण हमें मिलता है। अलेख-महिमा--धर्म एकेश्वरवाद पर आधारित है जो निराकार, निर्विकार अलिप्त, पर ब्रह्मांड का आदि स्वरूप है। यह मत महिमा गुसाईं द्वारा उन्नीसवीं शती के पूर्वार्द्ध में मध्य-ओड़िसा में प्रचारित किया गया। इस जातिविहीन शुद्धिवादी संप्रदाय ने न केवल ओड़िसा, वरन राजस्थान, नेपाल और आसाम तक के आदिवासियों और हरिजनों को अपने अनुयायिओं के रूप में आकर्षित किया। महिमा-संन्यासी वल्कल या कौपीन पहने, पंखानुमा ताड़पत्र छाता लिये गांव गांव घूमते हैं। वे एक दिन से अधिक किसी भी स्थान पर नहीं टिकते और दिन में केवल एक बार ही भोजन करते हैं। इनके अनुष्ठान विधि-विधान, नाममात्र के हैं क्योंकि वहां मूर्तिपूजा नहीं है। रक्त-बलि, प्रेतात्माओं और देवों पर विश्वास आदि नहीं है। उनके किसी भी अनुष्ठान में ब्राह्मण को पुरोहिती करने नहीं बुलाया जाता।

आनुष्ठानिक मुहावरा

हम पहले देख चुके हैं कि किस तरह धर्म के प्रारंभ में ही आदिवासी मिथकों में देवताओं के चढ़ावे को प्रमुख स्थान मिल गया था। पशु पक्षियों की बलि, कभी कभी अंडे अथवा फल, जड़ी-बूटी, पहली फसल तथा धूप आदि जैसे रक्तहीन चढ़ावे, पूजाविधि के महत्वपूर्ण तत्व हैं, जिनसे देवी, देवता तथा पूर्वजों की आत्माओं को संतुष्ट किया जाता है। रक्तबलि के अंतर्गत मनुष्य बलि तथा उसके साथ ही मिट्टी के घोड़े या हाथी आदि के प्रतीकात्मक बलिदान भी आते हैं । यह प्रथा आदिवासी तथा दूसरे लोगों में भी प्रचलित है। अन्य अवसरों की भांति इस अनुष्ठान में भी भक्त अथवा पुजारी को आध्यात्मिक एवं नैतिक तैयारी के अतिरिक्त अपने शरीर को भी विशेष प्रकार से सजाना पड़ता है। उदाहरण के लिए पुजारी तथा अनुष्ठान में सम्मिलित होने वाले व्यक्ति को स्नान करके, उपवास रखकर तथा अनुष्ठान के पूर्व दिन से ब्रह्मचर्य का पालन करके शुद्ध करना पड़ता है। इस प्रकार की शारीरिक शुद्धि आत्मिक शुद्धि की अभिव्यक्ति भी मानी जाती है। यहां तक कि पुजारी अथवा उस पूजा में शरीक होने वाले साधारण व्यक्ति से भी, रजस्वला पत्नी के अथवा अनियमित संभोग के कारण दूषित न होने की अपेक्षा की जाती है। अपने को इस प्रकार के शारीरिक और आत्मिक स्खलनों से दूर रखकर सम्मिलित होने वाले, विशेषकर पुजारी वर्तमान तथा आगत जीवन के आदर्श रूप की रक्षा करते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि एक छोटे से स्खलन से भी चाहे वह दैहिक, आत्मिक अथवा नैतिक

हो, सामान्य कल्याण तथा व्यापक रूप से लोगों के बृहत्तर हित प्रभावित होते हैं। दूसरे शब्दों में स्खलन वैयक्तिक नहीं होते और उन्हें पृथक करके नहीं देखा जा सकता है। वे समाज के दूसरे लोगों को, उनकी संपत्ति को, यहां तक कि देवताओं को भी नुकसान पहुंचाते हैं। इसलिए अनुष्ठानों को यथासंभव आदर्श रूप से ही संपन्न करना चाहिए। विगत पीढ़ियों के सुदीर्घ अनुभवों के आधार पर निर्मित पारंपरिक चेतना ही अनुष्ठानों के यथोचित रूप से संपन्न होने तथा उनकी लक्ष्य- सिद्धि के लिए निर्देशिका और प्रमाण है। तनिक भी व्यतिक्रम न केवल वर्तमान को ही वरन् भविष्य को भी बिगाड़ सकते हैं, अतः उन्हें किसी भी कीमत पर नहीं आने दिया जाना चाहिए। आनुष्ठानिक मुहावरों के प्रति यह दृष्टिकोण केवल आदिवासियों में ही नहीं, वरन् सामान्य रूप से ग्रामीण जनता के सभी वर्गों में मिलता है।

स्थानीय देवियों के अपने विशेष सिरहा होते हैं, जो भाव समाधि में डूब जाते हैं, देवियों की दृष्टि को देखते, उनकी आवाजों और आदेशों को सुनते, उनसे वार्तालाप करते तथा भक्तों की इच्छाओं और प्रार्थनाओं को उन तक पहुंचाते हैं। देव-देवियां सिरहा के माध्यम से बोलते और लोगों को बताते हैं कि वे किस रूप में प्रकट होना चाहते हैं, चढ़ावे में कौन सी वस्तु या पशु चाहते हैं तथा संकटग्रस्त व्यक्ति ने किस तरह नीति-नियमों का उल्लंघन किया है, जिनका पालन करना आवश्यक था।

जादू, औषधि, अभिचार और टोने-टोटके

ओड़िसा की साधारण जनता जादुई शक्ति पर सुदृढ़ विश्वास करती है, और डायन तथा टोनही से डरती है। कुछ आदिवासी समुदाय, जैसे कि उत्तरी ओड़िसा के संथाल लोग, अपने जादू टोना आदि के प्रयोग के लिए प्रसिद्ध हैं। लोक विश्वास है कि जादुई शक्ति का प्रयोग, जादुई मंत्र और तंत्र में सुदक्ष कुछ ही व्यक्ति कर सकते हैं, परंतु कुछ अन्य व्यक्ति किसी सुंदर, प्रिय, लुभावनी वस्तु, पशु, फसल अथवा दर्शनीय व्यक्ति पर दृष्टि पड़ते ही, एक तरह से बुरी जादुई शक्तियों का प्रयोग करने लगते हैं। ये गुप्त शक्तियां नजर, अभिशाप अथवा कु-स्पर्श के रूप में जानी जाती हैं। पेट दर्द या किसी छोटी-मोटी बीमारी से पीड़ित लोगों, दूध न देने वाली गायों, पर्याप्त फसल न देने वाले पौधों, प्रणय-विमुख स्त्रियों, इन सबका उपचार गांव का टोनहा करता है। बहुधा जादुई उपायों का प्रयोग दुष्ट आत्माओं और देवियों के द्वारा होने वाली हानि के खिलाफ होता है। जैसे जब बच्चा घर से बाहर जाता है, तब उसे एक खास चीज का टीका लगा दिया जाता है, जो सामान्यतया गोबर और काजल का मिश्रण होता है, जिससे बुरी आत्माएं दूर रहें। रोग और महामारी की देवियों को झाड़-फूंक, जादुई पदार्थों तथा जादुई मंत्रों से वश में किया जाता है।

लोगों में संक्रामक जादू पर विश्वास कुछ बहुप्रचलित अंधविश्वासों से सिद्ध होता है। उदाहारण के लिए कटे नाखूनों, बालों और गिरे हुए दूध के दांतों को बड़ी सावधानी से फेंका जाता है जिससे कोई टोनही इन त्याज्य देहांगों को जादुई नुकसान न पहुंचा सकें और उसी के माध्यम से संबंधित व्यक्ति के संपूर्ण शरीर को नुकसान न पहुंचा सके। इसी तरह लोग काले जादू में भी विश्वास करते हैं। जिस व्यक्ति को हानि पहुंचाना हो उसकी मोम या मिट्टी की प्रतिमूर्ति बना ली जाती है। ये मूर्तियां या तो जला दी जाती हैं या जादुई वाण से छेदी जाती है जिसे बाण-मरा कहते हैं। विश्वास यह है कि लक्षित व्यक्ति प्रतिमूर्ति की तरह ही या तो कष्ट पायेगा या मरेगा।

अनेक ओड़िसी लोक-कथाओं में चर्चा है कि जादूगर मानव को पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़ों में बदल सकते हैं और उन्हें फिर पूर्व रूप में ला सकते हैं। आदिवासियों में कुछ कहानियां ऐसी हैं जिनमें आदमी के पेशाब का जादुई प्रभाव मिलता है जिससे तूंबा सूअर बन सकता है, कोयला कौआ या मूछें घास बन सकती हैं। इसी तरह लकड़ी रीछ बन सकती है तथा मिर्च तेज हो सकती है। जादू से मिठाई खटमल बन सकती है तथा कंदमूल कड़वा हो सकता है। लकड़ी के खून से कुल्हाड़ी में जान पड़ जाती है और वह शेर बन जाती है।

इसी तरह कई जादुई वस्तुएं होती हैं जिनमें अद्‌भुत शक्ति होती है। थूक, खून, विशेषकर मासिक धर्म का खून आदि वस्तुओं में जादुई शक्ति होती है। वैसे जादुई पहाड़, जादुई राख, जादुई फल, जादुई सीटी, जादुई धूल, जादुई चिराग, जादुई अंगूठी तथा यहां तक कि जादुई पानी भी आदिवासी लोक परंपरा में होते हैं। ऐसा माना जाता है कि बाघ-नख, गिद्ध- चोंच, अपने जादुई गुणों के कारण अतिमानवीय ताकत व क्षमता प्रदान करते हैं।

कोरापुट जिले के गड़बा लोगों का विश्वास है कि प्रारंभ में न तो मृत्यु थी और न ही जादू-टोना। महाप्रभु ने सोचा कि इस प्रकार तो थोड़े समय में ही विश्व में सारे लोगों के रहने के लिए जगह नहीं रहेगी। उन्होंने बड़ी संख्या में लोगों को एक नृत्य के लिए बुलाया तथा उन्हें एक कंध गांव में ले गये। वे जंगल में नाचते गये और उसमें कंधों को सम्मिलित होने को बुलाया। कंध नृत्य देखने के लिए जमा हो गये। एक नवजात शिशु का पिता नृत्य से इतना उल्लसित हो उठा कि वह मां को कमरे में बंद कर जंगल चला गया। वह दो, तीन दिनों तक नाच देखता रहा। इसी बीच स्त्री भूखी रही किंतु वह निकल नहीं सकती थी क्योंकि दरवाजा बाहर से बंद था। असहनीय भूख के कारण उसने अपने ही बच्चे के नाल को खा लिया। जब उसका पति घर लौटा, उसने उसके मुंह को खून से सना और आंखों को रक्ताक्त पाया। उसने सारा वृतांत पति को सुना दिया। इसीलिए संसार में मृत्यु आयी। जिस किसी ने उस औरत की थाली से खाना खाया, वे डाकिनी बन गयीं। इसलिए गड़बा अब भी किसी की जूठन नहीं खाते। "कंध सबसे बड़े जादूगर

होते हैं और उनकी स्त्रियां निकृष्टतम डायन" (एलविन 1954, पृ. 554-55)– ऐसी उनकी मान्यता है।

एक दूसरी गड़बा कथा में यह बताया गया है कि किस तरह पहला सिरहा टोना-टोटका से लड़ने के लिए बनाया गया। एक बार आगस बुरिया देवता एक वृद्धा के पास उसकी नातिन का हाथ विवाह के लिए मांगने आये। वृद्धा ने उसकी लाई हुई शराब तो पी ली, किंतु जब उसने उसका प्रस्ताव सुना तो आग–बबूला हो उठी और उस देवता को झाड़ू से पीटने लगी। जैसे ही देवता भाग गये, लड़की बेहोश हो गयी। तब वृद्धा को पता लगा कि उसने देवता को मारा है। वह उनके पीछे भागी क्योंकि उसे डर था कि लड़की मर जायेगी। पर उसने उसे कहीं नहीं पाया। दूसरों से राय मशविरा करके वह वृद्धा उस देवता से अपनी कन्या की शादी करने को तैयार हो गयी और गांव से बाहर जाने वाली रास्ते पर विवाह मंडप बनवाया। उसने दूल्हा के बिना ही उसके नाम पर विवाह पूरा कर दिया। और इस प्रकार वह लड़की सिरहा हो गयी, दैवी शक्ति से अभिभूत हो गयी तथा झाड़ू की सीकों को नापकर, सूप में चावल रगड़ कर और दीपक को झुलाकर रोगियों का इलाज करने लगी (एलविन 1954, पृ. 553-54)।

मयूरभंज के संथाल जो टोने के संदेह में हर साल अनेक हत्याएं करते हैं, इसके लिए डायन को दोषी मानते हैं जो नाते- रिश्तों में अनबन कराती हैं और बहुधा जिसका परिणाम बंटवारा तथा हत्या होता है। उन्होंने सी. मुखर्जी से शिकायत की थी कि न्यायाधीश लोग जादू टोना नहीं समझते; अतः स्वीकार योग्य प्रमाण के अभाव में अनेक टोनही छोड़ दी जाती है। उनके अनुसार टोनही तलवार आदि हथियार से नुकसान न पहुंचाकर अपनी जादुई शक्ति से नुकसान करती हैं। संथालों तथा ओड़िसा के दूसरे लोगों में मान्यता है कि ये डायनें मध्य रात्रि को अपने पति का बिस्तर छोड़ देती हैं तथा अपनी जगह पर झाड़ू की सींकें रख देती हैं और पतियों पर मंत्र फूंक देती हैं जो निर्विघ्न सोते रहते हैं। वे पेड़ों पर सवार होकर किसी जंगल या मैदान में इकट्ठी होती हैं। उनके हाथ में सींकों की झाड़ू होती है पूर्णतया निर्वस्त्र होकर वे रात भर बोंगाओ तथा सिंहों के साथ गाती नाचती हैं। वे सिंहों को पुचकारती और बोंगाओं को फुसलाती हैं, जिससे वे डायनों की झाड़-फूंक करने वाले ओझाओं को उनका असली नाम न बता दे। तब वे सुबह होने से पहले घर लौट आती हैं और अपने मानवीय रूप और क्रिया-कलापों को पुनः अपना लेती हैं। ऐसा विश्वास है कि डायनें ही लोगों को बीमार करती हैं और यदि झाड़ फूंक करने वाला ओझा उनकी रक्षा को समय पर नहीं आ जाता तो उनकी मृत्यु भी हो सकती है।

इन ज़ातियों की प्राचीन लोक परंपरा के अनुसार मरांग-शुरू ने जो संथालों के प्रमुख आराध्य देव हैं, स्त्रियों के भुलावे में आकर, जादू टोने का रहस्य पुरुषों के बजाय जिन्हें वस्तुतः वे बताना चाहते थे, स्त्रियों को बता दिया। स्त्रियां जादू टोना से लैस होकर पुरुषों

को सताने लगीं, लोग मरांग गुरु के पास पहुंचे। मरांग स्त्रियों द्वारा ठगे जाने के कारण आग- बबूला हो उठे। उन्होंने पुरुषों को ओझागिरी सिखलायी, जिससे वे डायनों की विद्या से लड़ सकें। इस तरह डायनों और उनका उपचार करने वालों, जिन्हें ओझा या ज्ञानगुरु कहते हैं, के बीच निरंतर लड़ाई चली आ रही है। डायनें बोंगाओं से मिली हुई हैं, जिन्हें वे जीवन के समस्त सुखों से ललचा लेती हैं । इसलिए बहुधा भूत बाधा भगाने वाले गुनियों से वे बाजी मार ले जाती हैं। ओझा कभी-कभी भूल से निर्दोष व्यक्तियों को डायन घोषित कर देता है। संथाल परंपरा के अनुसार जादूगरी की शक्ति जन्मजात नहीं होती है, किंतु कठिन प्रशिक्षण से प्राप्त होती है। मुखर्जी के अनुसार यह आश्चर्य की बात है कि संथाल परंपराएं "कामरु-गुरु" का निर्देश करती हैं अर्थात लोग कामरूप की जादूगरी की कला में निष्णात हैं, जिनके अनुयायी पूर्वकालीन संथाल थे (मुखर्जी, पृ· 293-302)। ओझा अथवा डायनों के वैद्य भी इस कला में निपुण होने के लिए प्रशिक्षण लेते हैं। ये ओझा लोग पुरुषों और स्त्रियों में से टोनहों को ढूंढ़ लेते हैं तथा अपनी आध्यात्मिक शक्ति से यह भी जान लेते हैं कि कौन सा देवता नाराज है या किस के प्रति गलती हो गयी है तथा उसे कैसे संतुष्ट किया जा सकता है।

विश्वास और रूढ़ियां

विश्वास और रूढ़ियों के अपेक्षाकृत व्यापक एवं अस्पष्ट वर्ग में शकुन, भविष्य-कथन, मान्यताओं, शुभ-अशुभ वस्तुओं, कथन, स्वप्न एवं घटनाओं आदि पर विचार करेंगे। किसी भी मान्यता या विचार को रूढ़ि की संज्ञा देना अत्यंत कठिन समस्या है। क्योंकि जो एक सांस्कृतिक समुदाय के लिए रूढ़ि है वह दूसरे के लिए सच्चा व तर्कसम्मत विश्वास है। वस्तुतः तथाकथित रूढ़ियां उस वर्ग की अन्य वर्गों के संबंध में कुधारणाओं के लिए उर्वरा भूमि है। ऐसे बिरले ही विचार या लोक धारणाएं हैं, जिनको वैज्ञानिक आधार पर परख कर स्वयं स्पष्ट रूढ़ि करार दिया गया हो।

यद्यपि प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से लोक कथाओं, मिथकों, लोक गीतों आदि में अनेक जनप्रिय लोक विश्वासों का उल्लेख मिलता है पर उन्हें व्यवस्थित करने के प्रयास नगण्य हैं। लोकोक्तियां और मुहावरे इन लोक विश्वासों के संप्रेषण के सबसे अधिक मुखर और असरदार माध्यम हैं।

ओड़िसा की साधारण जनता का विश्वास है कि गोधूलि बेला में सोना अपशकुन है, सिर उत्तर या पश्चिम की ओर करके सोना बुरा है क्योंकि मृत व्यक्तियों का सिर ही उस दिशा में रखा जाता है। पश्चिम की ओर मुंह करके भोजन करना ठीक नहीं, कारण केवल जानवर ऐसा करते हैं और नाखूनों को परस्पर रगड़ना बुरा है क्योंकि उससे व्यक्ति को झगड़े के लिए उत्तेजना मिलती है। दो भाइयों का एक ही दिन बाल बनाना अशुभ

है, क्योंकि ऐसा अंत्येष्टि के बाद होता है। इसी तरह एक केला तीन टुकड़ों में नहीं काटा जाना चाहिए। या उबले धान नहीं नापा जाना चाहिए क्योंकि इनका संबंध अंत्येष्टि से है। यदि कोई स्त्री अंत्येष्टि के दिन बालों पर कंघी करती है, तो झड़ने वाले बाल पूर्वजों पर गिरते हैं। यदि कोई किसी नवजात शिशु को मजाक में भी बंदर कह देता है तो उसे अपने कान मरोड़ना चाहिए और अपने गालों पर तीन बार थप्पड़ मारना चाहिए।

कुछ आदतें ऐसी होती हैं जो दुर्भाग्य एवं गरीबी लाती हैं। जो व्यक्ति खाते समय चारों ओर भोजन फैलाता हैं उसे लक्ष्मी छोड़ देती है। यदि कोई लड़की कनेर के फूल से बाल सजाती है तो वह निश्चित रूप से अपने भावी पति की दूसरी पत्नी बनती है। एक लड़की को झाड़ू की सींक को पैर से नहीं छूना चाहिए और न ही चक्की को असम्मान दिखाना चाहिए क्योंकि इसका अर्थ "सती" का अपमान और अवमानना है जो शुचिता और सतीत्व की देवी हैं। मामा द्वारा भांजे को नहीं पीटा जाना चाहिए, इससे मामा के हाथ बुढ़ापे में कांपते हैं। गार्भिणी स्त्री को बैंगन को चूल्हे पर नहीं भूनना चाहिए क्योंकि इससे शिशु के सिर पर घाव हो जाता है। उसे नारियल के खोखले को नहीं जलाना चाहिए क्योंकि इससे उसका बच्चा गंजा होगा। दूसरी ओर उसे साग-भाजी खूब खानी चाहिए, जिससे बच्चे के सिर पर घने बाल हों। यदि वह मांस खाती है तो बच्चे के शरीर पर रोयें अधिक होंगे।

सप्ताह के कुछ दिन जैसे शनिवार अर्थात् "शनि का दिन" कुदृष्टि वाला ग्रह, अशुभ माने जाते हैं। बृहस्पतिवार, धन की देवी लक्ष्मी का विशेष पवित्र दिन है। किसी भी स्त्री को उस दिन कड़वी चीजें नहीं खानी चाहिए, मिट्टी के बर्तन नहीं धोना चाहिए, नाखून नहीं काटना चाहिए, शरीर पर तेल नहीं लगाना चाहिए या नये कपड़े नहीं पहनना चाहिए। उसे उस दिन दूसरों को रुपये या अनाज नहीं देना चाहिए। और परिवार के सदस्यों को उस दिन यात्रा के लिए प्रस्थान नहीं करना चाहिए। धारणा यह है कि इससे लक्ष्मी घर से चली जाती है।

अपशकुनों का पूर्वाभ्यास न केवल इंसानों से वरन् पशु-पक्षी यहां तक कि वृक्षों द्वारा भी मिलता है। यदि आदमी की बायीं आंख और स्त्री की दायीं आंख फड़कती है, तो यह संबद्ध व्यक्ति के लिए भावी विपत्ति की पूर्व सूचना है। यदि किसी घर के पास किसी नर-सियार का हुआ- हुआ करना या किसी बड़ा पहाड़ी कौआ का घर पर कांव कांव करना, उस परिवार के किसी सदस्य की अचानक मृत्यु का पूर्वाभास है। इसी तरह यह सामान्य विश्वास है कि यदि कोई उल्लू किसी छत पर या निकट के पेड़ पर घुघुआता है तो उस घर पर बड़ा संकट आता है। महिलाएं उस उल्लू पर गाली बरसाने में देर नहीं करतीं, जैसे 'तुमने अपने जेठ का सड़ा मांस खा लिया है, तुम चोर हो।' ऐसा विश्वास है कि मादा उल्लू ऐसे पापपूर्ण परोक्ष संकेत से, बड़ा अपमानित अनुभव करती है और तुरंत उस

जगह को छोड़ देती है; इस प्रकार आसन्न संकट टल जाता है। यदि कोई छिपकली पुरुष की दायीं और स्त्री की बायीं ओर गिरती है तो उस पुरुष या स्त्री को निकट भविष्य में पुत्र या धन की प्राप्ति होती है, किंतु यदि इसके विपरीत होता है, तो इसका परिणाम परिवार के किसी सदस्य की मृत्यु अथवा संपत्ति की हानि होती है। वृक्षों से संबद्ध मान्यताओं पर कतिपय उदाहरणों के रूप में उस बहुप्रचलित रिवाज का उल्लेख किया जा सकता है जिसमें किसी पुरुष को तीसरी पत्नी से शादी करने से पूर्व सहाड़ा-वृक्ष से प्रतीकात्मक शादी करनी होती है। यह भी विश्वास है कि नारियल का फल पापी के सिवाय किसी के सिर पर नहीं गिरता है (सी. एफ. दास, 1953, पृ 89-91)।

इन लोक विश्वासों को तथा अन्य अनेक विश्वासों को, जिनका यहां उल्लेख नहीं हुआ है, कतिपय लोक कथाओं, किंवदंतियों, यहां तक कि धर्मशास्त्रों से लिये गये मिथकों से समर्थन मिलता है। उत्तर या पश्चिम की ओर सिर करके नहीं सोने संबंधी अपशकुन विश्वास का उत्स भगवान गणेश के जन्म की पौराणिक कथा से है, जिनमें उनके लिए एक ऐसे हाथी का सिर काट लिया गया था, जो इन अशुभ दिशाओं में से एक ओर सिर किये सोया हुआ था।

ओड़िसा के आदिवासियों में लोक विश्वास इतने अधिक और तरह तरह के हैं कि यहां उन सबका उल्लेख संभव नहीं है। यदि हम किसी एक प्रसिद्ध संदर्भ का उल्लेख करें तो वह है एलविन की सुप्रसिद्ध पुस्तक "ओड़िसा के आदिवासी मिथक" जिसमें इनका प्राचुर्य है। तथापि यहां पर हम आदिवासी जगत के कुछ विश्वासों का वर्णन करेंगे, जिनका संबंध मानव के स्वप्न, बीमारी और मृत्यु से है।

स्वप्न

फुलवाणी जिले के कुटिया कंधो का कहना है कि निरंतली सर्वोच्च देवी ने लोगों की संख्या बढ़ने पर उनके लिए विभिन्न स्थलों पर रहने की व्यवस्था की। चार देवियों ने सोचा "जब मनुष्य सोते हैं तो वे अचेतन हो जाते हैं, किंतु हमें ऐसा कुछ करना चाहिए कि वे अपने मित्रों और रिश्तेदारों को दूर से ही देख सकें। हम लोग स्वप्न रचेंगे।" किंतु उनका यह प्रयत्न असफल रहा। तब निरंतली ने उन्हें एक छिपकली मारने को कहा। छिपकली ऐसी बनाई गयी थी कि मानो वह मानव हो। तीन दिनों के बाद यह छिपकली एक दैत्य बन गयी। निरंतली तथा दूसरी तीन देवियों ने उससे कहा "रात को तुम जो भी रूप चाहो ले लेना और मनुष्यों के पास जाना। यदि तुम्हें मालूम हो कि कल कोई आ रहा है, तुम उसका रूप ले लेना। यदि यह मालूम हो कि कोई मरने जा रहा है तो दो वृक्षों के मिलन का रूप ले लेना।" कुटिया कंध के अनुसार इस प्रकार स्वप्न का जन्म हुआ (एलविन, 1954, पृ. 505)।

रोग

रोगों के उत्पन्न होने के संबंध में दिदई लोगों का मिथक है कि एक बार बारह वर्षों तक देवता भूखे रहे और किसी ने उनकी खोज खबर नहीं ली। अंत में निराश हो वे सबसे बड़े देवता रूमरोक के पास गये और शिकायत की कि बारह वर्षों से जब वे जन्मे हैं, उनके पास न तो कुछ खाने को है और न पीने को। रूमरोक ने उन्हें एक खास गांव में एक दिदई के यहां जाने को कहा और उसके बच्चों को विभिन्न रोगों में से एक को बुखार, अन्य को दौरा, तीसरे को दस्त और चौथे को खुजली देकर सताने को कहा। उन्होंने आश्वासन दिया कि तभी दिदई उन्हें इच्छा के अनुसार सब कुछ खाने को देगा। देवों ने दिदई परिवार को बड़ा खुशहाल, संपन्न और शान्तिपूर्ण पाया। जल्दी ही एक के बाद एक बच्चा बीमार होता गया और दिदई घबरा गया क्योंकि ऐसा इससे पूर्व कभी नहीं हुआ था। जब उसने रूमरेक से निवेदन किया तो उन्होंने बताया कि सभी कष्टों के लिए देवता लोग जिम्मेदार हैं और जिसके लिए एक ही रास्ता है कि वह उन्हें भरपूर खिलायें। तब उन्होंने दिदई को स्थानीय देवों में से 'कॉट' को बकरा और लाल मुर्गा, 'धार' को सफेद मुर्गा, 'पत्री' को लाल मुर्गा, 'घिरि-हुई' को अंडे चढ़ाने के लिए कहा। इस प्रकार दिदई ने देवों का नाम जाना और उन्हें कैसे खुश किया जाय, यह भी जाना। इस प्रकार रोग तथा उनके विशेष उपचार शुरू हुए (एलविन, 1954, पृ. 485-86)। कुटिया कंध दुनिया में रोगों के जन्म के बारे में एक दूसरी कथा भी बताते हैं। जब सूर्य भगवान पृथ्वी परिभ्रमण को गये, उन्होंने लोगों को दिशा मैदान करते पाया और वे इससे ऊब गये। एक दिन वे सचमुच गुस्सा हो गये और उन्हें दंड देने की ठान ली, क्योंकि वे अपने गुप्तांगों को दिखाकर उनका अपामन करते थे जबकि वे उन्हें प्रकाश देते थे। दूसरे दिन सूर्य ने एक लाल फूल तोड़ा और उसके साथ आकाश पर चढ़ गये। जब उन्होंने जगत गोंड़ को दिशा-मैदान करते देखा, उन्होंने उस पर फूल फेंक दिया और बोले, "जाओ और सिफलिश (बिच्छू बीमारी) बन जाओ।" पंद्रह दिनों बाद जगत गोंड़ बीमार पड़ा और सूर्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने बीमारी से कहा "तुम मक्खी का रूप बना लो और कई लोगों के पेट में घुस जाओ। किंतु यदि कोई तुम्हें बकरा दे तो उसे छोड़ देना तथा किसी और के पास चली जाना" (एलविन, 1954, पृ. 491-92)।

मृत्यु

कोरापुट जिले के बोंडो में मृत्यु के आगमन के संबंध में यह प्रचलित है कि महाप्रभु ने एक आम का पेड़ लगाया जो साल भर फलता था तथा जिस पर गगनबिहारी निवास किया करते थे। उस समय तक मनुष्य मरते नहीं थे और पृथ्वी जन-बहुल हो उठी थी। महाप्रभु ने धरती पर मृत्यु को लाने की बड़ी कोशिश की, किंतु उन्हें सफलता नहीं मिली।

उन्होंने तीन दिनों तक भोजन नहीं किया और जब उनकी पत्नी ने इसका कारण जाना तो उन्होंने बताया। पत्नी बोली कि उनके पास इसका उपाय है। महाप्रभु ने तब तक अन्न नहीं छुआ जब तक उसने तरकीब बता नहीं दी। उन्होंने कहा, "पेड़ में पांच आम के फल ले लो, उनमें मृत्यु के बीज भर दो और उन्हें मानव की धरती पर रोप दो।" तब महाप्रभु ने भरपेट खाना खाया और उसके निर्देश के अनुसार काम किया। बारह वर्षों बाद उन पेड़ों में फल आये और महाप्रभु ने बोंडो गांव के एक पुजारी को आम खाने को दिया और उसे अपने घर के पास लगाने की सलाह दी। उसी दिन से मनुष्य मरने लगा (एलविन, 1954, पृ. 508-509)।

6

मेला, त्यौहार और व्रत-उपवास

ओड़िसा में एक कहावत है कि "महीने बारह होते हैं, पर ओड़िसा में त्यौहार तेरह।" वस्तुतः यदि ओड़िसा के सारे क्षेत्रों में पाये जाने वाले सभी पर्वो, मेलाओं और उपवासों को कुल मिलाकर देखें तो उनकी संख्या तेरह से कहीं अधिक होगी। ये सभी एक जनजाति से दूसरी जनजाति, एक जाति से दूसरी जाति तथा एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में अलग अलग होते हैं। हम मेले और पर्व में विभेद कर सकते हैं, क्योंकि जहां मेला अंतर-ग्राम्य या प्रादेशिक उत्सव होता है तथा कुछ केंद्रों में ही लोगों का जमाव होता है, वहां पर्व या तो घर घर में मनाया जाता है या सम्पूर्ण गांव में, किंतु कुछ अंतर-ग्राम्य-पर्व भी हैं जो प्रदेश के समस्त गांवों में मनाये जाते हैं। मेला और पर्व के विपरीत उपवास व्यक्तियों द्वारा अपनी मनौती, जो स्वहित अथवा प्रिय-जन-कल्याण के लिए की जाती है, पूरी होने पर रखे जाते हैं।

उपवास दो प्रकार के होते हैं। उपवास ऐसा व्रत है जो मनौती पूरी होने पर स्त्री और पुरुष दोनों करते हैं जबकि ओषा ऐसा उपवास है जो केवल स्त्रियां रखती हैं। श्री दास के अनुसार व्रत शास्त्रीय और पारंपरिक दो प्रकार के होते हैं। दोनों ही वर्गों में आने वाले व्रतों में उन मिथकों का पाठ होता है जिसमें उपवास रखने के औचित्य का प्रतिपादन होता है। अधिकांश ऐसी कथाएं ओड़िया में छपी मिलती हैं। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ओषा के साथ अधिकतर कोई आनन्दोत्सव जुड़ा रहता है, जिससे उसके साथ पर्व जैसा माहौल और जोश–खरोश बन जाता है। इसका अर्थ यह नहीं है कि ये दोनों वर्ग नितांत अलग अलग हैं। ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं है जिनमें उपवास और मेले एक साथ मिले होते हैं। जैसे शिव-रात्रि पर्व में, शिव-चतुर्दशी के दिन मनोकामना पूर्ण होने के उपलक्ष में उपवास रखा जाता है, साथ ही मेले के लिए आसपास के कई गांवों से गांव वाले स्थानीय शिव मंदिर में एकत्रित होते हैं। इसी तरह दुर्गापूजा के समय दशहरे त्यौहार के साथ उपवास सहज रूप से जुड़ा हुआ है। महाप्रभु जगन्नाथ के सम्मान में होने वाला उत्सव, 'रथ यात्रा' सम्बलपुर जिले को छोड़कर जहां हर गांव का अपना 'रथ-यात्रा' त्यौहार होता है, संपूर्ण ओड़िसा के लिए एक मेला है।

सामान्यतः जब हम मेला पर्व और उपवास पर विचार करते हैं, तब हम केवल उन उत्सवों पर विचार करते हैं जो पूरे साल नियमित समय के अनुसार मनाये जाते हैं। परंतु हमें उन उत्सवों पर भी विचार करना चाहिए जो कभी-कभी होते हैं तथा जिनमें उपवास का विधान होता है। इनके अतिरिक्त समय समय पर चेचक अथवा हैजे की देवी अथवा दूसरी विपत्तियों के देवताओं को मनाने के लिए आयोजन किये जाते हैं जिन्हें उत्सव कहना ठीक नहीं होगा, इनमें उल्लास नहीं होता वरन् सर्वनाश की काली छाया (उदासी) होती है। हम इन उत्सवों का विवेचन ओड़िआ सूर्य पंचांग के प्रथम मास वैशाख (अप्रैल-मई) में मनाये जाने वाले उत्सवों से प्रारंभ करते हैं। यह उल्लेखनीय है कि ओड़िसा में भी, भारत के कई अन्य भागों की तरह अधिकांश पर्व और अनुष्ठानों की तिथि चंद्र पंचागों के आधार पर निर्धारित की जाती है।

महत्वपूर्ण मेले

दंडनाटड और दंडजात्रा : दंडनाटड की व्युत्पत्ति दंड अर्थात् एक खंभा और नाटक अर्थात् नृत्य से हुई है जो एक मेले में, जिसे दंडजात्रा कहते हैं, प्रदर्शित किया जाता है। यह वैशाख के महीने में मनाया जाता है। ओड़िसा में किसी समय उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त बौद्ध धर्म की अवनति के बाद उसके पूर्व अनुयायिओं ने जिन्हें पददलित, अस्पृश्य और निम्न जातियों में सम्मिलित होने को मजबूर कर दिया गया था, हिंदू मंदिरों के बाहर से शंकर की पूजा करना शुरू किया। यह मेला नृत्य, गीत, शारीरिक करतब आदि के द्वारा मनाया जाता है और दंड भगवान शिव का प्रतीक होता है। भक्तों को भोक्ता कहा जाता है और एक दंड दल में तेरह दंड होते हैं। दल के नेता को "पट-भोक्ता" कहा जाता है। जो उत्सव के पूर्व इक्कीस दिनों तक आत्म-निग्रह का जीवन बिताता है। भोक्ता गांव गांव घूमते हैं, परंतु किसी घर के सामने प्रदर्शन निमंत्रित होने पर ही करते हैं। भोक्ता ग्रीष्म ऋतु के मध्याह्न में गर्म बालू पर लोटते-पोटते हैं तथा गृहस्वामी के कल्याण के लिए नाचते गाते और प्रार्थना करते हैं। यदि परिवार में कोई निस्संतान है या निर्धन है या किसी असाध्य रोग से पीड़ित है तो प्रायः गृह-स्वामी मन्नत कर लेते हैं कि कष्ट दूर होने पर अगले वर्ष वे भी भोक्ता बनेंगे।

ये भोक्ता या भक्त लोग ऊंची और नीची सभी जातियों से आते हैं तथा मेला वैशाख के प्रथम इक्कीस दिनों में मनाया जाता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि विषुव--संक्रांति बौद्धों के लिए भी पवित्र पर्व है।

संयम और दैहिक कष्टों में उपवास और ब्रह्मचर्य के अतिरिक्त आग पर चलना, पीठ पर तीखे कांटे चुभाना, विषैले सर्पों को कंठहार की तरह धारण करना, और उनसे देह दंशित करवाना, जिह्वा-छेदन अथवा तलवार की तेज धार पर चलना इत्यादि बातें भी आती

हैं। इनका उद्देश्य इंद्रियों का नियंत्रण तथा अपने ऊपर सामान्य रूप से लोगों के कष्टों को लेना होता है। जिससे योगेश्वर शिव प्रसन्न हो सकें और वरदान दें।

प्रायः पूरे ओड़िसा में दंडजात्रा के कई रूप मिलते हैं। यह अवसर प्रचुर उल्लासमय संगीत, आह्लादक नृत्य और शारीरिक करतबों से भरा रहता है। उसका एक रूप है, आग की पट्टी पर चलना। जिसे झामूजात्रा या निआँ- पटुआ कहते हैं। जिसकी प्रथा केवल हिंदुओं में ही नहीं ओड़िसा के आदिवासियों में भी है।

उत्तर-पूर्वी ओड़िसा में जो बंगाल से लगा हुआ है, आदिवासी और अनेक गैर आदिवासी भक्तों में उड़जात्रा या उड़-पटवा नामक एक अत्यंत लोमहर्षक प्रदर्शन होता है जिसमें भक्तों की पीठ की पेशियों में एक अंकुशी डालकर एक ऊंचे खंभे पर घुमाया जाता है।

चंदन जात्रा : यह मेला ज्येष्ठ महीने (मई-जून) में इक्कीस दिनों तक मनाया जाता है। इसमें महाप्रभु जगन्नाथ की एक छोटी प्रतिमूर्ति को चंदन लेप के बाद किसी पवित्र जलाशय में नौका विहार के लिए ले जाते हैं। इसका उद्देश्य महाप्रभु को ग्रीष्म ऋतु की तपन से शीतलता, आराम व राहत देना है। यह उन स्थानों पर मनाया जाता है जहां एक जगन्नाथ मंदिर है और जब तीर्थयात्री एकत्रित होते हैं तो इसके साथ विपुल हर्षोल्लास भी दिखाई पड़ता है। इस मेले का प्रधान केंद्र पुण्य धाम "श्री क्षेत्र" महाप्रभु जगन्नाथ के मूल वास स्थान पुरी में है।

रथ जात्रा : जगन्नाथ की प्रसिद्ध रथ जात्रा ओड़िसा और बंगाल में अत्यंत लोकप्रिय है। यह पर्व आषाढ़ (जून-जुलाई) के महीने में मनाया जाता है। एक मत के अनुसार यह बौद्ध परंपरा की अनुकृति है। स्थानीय लोगों में महाप्रभु जगन्नाथ, उनके बड़े भाई बलभद्र, उनकी बहन सुभद्रा की वर्ष में एक बार "मौसी मां" मंदिर की यात्रा के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है। ऐसा कहा जाता है कि महाराजा इन्द्रद्युम्न की रानी गुंडिचा ही जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा की मूर्तियों के अपूर्ण रहने के लिए उत्तरदायी हैं। गुंडिचा को अब देवरूप मिल गया है और हर बरसात में उनके मंदिर में त्रिमूर्ति विश्राम के लिए जाती हैं। जब ये मौसी मां के दुलार और सत्कार में आठ दिन रहने के बाद लौटते हैं, धन की देवी तथा महाप्रभु जगन्नाथ की पत्नी देवी लक्ष्मी, अपने दायित्वहीन पति, उनके भाई व बहन के लिए आसानी से दरवाजा नहीं खोलती हैं। तथापि अंत में वे मान जाती हैं और देवताओं के सामान्य अनुष्ठान पुनः प्रारंभ हो जाते हैं।

रथ यात्रा बड़े पैमाने पर मनाया जाता है। पुरी में होने वाले इस सर्वप्रमुख त्यौहार के लिए काष्ठ- रथ तथा अन्य आनुष्ठानिक सामग्रियां ओड़िसा के विभिन्न प्रदेशों से विभिन्न जातियों द्वारा भेजी जाती हैं। जाने और लौटने के दोनों ही बार रथ तीर्थ-यात्रियों और भक्तों द्वारा खींचा जाता है।

रथ यात्रा का आध्यात्मिक महत्व उन असंख्य हरिजनों आदिवासी और दूसरे भक्तों

के लिए स्पष्ट है जिन्हें अभी तक मंदिर प्रवेश का निषेध था। इसी दिन महाप्रभु- जगन्नाथ अपने पतित पावन या पतितों के उद्धारक के रूप में अपने उन भक्तों के सामने प्रकट होते हैं, जो सामान्य स्थितियों में उन तक नहीं पहुंच सकते।

बाहुडा यात्रा : रथ यात्रा का प्रत्यागमन श्रावण (जुलाई-अगस्त) के आरंभ में मनाया जाता है।

बड़ ओषा : बड़ ओषा वस्तुतः उपवास के लिए एक बड़ा अवसर है किंतु तटवर्ती ओड़िसा में लोग हजारों की संख्या में वरदान पाने के लिए धवलेश्वर के महादेव मंदिर पर जो कटक के पास महानदी के बीच एक पथरीले टापू पर है, एकत्रित होते हैं। यह पर्व चंद्रमास कार्तिक (सितंबर-अक्तूबर) के शुक्ल पक्ष चतुर्दशी के दिन मनाया जाता है। यह उपवास पुरुषों द्वारा भी रखा जाता है।

चंद्रभागा मेला : चंद्रभागा पर मेला चंद्रमास माघ (जनवरी-फरवरी) के शुक्ल पक्ष सप्तमी को प्रारंभ होता है और सात दिनों तक चलता है। यह मेला पवित्र नदी चंद्रभागा के मुहाने पर प्रसिद्ध मंदिर कोणार्क के पास लगता है। इस पवित्र क्षेत्र का उल्लेख महाभारत के शाम्ब आख्यान में मिलता है जो सूर्य भगवान की पूजा से कुष्ठ रोग से मुक्त हुआ था। कोणार्क सूर्य मंदिर और यह पवित्र क्षेत्र दोनों ही ओड़िसा के तटवर्ती क्षेत्रों में किसी समय सूर्य संप्रदाय के व्यापक प्रचलन का संकेत करते हैं। ऐसा विश्वास है कि जो भी चंद्रभागा में स्नान करेगा वह कुष्ठ रोग और बंध्यापन से मुक्त हो जायेगा। उसी समय जैन धर्म के केंद्र खंडगिरि पर, जो भुवनेश्वर के पास है, सात दिनों तक माघ सप्तमी मेला लगता है। इसके साथ ही तीर्थ यात्रियों में जिनमें बहुतायत हिंदुओं की होती है, पुण्य लाभ के लिए ईंटों व कंकड़ों से एक अति लघु मंदिर बनाने की परंपरा है।

महाशिवरात्रि : जहां कहीं भी शिव मंदिर स्थापित है, विशेषकर प्रसिद्ध शैव--केंद्र भुवनेश्वर में, जहां लिंगराज मंदिर है, वर्ष के नियमित पर्वो में, शिवरात्रि सबसे महत्वपूर्ण पर्व होता है, जो फाल्गुन (फरवरी-मार्च) के महीने में मनाया जाता है। मेले में आसपास के शहर और गांवों में तीर्थ यात्री आते हैं और भक्त लोग अर्द्धरात्रि में मंदिर के शिखर पर पवित्र महादीपक की स्थापना के समय तक उपवास करते हैं।

दौल जात्रा : यह चंद्रमास फाल्गुन की पूर्णिमा के दिन से प्रारंभ होता है तथा इसमें विष्णु मंदिरों से राधा और कृष्ण की मूर्तियां किसी महत्वपूर्ण समागम केंद्र या मेला के लिए अपनी आनुष्ठानिक यात्रा की शुरुआत करती हैं। भक्त लोग जुलूस बनाकर होली या अबीर का छिड़काव करते हुए राधा और कृष्ण की मूर्तियां विमानों में लिये हुए मेला क्षेत्र तक आते हैं। देवता अपनी यात्रा के दौरान अनेक गांवों में जाते हैं और भक्तों की श्रद्धांजलि तथा चढ़ावा स्वीकार करते हैं। मेला क्षेत्र में सामान्यतः धर्मगीतों का गायन, भागवत पाठ तथा अन्य धर्म-ग्रंथों के पाठ का आयोजन होता है।

रामलीला : यह अखिल भारतीय पर्व ओड़िसा के कुछ महत्वपूर्ण गांवों और शहरों में चैत्रमास (मार्च-अप्रैल) में मनाया जाता है। इसमें महाकाव्यीय घटनाओं के नाटकीय मंचन के लिए विभिन्न पात्र राम, रावण तथा रामायण- मिथक के अन्य चरित्रों के मुखौटा पहनते हैं। इनके साथ संगीत और गायन होता है तथा यह लीला लोक नाटक के रूप में प्रदर्शित की जाती है। भारत के अन्य भागों की भांति बड़ी बड़ी प्रतिमूर्तियों को जलाने की प्रथा ओड़िसा में प्रचलित नहीं है। यह मेला पाप पर पुण्य की विजय के उपलक्ष्य में राजा राम के सम्मान में आयोजित किया जाता है।

पटुआ जात्रा और चंडक पूजा : ये पर्व वैशाख मास में वर्णित दंडजात्रा के समवर्गी है। उनका वैसा ही महत्व है तथा इनका उद्देश्य महाप्रभु शिव को प्रसन्न कर वरदान पाना है। चैत्र और वैशाख दोनों महीने शिव पूजकों अथवा उन निम्न जातियों के लिए जो कभी बौद्ध थीं, विशेष रूप से पवित्र होते हैं। दंडजात्रा के विभिन्न रूपों की भांति ही इनमें भी उसी कालक्रम तथा उन्हीं अनुष्ठानों के अनुसार आध्यात्मिक लाभ के लिए शारीरिक यातनाओं का प्रचलन है।

महत्वपूर्ण पर्व

पणा संक्रांति : समूचे भारत में जो पर्व विषुव संक्रांति के नाम से मनाया जाता है, वही ओड़िसा में पणा संक्रांति अथवा छतुवा-संक्रांति (सत्तू-संक्रांति) के नाम से प्रसिद्ध है। ओड़िसा में संक्रांति को सूर्य मास के प्रथम दिन माना जाता है। जबकि बंगाल में उसे मास के अंतिम दिन मनाया जाता है। परंतु इस पर्व के प्रसंग में संक्रांति से तात्पर्य माह के अंतिम दिन से ही नहीं है वरन् वह एक सूर्य वर्ष का अंत और दूसरे का आरंभ भी है।

इस दिन एक छोटी सी मटकी को, जिसकी तली में छोटा सा छेद होता है, पणा या मीठे पेय से भरकर तुलसी के बिरवे पर लटका दिया जाता है। मटकी से पानी गिरना वर्षा होने का प्रतीक है। अतः संक्रांति वर्षा ऋतु के आगमन और कृषि चक्र के प्रारंभ की सूचक है। ओड़िसा के तटवर्ती प्रदेशों के लोग इस अवसर पर चने का सत्तू तुलसी को चढ़ाने के बाद खाते हैं।

अक्षय तृतीया : चंद्रमास वैशाख के शुक्लपक्ष तृतीया को यह महत्वपूर्ण त्यौहार हर कृषक परिवार में मनाया जाता है और इसकी प्रमुख विशेषता खेतों में आनुष्ठानिक रूप से धान की बुआई है। भाग्य की देवी "साथी" को नैवेद्य चढ़ाया जाता है। यह मकान-निर्माण, कुआं और तालाब खोदना शुरू करने के लिए अत्यंत शुभ दिन है। क्योंकि इसी दिन महाप्रभु जगन्नाथ तथा उनके भाई और बहन की रथ यात्रा के लिए रथ बनाने का काम प्रारंभ होता है।

रजड़पर्व या रज पर्व : "रजड़" ओड़िसा का एक अत्यंत लोकप्रिय त्यौहार है, यद्यपि यह पश्चिमी ओड़िसा में नहीं मनाया जाता है। रज का पहला दिन सदा ही सौर मास जेठ के अंतिम दिन को पड़ता है। पर्व तीन दिनों तक मनाया जाता है। ऐसा विश्वास है कि रज के पहले दिन वसुंधरा का मासिक धर्म प्रारंभ होता है तथा तीन दिन बाद वह आनुष्ठानिक स्नान करती है तथा सामान्य स्थिति में आ जाती है। इस तथाकथित मासिक धर्म की अवधि में धरती से उसी प्रकार बचाव करना होता है। जैसे रजस्वला स्त्री से बचने का विधान है। इसलिए पुरुष और स्त्रियां जमीन को छूने से बचने के लिए नंगे पैर नहीं चलते, खुदाई व निराई नहीं करते और मिट्टी के चूल्हे पर भोजन नहीं बनाते हैं। एक तरह से तीन दिनों तक सारे काम एकदम रोक दिये जाते हैं और लड़के लड़कियां झूला झूलते तथा खास तरह के रजगीत युगलगान के रूप में गाते हैं। गायन, आनंदोत्सव, भोज और कसरती करतबों का प्रदर्शन तथा खेलकूद आदि इन तीन दिनों के मुख्य कार्यक्रम होते हैं। भात के बदले चावल के चीले या दूसरी चीजें शाम के पहले खाये जाते हैं। चौथे दिन जब धरती विधि-विधान के अनुरूप स्वच्छ हो जाती है और उर्वरक के लिए स्त्री के समान प्रस्तुत होती है तब खेतों में आनुष्ठानिक जुताई शुरू होती है।

चितउ अमावस्या : चंद्रमास सावन की अमावस्या के दिन एक विशेष प्रकार का चावल का चीला जिसे चितउ कहते हैं, महाप्रभु जगन्नाथ को उनके मंदिर में चढ़ाया जाता है। यह चीला हर घर में बनाया और बड़े चाव से खाया जाता है। गंडेइशुणि, घोंघा और सीप की देवी की समुचित पूजा की जाती है। इन जीवों को चीला दिया जाता है और प्रार्थना की जाती है कि जब किसान खेतों में निराई करने के लिए जायें तो वे उनके पैरों को न काटें।

नवान्न : देवताओं को, विशेषकर ग्राम्य देवों को प्रथम फल अर्पण करने की प्रथा आदिवासियों और गैर आदिवासियों – दोनों में ही बहुप्रचलित है। धान जो सर्वाधिक महत्वपूर्ण फसल है तथा जो स्वयं देवी लक्ष्मी का रूप मानी जाती है, सर्वप्रथम देवों को अर्पित किये बिना नहीं खायी जा सकती। धान की एक खास किस्म होती है, जो इस समय तक पक कर तैयार हो जाती है। इस नये धान की खीर बनाकर पितरों और स्थानीय देवों पर चढ़ाई जाती है। इसके बाद नया धान और दूसरे धान बिना किसी हानि के खाये जा सकते हैं। यह त्यौहार विशेष रूप से लोकप्रिय है और पश्चिम ओड़िसा में कदाचित थोड़े विलंब से, पर व्यापक रूप से मनाया जाता है।

गम्हा पूर्णिमा : चंद्रमास श्रावण की पूर्णिमा का दिन किसानों के लिए विशेष रूप से मांगलिक होता है और उसे "गम्हा-पुनेई" के आनंदोत्सव के रूप में मनाया जाता है। मवेशी, विशेषकर जोत के जानवर, रंग बिरंगे सजाये जाते हैं और उन्हें खास तरह का चढ़ावा जाता है और वे गो-लक्ष्मी के रूप में पूजे जाते हैं। यह मवेशियों के विश्राम का

दिन होता है। यह त्यौहार कुछ आदिवासी समुदायों, जैसे ओड़िसा के पहाड़ी भुइयां के लिए इतना आकर्षक है कि इन अर्धभुखमरी के अभावमय महीनों में भी वे ऋण पाने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकते हैं। जिससे कि वे इस त्यौहार को मना सकें (महापात्र 1960)।

जन्माष्टमी : असुरों और पापियों से विश्व को त्राण देने के लिए भगवान कृष्ण का शुभ जन्मदिन, ओड़िसा के हिन्दुओं के लिए, खासतौर से वैष्णवों के लिए, विशेष रूप से पवित्र होता है। यह भाद्र मास के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। इस अवसर पर तिल के लड्डू विशेष रूप से बनाये जाते हैं।

गणेश चतुर्थी : यह पर्व चंद्रमास भाद्र की शुक्लपक्ष चतुर्थी को पाठशालाओं में विशेष रूप से मनाया जाता है। भगवान गणेश विद्या के देवता तथा कार्य संपादन में विघ्न-नाशक के रूप में पूजे जाते हैं। पूजा का उल्लास, दूसरे दिन या अगले किसी शुभ दिन पर, मूर्ति के किसी तालाब या नदी पर विसर्जन के बाद खत्म हो जाता है।

दुर्गा पूजा : संपूर्ण पूर्वी भारत में दुर्गापूजा या दशहरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण त्यौहार है। देवी दुर्गा के हिमालय स्थित अपने पीहर को लौटने की तरह ही घर से दूर रहने वाला हर व्यक्ति पूजा के लिए घर लौट कर त्यौहार मनाना चाहता है। देवी की पूजा महालया के दिन से, जो आश्विम मास का प्रथम चंद्र दिवस होता है, शुरू होती है और दशमी तक चलती है। पूरे नवरात्र भर, सभी लोग आनंदोत्सव मनाते हैं और दुर्गा मां की पूजा विधि-विधान से संपन्न की जाती है। दशमी को पूजा का समापन हो जाता है। पूजा के स्थान पर एक कलश अथवा हरे नारियल से सज्जित किसी जलपूर्ण कुंभ को दुर्गा के रूप में स्थापित करके पहले पूजा की जाती थी। यह पूजा विधि गणेश-सरस्वती, काली तथा अन्य उन सभी देवों के लिए, जिनकी पूजा के लिए मृण्मय- प्रतिमा वनायी जाती है, अपनायी जाती थी। दस्तकार, योद्धा और मोटर मैकेनिक अपने औजार, हथियार, वाहन और मशीन आदि जो शक्ति के विविध रूप हैं, की भी पूजा करते हैं क्योंकि देवी दुर्गा स्वयं भौमिक-शक्ति की प्रतीक हैं।

हिंदू समाज के प्रभाव के कारण कई आदिवासी समुदाय भी दशमी के दिन स्थानीय देवी को मुर्गा, बकरी या सूअर का बच्चा बलि चढ़ा कर दशहरा मनाते हैं। अन्य लोगों के साथ पहाड़ी भुइयां भी कई भूतपूर्व देशी रियासत के राजाओं को पूजा के लिए भेंड़ भेंट के रूप में देते थे (महापात्र-1960)।

गर्भणा संक्रांति : यह पर्व सौर मास कार्तिक के प्रथम दिवस को मनाया जाता है। तब तक एक तरह से धान की पौध 'गर्भवती' हो जाती है अथवा उनकी कोख में अनाज की बालियां पड़ने लगती हैं। 'गर्भवती' धान के पौधे, 'लक्ष्मी' के प्रतीक हैं, जो धन और उर्वरता की देवी है, अतः इन पौधों को खेतों में चढ़ावा अर्पित कर पूजा जाता है। धान

और दालों को इस आशा से नापते भी हैं कि अलौकिक शक्तियों के हस्तक्षेप से उनमें प्रचुर मात्रा में फसल मिल सकेगी। परिवार के सारे सदस्य इस विश्वास के साथ जी भरकर भोजन करते हैं कि उन्हें वर्षभर पर्याप्त मात्रा में रुचिकर भोजन मिलता रहेगा।

कुमार पूर्णिमा : चंद्रमास आश्विन की पूर्णिमा का दिन अविवाहित लड़के और लड़कियों के लिए अकथनीय खुशी लेकर आता है, जब उनके हित और कल्याण के लिए हर घर में चंद्र देव का पूजन होता है। सगे मामा की तरह जन्हमामू भी उनके लिए न केवल पकवान वरन् नये कपड़े भी लाता है।

दीपावली : यह ज्योतिर्मय आनंदपूर्ण चंद्रमास कार्तिक की गहनतम अंधकार वाली रात्रि को पड़ता है। यह एक अखिल भारतीय त्यौहार है जो व्यापारी वर्ग के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। किंतु ओड़िसा में यह रात्रि को आलोक पर्व के रूप में तथा दिन को परिवार के पूर्वजों की आत्माओं के लिए सामान्य श्राद्ध दिवस के रूप में मनाया जाता है।

कार्तिक पूर्णिमा : हिंदुओं के लिए चंद्रमास कार्तिक विशेष रूप से पवित्र है। पूर्णिमा को समाप्त होने वाले अंतिम पांच दिनों में (पंचक) उपवास रखा जाता है। पूर्णिमा के दिन केले के वल्कल से नन्हीं-नन्हीं नावें बनायी जाती हैं तथा बच्चे और वयस्क उन्हें उषा काल में दीया और पान- सुपारी के उपहार के साथ नदी या तालावों में बहा देते हैं। यह प्रथा उस ऐतिहासिक वार्षिक व्यापारिक अभियान के लिए प्रस्थान का स्मृति-चिह्न है, जब सामुद्रिक व्यापार के स्वर्णिम युग में सुदूर दक्षिण एशियाई मुख्य भूमि तथा द्वीपों के लिए व्यापारी दल ओड़िसा के बंदरगाहों से जाया करते थे।

छड़ाखाई : पावन कार्तिक मास में कई लोग, पवित्र आनुष्ठानिक रूप में अपने प्रिय आमिष भोजन को छोड़ देते हैं। पूर्णिमा का दूसरा दिन (प्रतिपदा) इस धार्मिक निषेध से मुक्त होने का बहुत बड़ा दिन है और सभी लोग उस दिन जी भरकर आमिष भोजन करते हैं। छोड़े हुए को खाने का यह दिन छड़ाखाई त्यौहार कहलाता है।

प्रथमाष्टमी : ओड़िसी संस्कृति की प्राथमिकताएं इस त्यौहार के मनाने से स्पष्ट होती हैं जिसे प्रथम संतान, चाहे पुत्र हो या पुत्री की मंगल कामना के लिए मनाया जाता है। यह त्यौहार चंद्रमास माघ की कृष्णपक्ष-अष्टमी को आता है। विघ्न-नाशक गणेश जी को जीवन की आपदाओं से बच्चे की रक्षा के लिए चढ़ावा दिया जाता है। बच्चे को नयी पोशाक मिलती है, पकवान मिलते हैं तथा माता पिता एवं गुरु-जनों का आशीर्वाद प्राप्त होता है।

माण-बसा अथवा गुरुवार ओषा : इस समय तक निचली जमीन में देर से होने वाले कुछ धान पक जाते हैं और कटाई शुरू हो जाती है। धन की देवी लक्ष्मी ने किसान पर कृपा की है। अतः कृतज्ञता ज्ञापन जरूरी है और अच्छी फसल पाकर सारा परिवार

खुशी मनाता है। इस तरह यहां देवी पूजा का साप्ताहिक उत्सव कार्तिक मास में हर गुरुवार को, जो लक्ष्मी जी का दिन माना जाता है अनेक प्रकार के विधि-विधानों सहित मनाया जाता है। एक विशेष प्रकार के गेहुएं रंग के धान से परिपूर्ण "माण" (नापने की टोकनी) लक्ष्मी की द्योतक है। इस दिन गृह स्वामिनी उपवास रखती और देवी की पूजा करती है। केवल परिवार के सदस्य ही (विवाहित- कन्याएं, जिनका गोत्र बदल चुका है तथा जिनका अपना अलग परिवार है, वर्जित होती हैं) प्रसाद ले सकते हैं अन्यथा लक्ष्मी देवी आराधक के गृह को त्याग सकती है। लोक विश्वास और लोक परंपरा के अनुसार लक्ष्मी चंचला है और अवसर पाते ही चली जाती है। महीने के अंतिम गुरुवार को समापन अत्यंत समारंभपूर्ण होता है।

धनु-संक्रांति : पौष मास अथवा पूस, प्रचुरता का मास माना जाता है इसलिए यह कहावत प्रचलित है कि "किसी का पौष मास, किसी का सर्वनाश" (कुछ लोगों के लिए कोई चीज पूस मास की तरह फलती है तो वही किसी के लिए घोर अभाव का समय होता है)। फसल संग्रह के बाद यह उचित ही है कि सौर मास पौष के प्रथम दिवस पर एक सार्वजनिक उत्सव मुआं (खीलों से बने मीठे लड्डू) के साथ मनाया जाय।

पूष पुनेई : उत्तरी ओड़िसा के आदिमजन विशेषकर भुईयां, गोंड तथा दूसरे लोग इस त्यौहार को पूर्णिमा के एक दिन पूर्व बड़े जबघोष के साथ मनाते हैं। सारा गांव प्रीतिभोज, मद्यपान एवं नृत्य में एक साथ भाग लेते हैं।

मकर संक्रांति : माघ का महीना कार्तिक की तरह दूसरा पुनीत मास है। माह का पहला दिन शिव जी का विशेष पावन दिन है। उस दिन विविध व्यंजनों के चढ़ावे के साथ उनकी पूजा की जाती है। मंदिर के न होने पर मिट्टी या रेत का एक टीला शिव का प्रतीक मान लिया जाता है तथा आराधक भक्तिपूर्वक उस पर थोड़ी मिट्टी या कंकड़ चढ़ाते हैं। धूप से सुखाया हुआ चावल (भात) भगवान शिव को चढ़ाया जाता है तथा उसे आनुष्ठानिक मित्रता की स्थापना में अटूट बंधन के लिए उपयोग किया जाता है। यह पर्व केवल हिंदुओं के लिए ही नहीं ओड़िसा के सभी क्षेत्रों के आदिम जनों के लिए भी महत्वपूर्ण है।

बसंत पंचमी : विद्या की देवी वीणावादिनी सरस्वती विद्यार्थियों, साहित्यिकों तथा कलाकारों के लिए विशेष महत्व रखती हैं। शैक्षणिक और सांस्कृतिक संस्थाओं तथा घरों में देवी की मिट्टी की प्रतिमा की पूजा होती है।

होली : यह अखिल भारतीय त्यौहार ओड़िसा में भी बड़े उत्साह और उल्लास के साथ फाल्गुन पूर्णिमा को मनाया जाता है। पूर्व संध्या को होलिका के लिए दहनशील पदार्थों का एक ऊंचा ढेर या घासपूस की एक झोपड़ी बना ली जाती है। यह अग्नियुक्त त्यौहार आग लगने से सतर्क रहने के प्रतीक के रूप में मनाया जाता है। क्योंकि ग्रीष्म ऋतु में पुआल के मकान जल्दी ही आग पकड़ लेते हैं। जो कि ओड़िसा में एक आम संकट है।

ऐसा विश्वास किया जाता है कि होलिका की ज्वाला जिस गांव की दिशा में जाती है, उसमें अगली फसल बहुत अच्छी होगी। होलिका की अग्नि में जिसे अगिरा कहते हैं और जिसे होलिका राक्षसी को जलाने के लिए प्रज्वलित किया जाता है, अनाज और सब्जियों की आहुति दी जाती है। होलिका खसरा और चेचक की देवी मानी जाती है।

इसी दिन ज्योतिषी वर्षा और फसल के संबंध में भविष्यवाणियां करते हैं। ओड़िसा में चंद्र-वर्ष की समाप्ति इसी दिन मानी जाती है।

प्रमुख चैती घोड़ा नाट : यह ओड़िसा के केवटों का प्रमुख त्यौहार है। घोड़े की तरह सिर वाली देवी बासुली की पूजा चंद्रमास चैत्र की पूर्णिमा से चंद्रमास वैशाख की अष्ट्मी तक की जाती है। कैवर्त पुराण के अनुसार परमात्मा समुद्र पर तैर रहे वट पत्र पर सो रहे थे। उन्होंने अपने कान के मैल से एक आदमी बनाया जो मजवूती से पतवार को पकड़ सके और उनकी पत्र-शैय्या को स्थिर रखे। जब वे तंद्रा में थे, एक दैत्याकार मत्स्य ने उस मानव को निगल लिया। पुनः पत्र-शैय्या डगमगाने लगी और भगवान ने क्रोध में मछली को पकड़ लिया और मानव को बाहर निकाल लिया। उसी दिन से मानव तथा उसके वंशज मछली के कट्टर दुश्मन बन गये। परमात्मा से भी मछली पकड़ कर आजीविका चलाने का आदेश मिला। पत्र का एक अंश घोड़ा बन गया। प्रभु की आज्ञा से विश्वकर्मा ने एक नाव बनायी और मानव तथा उसका घोड़ा उससे समुद्र पार कर गये। तभी से प्रथम कैवर्त अथवा मछुआरों और नाविकों के वंशजों के लिए दैवी घोड़ा आराध्य देव बन गया। वह दैवी घोड़ा वैशाख की अष्टमी को मर गया और भगवान ने प्रथम कैवर्त को सांत्वना दी कि यह घोड़ा "बासुली देवी" थी तथा उसकी पूजा उसे मोक्ष देगी।

दैवी आज्ञा के अनुरूप देवी बासुली का प्रतिनिधित्व काष्ठ निर्मित अतीव- सुसज्जित हयग्रीव करता है। जिसे बांस के टुकड़ों से बने धड़ पर लगाया जाता है। जिसका रंग भूरा होता है तथा लाल फूलों के हारों से सजाया जाता है। एक आदमी सुराख के अंदर से उसकी धड़ में घुस जाता है तथा अपनी गर्दन इतनी ऊंची रखता है कि जिससे दूर से ऐसा लगे कि वह घोड़े पर सवार है। लगाम पकड़ कर वह नाचता है। और उसी के साथ घोड़ा भी आगे पीछे ढोल की थाप पर नाचता है। वह लोक कवियों द्वारा विरचित गीत गाता है। यह हयनृत्य ओड़िसा के तटवर्ती प्रदेशों की ग्रामीण जनता के लिए लोकप्रिय मनोरंजन प्रस्तुत करता है। कुछ गांवों में कुछ अन्य केवट जातियां बासुली की पूजा, लकड़ी से बने घोड़े के सिर को ढेंकुली (जिससे मुरमुरा चूड़ा आदि बनाकर वे अपनी आजीविका चलाते हैं) पर लगाकर करती हैं।

महत्वपूर्ण उपवास

धर्म प्राण हिंदू के लिए माह में ऐसे कई दिन होते हैं जब उसे उपवास रखना पड़ता है। कभी दिन में एक बार भोजन करना होता है, कभी सूर्यास्त के बाद भोजन, कभी सामान्य चावल का भोजन न करके केवल फलाहार पर रहना पड़ता हैं अथवा कभी निर्जला व्रत रखा जाता है। विधवाओं को विशेषकर ब्राह्मण एवं ऊंची जातियों में अनेक प्रकार के संयमों को पूरा करना होता है तथा लगभग सारे व्रत रखने पड़ते हैं। कहना न होगा कि उपवास के साथ आमिष भोजन, मिथुन तथा अन्य आनंद उपभोग-जनित कार्य-कलाप भी वर्जित होते हैं। इस प्रकार के उपवासों से पुण्य मिलता है, जिसका उद्देश्य आवागमन के चक्र से मुक्त होना है। आदिवासी समाज में पुरोहित, सिरहा या ओझा ही उपवास, आनुष्ठानिक स्नान, परिवर्जन इत्यादि करते हैं, जिससे कि वह अलौकिक जगत के देवों के साथ वार्तालाप (पृ. 97) कर सकें। वे हिंदू जो सारे संयमों का पालन नहीं कर सकते यह कोशिश करते हैं कि वे कुछ महत्वपूर्ण अवसरों पर उपवास रख सकें। इनमें चार बड़ी एकादशी जो क्रमशः चंद्रमास वैशाख, आषाढ़, कार्तिक और माघ में पड़ती हैं तथा कार्तिक मास के पांच पुण्य दिवस (पंचुक) आते हैं। विवाहिता, कुमारी या विधवा सभी स्त्रियां सारे ओषा तथा अधिकांश व्रतों को रखती हैं।

अब हम हिंदुओं में प्रचलित व्रत और ओषा, दोनों प्रकार के उपवासों पर विचार करेंगे।

सावित्री व्रत : सावित्री वह देवतुल्य शुचि नारी है जिसने मृत्यु देवता यमराज से सबल तर्क देकर अपने पति को पुनः जीवित करवा लिया था। चंद्रमास ज्येष्ठ की प्रतिपदा को यह व्रत रखकर सधवा स्त्रियां सावित्री की गरिमा प्राप्त करना चाहती हैं, जिससे वे अपने पति की जीवनावधि को सुदीर्घ बनाकर अपनी शुचिता एवं पातिव्रत्य का प्रमाण दे सकें। व्रत के अंत में पत्नी अनेक प्रकार के व्यंजन पति को प्रदान करती है।

खुदुरकुणी ओषा : किशोरियां भाद्रपद मास में हर रविवार की सुबह देवी मंगला की पूजा करती हैं। यह व्रत ब्राह्मणों को छोड़कर सभी जातियों में प्रचलित है जो विवाह से पहले भाभियों के जुल्म से रक्षा पाने के लिए ननदों द्वारा किया जाता है। संध्या के समय लड़कियां देवी के सामने एक कथा का पाठ करती हैं, जिसमें वर्णन आता है कि किस तरह एक समृद्ध सौदागर के परिवार में सात पुत्र और एक इकलौती बेटी तअपोई थी। जब वे सब भाई वाणिज्य के लिए नौयात्रा पर चले जाते हैं तो उसकी भाभियां उसे सताती हैं। तअपोई देवी मंगला (कल्याण करने वाली) की पूजा करती है और सारे कष्टों से त्राण पा जाती है। देवी की कृपा से भाभियां अपने कुकर्मों के लिए दंडित होती हैं।

बुधेई ओषा : इसमें स्थानीय देव बुधेई बामन की पूजा की जाती है। वे नेत्रहीनों को नेत्र, संतानहीनों को संतान देने वाले तथा कुष्ठ और दूसरे मारात्मक रोगों से मुक्ति दिलाने वाले हैं। उनकी पूजा भाद्रपद महीने में हर बुधवार को की जाती है। एक बटना

को प्रतीक के रूप में सिंदूर काजल और फूलों से सजाकर यह पूजा की जाती है। ओषा की पौराणिक कथा के अनुसार इसके फलस्वरूप एक मद्य विक्रेता की पत्नी कुष्ठ रोग से अच्छी हो गयी थी। उसके पांचों बेटे जो कुछ सम्राट द्वारा मार डाले गयी थे, फिर से जीवित हो गये थे। देवता की कृपा से एक ब्राह्मण स्त्री का प्रसव भी सरलता से हुआ था। किंतु यदि कोई वरदान पाने के बाद व्रत करना भूल जाता है तो देवता प्रतिशोध भी लेते हैं। उदाहरण के लिए एक स्त्री को उनकी कृपा से संतान हुई है पर वह पूजा करना भूल गयी है, देवता उसके बच्चे का अपहरण कर तब तक रखे रहे हैं जब तक मां यह प्रतिज्ञा नहीं कर लेती कि वह बिना भूले उनकी पूजा करती रहेगी।

जन्ही ओषा : इस महीने में जन्हीं अथवा तोरी कुंवारी लड़कियों के लिए वर्जित फल है। मिथक के अनुसार एक बार एक लड़की ने एक तोरी तोड़ ली थी तो उसके हाथ गलकर टुकड़े टुकड़े होकर गिर पड़े थे। उसने वृन्दावती देवी, जो तुलसी के पौधे में निवास करती हैं, की पूजा की और अपना हाथ फिर से पाया था। देवी में कुंवारी लड़कियों को कुष्ठ से नीरोग करने की, नास्तिकों तथा विशेषकर नास्तिक विवाहित स्त्रियों को संतान की मृत्यु के द्वारा सजा देने और व्रत के समुचित पालने के बाद उन्हें पुनर्जीवित कर देने की शक्ति है।

षष्ठी ओषा : परमशक्तिमयी षष्ठी देवी बच्चे के भाग्य और कल्याण की नियामिका हैं। ऐसा विश्वास है कि वे बच्चे के जन्म के छठे दिन उसके कपाल पर उसका भाग्य लिखती हैं। मां और पड़ोस की अन्य महिलाएं उनकी पूजा चंद्रमास भाद्र के शुक्लपक्ष षष्ठी को करती हैं। प्रसन्न होने पर देवी मृत शिशु को नवजीवन दे सकती हैं।

बाली तृतीया : विवाहित महिलाएं यह व्रत भाद्रपद शुक्लपक्ष तृतीया को बाल से बनी उमा और महेश्वर की मूर्तियों की पूजा के लिए करती हैं। पद्म पुराण के एक मिथक के अुनसार पार्वती ने यह व्रत रखा था, जिनके फलस्वरूप शिवजी से उनका विवाह हुआ था। एक दूसरी प्रचलित पौराणिक कथा है कि राम ने रावण को युद्ध में जीतने के लिए इस दैवी दंपति की आराधना की थी। युवकों को इस दिन इस बात की छूट होती है कि वे छतों को छड़ियों से पीटें अथवा दरवाजे पर से सीढ़ी हटा दें क्योंकि विश्वास यह है कि इस दिन लोगों के द्वारा दिया गया अभिशाप वरदान में बदल जाता है।

दुतिया ओषा अथवा दूतीवाहन ओषा : स्त्रियां जो बंध्या हैं अथवा मृत बच्चों को जन्म देती है या जिनकी संतानें मर गयी हैं – वे देवतुल्य दूती-वाहन की पूजा करती हैं जो एक विधवा ब्राह्मणी से सूर्य देव की संतान थी। यह व्रत अभागिन स्त्रियों द्वारा चंद्रमास आश्वन के कृष्ण पक्ष अष्टमी को गर्भाधान के लिए रखा जाता है। व्रती आत्यंतिक संयम के रूप में निर्जला व्रत रखती है। अनेक चमत्कारों से युक्त इस देवी को विविध प्रकार के फल चढ़ाये जाते हैं।

राई दामोदर व्रत और पंचुक व्रत : ओड़िसा में हिंदू विधवायें व्यापक रूप से इस व्रत का पालन चंद्रमास कार्तिक के पहले दिन से पच्चीसवें दिन तक करती हैं। प्रचलित स्थानीय मिथक के अनुसार पुरी के महाप्रभु जगन्नाथ के मंदिर के पुरोहित के नेता की पुत्री राई का विवाह महाप्रभु से हो गया और इस प्रकार वह देवतुल्य हो गयी। उसे महाप्रभु की देव पत्नी लक्ष्मी से वरदान मिला कि उनके साथ उसकी पूजा भी होगी। विधवाएं राई और लक्ष्मी के साथ दामोदर की पूजा भी करती हैं तथा धूप में सुखाया चावल (भात) जिसे 'इंविश' कहते हैं, दिन में केवल एक बार खाती हैं। इस पुनीत मास के अंतिम पांच दिन "बग पंचुक" कहलाते हैं। अर्थात् इस समय बगुला भी साधु बन जाता है और मछली खाना बंद कर देता है। इन पांच दिनों में केवल लक्ष्मी और नारायण की पूजा होती है। पंचुक की अवधि में स्त्रियां पवित्र-तुलसी-पौधे के चबूतरे पर वृन्दावती देवी की पूजा करती हैं जिसे वे स्थानीय जड़ी-बूटियों एवं अन्य पदार्थो से बनी कई रंगों की रांगोली से बने चित्रों से सजाती हैं।

नाग चउठी ओषा : यह व्रत चंद्रमास कार्तिक के शुक्लपक्ष चतुर्थी को पड़ता है, जब स्त्रियां सोने चांदी या चावल से बने नाग- सर्प के रूप में नाग देवता पिंगल देव की पूजा दीमक की बांबी (जो बाग देवता की पत्नी की प्रतीक है) के पास करती हैं। यह व्रत परिवार के सदस्यों को सर्पदंश से बचाने के लिए किया जाता है।

एक पौराणिक कथा के अनुसार एक सौदागर की पत्नी ने अपने "संगात" अर्थात् आनुष्ठानिक सखी तथा सर्पमाता देवी नागमाता को धोखा दिया। उसके छः बेटे सर्पदंश से मर गये। सातवें बेटे की शादी एक राजकुमारी से होती है जो पूरी निष्ठा के साथ इस व्रत का पालन करती है और नाग माता द्वारा "अहसुलक्षणी" अर्थात् वह सती-पत्नी जिसके पति की मृत्यु उसकी मृत्यु से पहले नहीं होती है, होने का वरदान पाती है। अतः यद्यपि उसका पति अभिशप्त था, और सर्पदंश से मर जाता है, पर वह अपने छः भाइयों के साथ फिर से पुनर्जीवित हो उठता है।

कांजी आंवला ओषा : इसमें गृह स्वामिनी षष्ठी देवी की पूजा, उनकी मूर्ति को सात सूखी मछलियों के बीच रखकर, सिंदूर, काजल और पीले कपड़ों से सजाकर करती हैं। यह चंद्रमास मार्गशीर्ष के कृष्ण पक्ष नवमी को मनाया जाता है, जब ओड़िसा में शीत ऋतु का प्रारंभ होता है। कांजी (विशिष्ट प्रकार का सूप जो खमीर उठाये गये चावल के मांड़ में सब्जियां डालकर बनाया जाता है) आमलिका अथवा आंवला, (जो विटामिन सी से भरपूर होता है) तथा सूखी मछली (जो कैल्शियम तथा अन्य खनिज लवण से संपन्न होती है) आदि पदार्थ शीत ऋतु में शक्तिवर्द्धक होते हैं। ओषा की पौराणिक कथा के अनुसार देवी एक किशोर दुल्हन की रक्षा के लिए आती है जो पड़ोस के बाग से एक खीरा चुरा लेती है और एक एक कर अपने पुत्रों को खाने के लिए अभिशप्त होती है।

वह षष्ठी देवी को संतुष्ट कर लेती है और पुत्रों को छिपा लेती है तथा उचित समय पर उसे पुनः लौटा देती है।

चैती मंगलवार ओषा : मंगला देवी की पूजा चंद्रमास चैत्र के हर मंगलवार को होती है। एक मिथक के अनुसार चैती नाम की भंगी समाज की अछूत महिला देवी को शराब, मांस और अंडे चढ़ाया करती थी। एक दिन उसने संतानहीन राजा का अशुभ चेहरा देख लिया और खीझकर उसने अपशकुन कह डाला। राजा ने उसके सारे बेटों को ढेंकुली में कुटवा दिया। किंतु मां मंगला की अनुकंपा से वे सब फिर से जी उठे। राजा को शिक्षा मिली और उनकी रानी ने देवी मंगला की पूजा की तथा उसे पुत्रों का वरदान मिला।

सामयिक अनुष्ठान : चेचक बड़ी माता है। खसरा और ताऊन आदि महामारियों की देवियां जो विभिन्न स्थानों पर विविध नामों से जानी जाती हैं, जैसे हेंगुलेई, जांगुलेई, ठाकुराणी आदि की पूजा एक मीठे पेय "पणा" के द्वारा गांव से जाने वाली सड़कों के चौराहे पर की जाती हैं। देवियों से विनती की जाती है कि वे उस गांव को छोड़ दें और उसे अपने क्रोध से बचायें। आदिवासियों में ग्राम्य देवता तथा कतिपय स्थानीय हिंदू देवता, जिन पर उनकी आस्था होती है, की कहीं कहीं रक्त बलि से पूजा होती है।

सूखाग्रस्त क्षेत्रों में वर्षा होने के लिए कुछ जाने माने कर्मकांड हैं। एक सर्वाधिक प्रचलित कर्मकांड के अनुसार महादेव की मूर्ति को पानी में डुबो दिया जाता है। जिससे कि सूखे की जगह उस क्षेत्र में बाढ़ आ जाये। मयूरभंज जिले के संथाल आदिवासी सीमा बोंगा को विशेष चढ़ावा जो वे सिरहा के माध्यम से मांग करते हैं, देने की प्रतिज्ञा कर प्रसन्न करते हैं। जब वर्षा हो जाती है, मनौती का चढ़ावा दिया जाता है। पहाड़ी बोंडो भी वर्षा के लिए बलि देते हैं। वे वर्षा के प्रकोप को कम करने के लिए भी बलि देते हैं (मुखर्जी एलविन, 1950)।

आदिवासी लोगों में तीज-त्यौहार : वे आदिवासी, जो हिंदू प्रभाव में रंग गये हैं, अपने क्षेत्र के हिंदुओं में प्रचलित कुछ प्रमुख त्यौहारों और व्रतों का उन्हीं के समान पालन करते हैं, तथा इसके साथ ही अपने उन प्राचीन विशेष विधानों एवं कतिपय त्यौहारों को भी मनाते रहते हैं। जैसे गाय, भैंस, शराब का चढ़ावा चढ़ाना या बलि देना आदि जो सीधे सीधे हिंदू रीति रिवाजों और देवों के विरोध में नहीं आते। ईसाई आदिवासी सामान्यतया किसी परंपरागत आदिवासी विधि-विधान एवं पर्वो को तब तक नहीं मनाते हैं जब तक कि उनका ईसाइत्व के साथ मधुर सामंजस्य न हो जाये। सुंदरगढ़ के उरांव लोगों में धान के आनुष्ठानिक बुआई समारोह, जिसमें बीज को आदिवासी ढंग से बलि दिये गये मुर्गे के रक्त से पवित्र किया जाता है, इसका एक अच्छा उदाहरण है। कैथोलिक उरांव में ऐसे ही एक आनुष्ठानिक बीजारोपण समारोह में धान के बीजों को स्थानीय

गिरजाघर की वेदिका पर एक पवित्र अनुष्ठान द्वारा मदर मेरी के आशीर्वाद से अभिषिक्त किया जाता है (महापात्र, बर्मन और पटनायक, 1950)।

आदिवासियों में बुआई, कटाई, नुआखाई और वेवर खेती करने वालों में जंगल की कटाई तथा उसे जलाकर राख की खाद बनाना, अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है। अप्रैल-मई में की गयी आनुष्ठानिक सामूहिक शिकार की सफलता प्रायः कृषि संबंधी प्रयासों की सफलता की सूचक होती है – ऐसी धारणा अत्यंत रोचक है। संथालों का एक अपना खास वसंतोत्सव होता है, जिसमें जल का छिड़काव, विशेष गीत और नृत्य तथा दैवी भूमिकाओं का मानवीय अभिनय होता है, फलतः अनेक पारंपरिक, सामाजिक, प्रतिबंध टूट जाते हैं। शायद यह एक विरेचक प्रभाव है प्रायः आदिवासी लोगों में परमात्मा के लिए पूजा की कोई विशिष्ट विधि या विधान नहीं है। किंतु मयूरभंज के संथालों में कोई भी व्यक्ति हर पांचवे साल अथवा जीवन में केवल एक बार पूजा कर सकता है। बोंडो त्यौहारों के विषय में एलविन का कथन संभवतः ओड़िसा के अन्य आदिवासी समुदायों के लिए भी सार्थक हो सकता है।

बोंडो अपने धार्मिक कार्यो पर बहुत समय खर्च करते हैं तथा प्रीतिभोज एवं काम से अवकाश मनाना उनके जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। जिन्हें उस समाज से अलहदा कठिनाई से समझा जा सकता है। वे बोंडो लोगों की विश्रामप्रियता को, अपने अंतरंग मित्रों के साथ जी भरकर मांस और मदिरा लेने के आनंद को, उत्सवों के प्रति उल्लासमय अभिरुचि को, अव्यक्त शक्तियों से अपनी आत्मरक्षा की आवश्यकता के बोध को, अभिव्यक्त करते हैं (एलविन, 1950, पृ. 172)। इनके अतिरिक्त ये सामूहिक उत्सव गांव में एक सुदृढ़ एकता की भावना को प्रोत्साहन देते हैं और सामाजिक और आर्थिक जीवन में बड़े कार्यों को करने के लिए व्यक्ति के आत्मविश्वास को बल देते हैं। दूसरी ओर ये पर्व-त्यौहार उनके स्वल्प संसाधनों पर, खास तौर से अभाव के महीनों में भार स्वरूप हो जाते हैं तथा ऋणग्रस्तता और एक तरह से बंधक मजदूरी, जैसी ओड़िसा के कोरापुट जिले में प्रचलित है, निमित्त बन जाते हैं।

7

लोक कला, संगीत, नृत्य और नाटक

लोक कला

लोक कला आदिम कला से अपने दृष्टिकोण और प्रकृति में भिन्न होती है। आदिम कला आद्यकला है : सरल और अनगढ़। लोक कला को बाद का विकास माना जाता है। इसका उद्भव उस समय होता है जब कोई संस्कृति परिष्कृत होने लगती है, जिसका मूर्त रूप उसकी विभिन्न शैलियों और शिल्प विधियों से मिलता है। आदिम कला की तुलना में लोक कला एक उच्चस्तरीय कला है।

आदिम धारणाएं एवं अंधविश्वास तथा जीवन की बहुविध समस्याओं के विलक्षण समाधान आदि निश्चय ही उनके लोक-रूपों से भिन्न होते हैं। आदिम मानव दुष्टात्माओं को वश में करने के लिए फंदा बनाता है। उन कुछ देवों को जो मानव के लिए विपदा भेजते हैं, वंदना करके प्रसन्न करता है। बीमारियों, भूत-प्रेतों और खूंखार जानवरों के लिए मंत्र-तंत्र का प्रयोग करता है। घर द्वार की रक्षा के लिए कुल देव की प्रार्थना करता है, शत्रु को आतंकित करने के लिए अपनी ढाल की सजावट करता है, शिकार के पशुओं पर वशीकरण चलाता है, अच्छे देवों को जमीन में उपजाऊपन देने तथा प्लावन दुर्भिक्ष और सांघातिक बीमारियों आदि विनाश लीलाओं की रोक थाम करने के लिए प्रार्थना करता है। यही आवश्यकताएं उनकी कला में अभिव्यक्ति और समाधान पाती हैं।

हम आदिम कला के नमूने वृक्षों के वल्कल पर, चट्टानों पर, प्रस्तर खंडों पर, बुने हुए वस्त्रों पर, परों की बारीकी कृतियों पर उत्कीर्ण या चित्रित पाते हैं, पके चमड़े व कुओं पर उनकी चित्रकला काफी आकर्षक होती है।

सौंदर्यात्मक ऊंचाई

लोक कला में ग्रामीण जनता की आवश्यकताएं तथा विशेष प्रकार की समस्याएं अभिव्यक्ति पाती हैं। उनका दैनंदिन धार्मिक आचारों और तीज त्यौहारों से रिश्ता रहता है। पौराणिक कथाओं एवं दंतकथाओं को चित्ताकर्षक रूप में चित्रित करना और जन सामान्य तक

पहुंचाना आवश्यक है। बच्चों को खेलने के लिए खिलौने तथा गुड्डे गुड़ियों की जरूरत होती है। महिलाओं की बदलती अभिरुचि को नये ढंग के आभूषणों से संतुष्ट करना होता है। मंदिर और मूर्तियों का निर्माण करना होता है। लोगों की आवश्यकताओं को संतुष्ट करने में लोक कला एक सौंदर्यात्मक ऊंचाई प्राप्त कर लेती है।

लोक कला के रूपों में विविध वस्तुओं और पद्धतियों का उपयोग होता है और प्रायः कुछ वर्गों के लोगों में यह पारंपरिक वंशानुगत व्यवसाय होता है। इसके लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम मिट्टी है। मृणमय प्रतिमाएं और आकृतियां एक खास वर्ग के कलाकारों द्वारा बनायी जाती हैं। काष्ठ-मूर्तियां काष्ठकारों द्वारा उत्कीर्ण की जाती हैं। प्रस्तर-शिल्पी पत्थर की मूर्तियों को बनाने की कला को बनाये रहता है।

रूप-भेद

लोक कला दो भागों में विभाजित है — हस्तनिर्मित और ढलाई। हस्तनिर्मित वर्ग की बनावट आदिम कला जैसी है। आकृति के सिर; आंख, भौंह, होंठ, स्तन आदि अंग तो बनाये जाते हैं किंतु पैर छोड़ दिये जाते हैं। ढलाई में मानव और पशुओं की पूरी आकृति बनायी जाती है।

यद्यपि लोक कला लुप्त होती जा रही है, फिर भी ओड़िसा में वह अब भी जीवंत परंपरा है। मेलों में बिकने वाली अनेक प्रकार की मोहक आकृतियां मिट्टी, कपास, गूदा, लकड़ी अथवा पीतल की बनी होती है। पुतली, खिलौना, कठपुतलियां सेलखड़ी पर नक्काशी, काठ के बर्तन, फाटक, दरवाजे, तिजोरी, पालकी, वाद्ययंत्र, मूर्तियां वैवाहिक पोशाकों आदि को बनाने में बड़ा कौशल दिखायी पड़ता है।

मंदिरों की दीवारें तथा कतिपय निजी मकानों की दीवारें अभी भी चित्रित होती हैं। राम, कृष्ण, जगन्नाथ, नृसिंह, महावीर, भैरव, नाशा (एक नागा सैनिक वेशभूषा और नृत्य मुद्रा में) नव गुंजर (नौ पक्षी और पशुओं के अंग जैसे बाघ, बैल, मोर, अहिराज, तोता, मुर्गा, सिंह, हाथी और मानव को मिलाकर बनाया गया विलक्षण जीव), काम-कुंजर (कामदेव का हाथी; नव युवतियां इसके अंगरूप होती हैं) आदि आकृतियां दीवार की सफेद पृष्ठभूमि पर अंकित की जाती हैं।

ओड़िसा में कैनवास पर चित्रांकन अब भी प्रचलित है। ओड़िसा के पट-चित्र भारत और विदेशों में प्रसिद्ध हैं। श्रावणी पूर्णिमा के झूलन (राधा कृष्ण का झूला पर्व) के अवसर पर पुष्प गुच्छों से मंडित कुंजों में मोहक स्त्रियों की आकृतियां बनायी जाती हैं। पीतल की मछलियां, सींग के खिलौने, तारकशी के आभूषण, चित्रांकित फरुआ (सिंदूर रखने की सिंदूरदानी), कपड़े और सेलखड़ी से बनी वस्तुएं और भंजप्पा (पारंपरिक ताश जिन पर देवता, मनुष्य, पशु आदि की रंगीन आकृतियां अंकित होती हैं) आदि ओड़िसी वस्तुएं

आज भी दूर दूर तक प्रसिद्ध हैं।

अब देह पर गोदना का चलन नहीं रहा। संगीत, कला और विनोद में प्रवीण 'अछूत' जाति की महिलाएं बांहों पर फूलों से लदे, कोयल की कूक से अनुगूंजित आम्रकुंज का चित्र, चिबुक पर जायफल की कली, वक्ष पर फूलों का हार, माथे पर कामदेव का पंचवाण, दांये हाथ पर जगन्नाथ, बलभ्रद और सुभद्रा की त्रिमूर्ति, पांचों अंगुलियों पर पांच भौंरे अथवा उसी बांह पर लक्ष्मी और सीता देवी की पीठिका आदि अंकित करती हैं। कुछ आनुष्ठानिक अवसरों को छोड़कर लिखने के लिए ताड़पत्रों का उपयोग नहीं होता है। मंदिर, घोड़ा, गाड़ी, युद्धरत शूरवीर, नायक, प्रेमी युगल, कृष्ण द्वारा स्नाननिरता गोपियों का वस्त्रहरण, असुर-निकंदन, कालिय-दलन, जगन्नाथ, बलभद्र, सुभद्रा और सुदर्शन, नृत्यरता कन्याएं कृष्ण से वंशीवादन सीखती हुई राधा, रथयात्रा, रजदोली तथा चंदन जात्रा आदि जैसे पर्व, सौदागर की सागर यात्रा ये सभी विषय ताड़पत्र पर अंकित और चित्रित किये जाते हैं। कभी कभी सैकड़ों पृष्ठों की काव्य-रचना भी चित्रांकित होती है। भुवनेश्वर संग्रहालय में प्राचीन चित्रकला के नमूने के रूप में कुछ ताड़ पत्र पोथियां सावधानीपूर्वक रखी हैं।

चित्रां

गांव में प्रत्येक महिला कमोबेश "चित्रां" (पिसे चावल के द्रव से दीवारों और धरती पर चित्रांकन) करना जानती है। मार्गशीर्ष मास के हर गुरुवार को भंडारगृह का फर्श लक्ष्मीदेवी के चरणों से तथा मिट्टी की दीवारें धान की बालियों के चित्रों से, अंगुलियों के निशानों से, हाथी, विहग और जंगली जानवरों से, पद्म-नाल से और लता गुल्मों से सजाये जाते हैं।

द्वार-सज्जा

श्रावणी संक्रांति के दिन, जब सूर्य दक्षिणायण होते हैं, दक्षिणमुखी दरवाजे, धान के गुच्छों और आभूषणों से, कमल और कुमुदिनी से, जगन्नाथ, बलभद्र-सुभद्रा की त्रिमूर्ति से, हल्दी से रंगे कपड़े आदि से सजाये जाते हैं और उनकी पूजा होती है।

जीवन में अनुस्यूत

ओड़िआ जीवन में कला कितनी गहन रूप से अनुस्यूत थी, इसका पता हमें प्राचीन कला के कतिपय उपलब्ध नमूनों से मिलता है। जैसे पक्की मिट्टी के बने किसी पेड़ के नीचे देवी के माथ अनेक घोड़े, तुलसी के पौधे को सिर पर लिये पौराणिक वृंदावती देवी की मूर्ति, ताड़-पत्र की पोथी को रखने की चित्रित काष्ठ मंजूषा, देवपीठ, तिजोरियां, पान और

चूना रखने का डिब्बा, म्यान, ढाल, वर्तन, कुंभ आदि।

लोक कला की कृतियां मूलभूत रूप से कलाकार के अपने उपयोग के लिए होती हैं। वह व्यावसायिक नहीं होती। महिलाएं सुई धागे से मीनाकारी करती हैं और घास की जड़ों से पंखा बनाती हैं। वे घर में बनी चीजों का इस्तेमाल करती हैं।

स्वाधीन व्यक्तित्व

ग्रामीण कला को उच्च कला की एक ग्राम्य शाखा नहीं कहा जा सकता। लोक कला का निजी व्यक्तित्व और वैशिष्ट्य है और वह अपनी आंतरिक गुणात्मकता के आधार पर जीवित है, जिसे कलाकार की कल्पना-शीलता, उनके संगत रूप, नमूनों की लयात्मकता तथा निपुण हस्तशिल्प रूप देते हैं। ग्रामीण-कला और उच्च-कला में परस्पर आदान-प्रदान भी स्वाभाविक ही हैं। दोनों कलाएं सदा समानांतर ही नहीं चलती हैं।

लोक कला में प्रयुक्त वस्तुएं आयातित न होकर स्थानीय होती हैं। परिष्कृत कला नगरीय केंद्रों के आसपास विकसित होती है, धनिकों द्वारा संरक्षित होती है और व्यावसायिकता की ओर उन्मुख होती है। जबकि लोक कला अपनी जमीन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी रहती है और लोगों के रीति-रिवाज तथा धारणाओं से संबद्ध रहती है। किसी भी रूप में वह 'कला कला के लिए' नहीं कही जा सकती है। यह अपने दृष्टिकोण में उपयोगवादी है तथा लोगों के सामाजिक आर्थिक जीवन पर आधारित होती है। यह अनजान बेनाम होती है और किसी निश्चित समयावधि में इसका उद्भव निर्धारित नहीं किया जा सकता।

लोक संगीत

बालक भैंसे चराता है। किसी भैंसे की पीठ पर बैठे-बैठे ऊंचे स्वर में गाना गाता जाता है। गाड़ीवान गाड़ी हांकते-हांकते गीत गाता जाता है, भिखारी भीख मांगते हुए कोई धुन सुनाता है। किशोरियां झूला झूलते हुए गाने गाती हैं और बालक बालिकाएं खेलते कूदते हुए कोई तान निकालते हैं। कई गाने व्यंग्यमय होते हैं। महिलाएं चर्खा कातते हुए, अनाज कूटते हुए, आटा पीसते हुए गाने गाती हैं। फिर लोरियों की अपनी अलग ही दुनिया है। हास्य-गीत, गालियां और व्यंग्य गीत, वीर-गीत, प्रणय-गीत और छंद कभी कभी शुद्ध मनोरंजन के लिए भी गाये जाते हैं। जीवन के महत्वपूर्ण मंगल अवसर जैसे विवाह, जन्म, लड़की की ससुराल के लिए विदा आदि और अमंगल अवसर जैसे मृत्यु के अवसर पर लोकगीतों की तथा लोकसंगीत की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। बच्चों को चलाना, नचाना, दूध पिलाना, खाना खिलाना, गिनती गिनाना, परिश्रमी और शीलवान होने की सीख देना आदि उद्देश्यों से गाने गाये जाते हैं। बच्चों को पारिवारिक शिक्षा लोक गीतों से ही मिलती

है जो अविस्मरणीय एवं शाश्वत होते हैं। घर और गांव के संगीतमय वातावरण से उन्हें संगीतज्ञ, कलाकार, साहित्यिक और अच्छे मिजाज का आदमी बनाने में परोक्ष रूप से सहायता मिलती है।

गाने की चेतना और संवेदना ही लोक कविता का स्रोत है और संगीत उसकी आत्मा है। किसी लोक गीत को बार-बार दुहराने से उपजने वाली भावना की सांद्रता उसका हृदय स्पंद है। जो लोकगीत गाया नहीं जाता, जिसे मात्र संग्रहित कर लिया जाता है, वह अजायबघर की निर्जीव सामग्री की भांति हो जाता है।

मौखिक परंपरा

लोकगीत मौखिक परंपरा से ही एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को मिलाते हैं और अनवरत बने रहते हैं। हस्तांतरण की इस प्रक्रिया में मूल कृतिकार का नाम विस्मृति में लुप्त हो जाता है। गायक को कवि के बारे में कोई जानकारी नहीं होती है और न उसे यही मालूम होता है कि वह गीत इतिहास की डगर में कैसे बढ़ता-बदलता गया अथवा वह विभिन्न सुर तानों में कैसे विभाजित होता गया। उसने तो उसे अपने पूर्वजों से सुना और उसके मन को भा गया और वह बहुधा उसे अपने मनोरंजन के लिए ही गाता है।

लोकगीत की विशेषता यही है कि उसके समारोह में स्थानीय समुदाय के लगभग सभी सदस्य न्यूनाधिक प्रत्यक्ष भाग लेते हैं। यद्यपि हर कोई उस गीत को स्वयं न भी गाए, परंतु वह गीत सभी को याद होता है और वे सभी जी भर कर उसका रसास्वादन करते हैं। उनकी प्रत्यक्ष सहभागिता आजकल नगरों में आयोजित संगीत या साहित्य के सम्मेलनों में एकत्रित निष्क्रिय श्रोताओं से नितांत भिन्न है।

कविता में कवि होता है और कविता का पाठक समुदाय। औपचारिक संगीत में संगीतकार गायक, वादक और श्रोता होते हैं। परंतु लोकगीत में केवल गायक ही होता है। वह अकेला गा सकता है या समूह में गा सकता है। उसके साथ वाद्य हो भी सकते हैं और नहीं भी हो सकते हैं।

यह विश्वास किया जाता है कि लोकगीत में लोक संवेदना और लय अभिन्न रूप से मिले रहते हैं। लोकगीतों के संग्रहकर्ता को इस तथ्य की अनुमति उस समय होती है जब लोक गायक अपने गायन को पूरी तरह दुहराने में असमर्थता प्रकट करता है। एक शैलबाला ने लोकगीत संग्रहकर्त्ता सर वाल्टर स्काट से यह कहा था कि वे गाने के लिए बने हैं; न कि पढ़ने के लिए।

वस्तुतः गीत की पंक्तियां और उसकी धुनें मिलकर किसी एकीकृत इकाई का निर्माण नहीं करते हैं और उनका संबंध सूत्र टूट भी सकता है। वही गीत देश के विभिन्न भागों में अथवा उसी अंचल में अलग-अलग धुनों में गाया जा सकता है। इसकी इस तथ्य से

और भी पुष्टि होती है कि लोकगायक बहुधा मूल धुन भूल जाता है और उस गीत को अपनी नई धुन में बैठा देता है। काल के साथ अथवा व्यक्ति के अनुसार धुनें बदलती रह सकती हैं। इस परिस्थिति में आधारभूत धुन का पता लगाना भी कठिन हो जाता है। एक ही गीत कृति में कतिपय धुनों का होना ही इस तथ्य का समर्थन करता है। हंगरी के संगीतकार बेला बार्टोक ज़ैसे विद्वानों के मतानुसार "लोकगीतों के विकास के कुछ चरणों में धुनों की सीमित संख्या रही होगी जो आगे चलकर धुन-परिवारों में विभक्त हो गयी होगी।" इसका अर्थ यह है कि लोक परंपरा में कृति विशेष के लिए विशिष्ट परिवेश नहीं है। हमें देश भर में कृतियों और धुनों के अनेकानेक प्रचलित रूप मिलते हैं। किसी कृति का एक धुन आनंद बोधक है और उसी कृति की दूसरी धुन विषाद की अनुभूति दे सकती है। गीत के भावनात्मक पक्ष और संगीत तत्व के बीच का संबंध प्रगाढ़ प्रतीत होता है। परंतु वह सदैव अटूट नहीं होता। लोक संस्कृतियों के सदस्य अपने उद्वेग या मनःस्थिति की अभिव्यक्ति में नगरों में प्रयुक्त संगीत पदों का भी उपयोग करते हैं।

लोक परंपरा में आवाज का बहुत अधिक उतार-चढ़ाव नहीं मिलता है। उनका स्वरूप संयमित होता है और उनकी अभिव्यक्ति-प्रविधि स्पष्ट नहीं हो पाती। स्वर-संगीत प्रशिक्षण की पृष्ठभूमि के बिना एक ही स्तर पर संगीत प्रस्तुत किया जाता है। स्वरों में लयात्मक संबंध तो हो सकते हैं परंतु उनमें स्वर-संगीत का अभाव हो सकता हैं। इसलिए स्वर संगीत (अनेक गौण स्वरों से समन्वितृ एक लयात्मक पंक्ति) या बहुस्वरता (अनेक स्वरमय, लगभग स्वतंत्र पंक्तियां, जिन्हें एक साथ गाया जाय) अपेक्षाकृत कम होती है। समस्वरता पूर्ण स्वर संगीत का उद्‌भव उस समय होता है जब गीत के साथ वाद्य भी हो। लोकगीतों में वाद्य यंत्रों का गौण स्थान होता है।

ओड़िसा तथा देश के कुछ अन्य भागों में भी मौखिक और वाद्य दोनों ही प्रकार के लोक संगीत प्रचलित हैं। कार्य गीत, खेल गीत, वृत्त गीत, हिंडोला गीत, कताई गीत, व्यंग्य गीत, उपवास और त्यौहारों के गीत मौखिक ही होते हैं। वीरगाथाएं गाने वाले भिक्षुक बहुधा दो-दो होते हैं। जब एक, एक पंक्ति गाता है दूसरा उसे दुहराता है। ढुडुकी, बांसुरी, इकतारा, डुंडुंगा, खंजरी इत्यादि के साथ ये लोग गाते हैं। भिक्षु, इकतारा बजाते हैं। संपेरा नागेश्वर बजाते हैं और पद्‌मतोला गाते हैं (कृष्ण के द्वारा कालिन्दी सरोवर से कमल तोड़ने से संबंधित गीत)। तालाब के किनारे पर भैसों के झुंड की देखरेख करने वाला, भारी वर्षा में जागते हुए रातें बिताता है और एक तार वाले वाद्ययत्र ढुडुकी के साथ गाना गाता है। यह उल्लेखनीय है कि गिटार, मैडोलिन, तंबूरा, हारमोनियम और सप्तस्वर लोक संगीत में संगीत और यति का प्रभाव लाने के लिए अभी हाल ही में प्रचलित हुए हैं। रेडियो कार्यक्रमों अथवा व्यावसायिक आयोजनों में लोकगीत इन नगरीय वाद्ययंत्रों के साथ गाये जाते हैं।

विवाह समारोह में मृदंग बजाने वाले मृदंग बजाते हुए नाचते हैं। दंड नाटक में भी मृदंग बजाते हैं। 'चैती घोड़ा', 'कर्मा' और 'दंड नाटक' में मृदंग-बजाने वाला नाचता भी है। 'नाग' और 'पाइक' मूक नृत्य हैं। धुमसा परवौजा नगाड़ा और ढोलकी जैसे मृदंग उनका साथ देते हैं। परंतु उनमें कोई गाने नहीं गाये जाते हैं। संबलपुर के 'हुमो', 'डलखाई', 'रसकेलि', गुंजीकटा, मैलाजार, जामुडाली और बांकी मुलाखी नृत्यों और कोरापट तथा बस्तर के चैतपूर्व नृत्यों के साथ गीत भी गाये जाते हैं। लोकगीतों में गाने और नृत्य की लय में बहुधा तालमेल होता है। फिलिप बेरी के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गेय संगीत और नृत्य संगीत के बीच कोई सुनिश्चित, विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। नृत्य संगीत और गीत पदों के बीच का संबंध जानना कोई आसान काम नहीं है। उद्योगीकरण के प्रभाव से उनके लुप्त होने के पहले ही इस विषय का गहन अध्ययन और शोध कार्य किया जाना चाहिए। फिल्में और गानों की रिकार्डिंग इस अध्ययन के लिए उपयोगी है और इससे अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा दिलचस्प तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं।

लोक संगीत को देशी संगीत भी कहा जाता है जो बहुधा मानक रूप में नहीं मिलता है और एक धुन होने पर भी एक अंचल से दूसरे अंचल में अनेक स्वर हो सकते हैं, विलंब, अवरोह इत्यादि में भिन्नता हो सकती है। धुन की तरह ही लोक-संगीत की संगति भी लोगों को स्वाभाविक रूप से ही आ जाती है और परिष्कार के बिना ही वे सीधे हृदय तक पहुंच जाते हैं। कई तरह के एक रस कामों के साथ लोक गीतों की लय का तालमेल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हो सकता है कि मशीनों की गुलामी से मानव को छुटकारा दिलाने की दृष्टि से लोक गीतों का कारखानों-कार्यशालाओं में प्रवेश हो जाये और उससे आधारभूत मानवीय गरिमा की रक्षा हो सके।

लोक नृत्य

ओड़िसा के परंपरागत नृत्य "ओडिसी" को अपने अनिंद्य सौंदर्य और सुषमा के कारण एक महत्वपूर्ण भारतीय शास्त्रीय नृत्य के रूप में मान्यता मिली है। ओड़िसा के लोक नृत्यों में 'छऊ' को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। "छऊ" नृत्य, उसकी तकनीक एवं जनप्रिय पक्ष का नीचे दिया गया ब्यौरा प्रमुख ओड़िया कवि सीताकांत महापात्र के एक लेख से उद्धृत है :

छऊ नृत्य

छऊ नृत्य के युद्ध मूलक होने के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसमें मूलभूत मुद्राएं एवं भाव, परंपरागत लड़ाई में योद्धाओं की मुद्रा से मिलते हैं। इसलिए इसके प्रारंभिक अनगढ़ रूप में उस बहुधा 'फारवी खण्ड खेल' (ढाल और तलवार

का खेल) या "सकमार नाच" (लड़ाई और बचाव का खेल) कहा जाता है। उसके संभावित मूल के विषय में शुष्क तर्क में पड़ना निरर्थक है क्योंकि उसके विषय में अभिलेख आदि या अन्य साक्ष्य नगण्य हैं। परंतु उसका मूल उद्‌गम सैनिक परंपरा में भी क्यों न हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया में उसमें लोकसंस्कृति तथा जनजातीय एवं धार्मिक आनुष्ठानिक परंपराओं का बड़ी मात्रा में समावेश हुआ है। मयूरभंज और सराइकेला के अधिकांश निवासी संथाल, मुंडा और उरांव हैं, जो काफी बड़े आदिवासी समाज हैं और जिनकी स्वायत्त सभ्यताएं भी उल्लेखनीय हैं।

आधारभूत तत्व

'छऊ' नृत्य की आधारभूत मुद्राएं, उसका सहयोगी संगीत एवं उसकी सौंदर्य चेतना बहुधा इन जन-जातियों के विभिन्न नृत्यों एवं गीतों से मिलते हैं। इसके साथ ही एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण अतिरिक्त स्रोत संभवतः शैवमत है जो इस क्षेत्र में बहुत समय तक प्रचलित रहा। चैत्र पर्व में भैरव देव, देवी और देवता की पूजा होती है। वस्तुतः भैरव इस नाच का अधिष्ठाता है। भोक्ता पंथ के आनुष्ठानिक तत्वों का इस नृत्य के विकास पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। भोक्ता पूरे दिन का उपवास करते हैं और शिव एवं शक्ति की आराधना करते हैं। उनके लिए यौगिक अनुशासन के आवश्यक तत्वों को समाविष्ट करते हुए कठोर व्यवहार संहिता निर्धारित की गयी है। वे चटख लाल या गेरुआ वस्त्र पहनते हैं और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। वे मुख्यतः चंपक तथा मल्लिका की फूलमाला पहनते हैं और बेंत लेकर चलते हैं। भोक्ता अपने सिर पर जात्रा घट और निशा घट रख कर चैत्र पर्व में नृत्य प्रांगण में आते हैं। नृत्य अत्यंत छोटा होता है और उसके साथ गाये जाने वाले गाने शिव और शक्ति की स्तुति रूप और श्रोताओं के लिए आशीर्वचन रूप होते हैं। वस्तुतः इस उत्सव के दौरान उसमें भाग लेने वाले पात्रों से नितांत भिन्न व्यक्तियों के रूप में परिवर्तित हो जाने की अपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिए यह विश्वास किया जाता है कि उस समय के लिए उनका गोत्र शिव हो जाता है। भोक्ता के आनुष्ठानिक निहितार्थों की विस्तृत विवेचना यहां संभव नहीं है। परंतु इतना इंगित करना पर्याप्त होगा कि छऊ के क्रमिक विकास के काल में इस नृत्य की आधारभूत मुद्राओं और वर्णनात्मक छंदों में जनजातीय एवं धार्मिक आनुष्ठानिक तत्वों का समावेश हुआ है और उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

छऊ की विषय वस्तु

विषय-वस्तु के संदर्भ में छऊ रामायण और महाभारत पर ही मुख्यतः आश्रित है। कृष्ण गाथाओं से अनेक कथानक लिये गये हैं। सात रथियों के साथ अभिमन्यु का युद्ध, महिषासुर

वध, शिव तांडव, किरातार्जुन संग्राम, जाम्बवान, गरुड़ वाहन जैसी पौराणिक मान्यताएं व घटनाएं ही अधिकांश कथानक हैं। वस्त्र हरण, कलंक भंजन, निशीथ मिलन, बंशी चोरी और तमुडिया कृष्ण जैसी कृष्ण गाथाओं में शृंगार का प्राधान्य है और स्थानीय लोकपरंपरा से उन्होंने बहुत कुछ लिया है। उनमें लोकपरंपरा के उत्कृष्टतम तत्वों और वैष्णव संप्रदाय के आधारभूत तत्वों के समन्वय का प्रयास है। 'सबर टोका', 'कालचक्र', 'सबर सबरुनी' जैसे जनजातीय कथानक भी उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः अधिकांश कृष्ण कथानकों की उद्दीपक अभिप्रेरणा होती है। उदाहरण के लिए 'निशा मिलन' में कृष्ण और राधा के मिलन का पर्व मनाया जाता है और राधा की कृष्ण और राधा के मिलन का पर्व मनाया जाता है और राधा की कृष्ण के लिए धीर प्रतीक्षा, गोपियों के द्वारा कृष्ण को एकांत कुटीर में मिलन के लिए सांकेतिक आग्रह और सौम्य मधुरता एवं रूमानी वेदना का सामान्य परिवेश उसे सर्वाधिक आकर्षक नृत्यों की कोटि में ला देते हैं। 'जमुडिया कृष्ण' और 'वंशी चोरी' में राधा और कृष्ण के बीच प्रेम लीला को उसी प्रकार मनाया जाता है। वंशी चोरी में कृष्ण तथा अन्य ग्वालों की बांसुरियां गोपियां चुरा लेती हैं। तब ग्वालबाल और कृष्ण राधा और गोपियों की टोकरियों को अपने सिरों पर रखे हुए बड़े धीर और विषादपूर्ण स्वरों में अनुनय विनय करते हैं। 'काल चक्र', 'माया साबरी' तथा 'सबर सबरुनी' में शृंगारात्मकता लोक-परंपरा तथा जनजातीय परंपरा आनंद और उल्लास तत्वों का शिखर रूप ले लेती हैं। उदाहरण के लिए 'काल चक्र' आठ स्त्रियां, सभी शिकारियों के वेश में और आठ पुरुष अपने हाथ में इकतारा लिये हुए अत्यंत संशिलष्ट पद क्रम के साथ बड़ी तेजी से वृत्ताकार रूप में नृत्य करते हैं। "सबर टोका" जैसे एकल नृत्य में शिकार की टोह में शांत बैठ उसका शिकार करने, शिकारियों के विषाद और आनंद की अंतिम पाद-टीप इत्यादि सभी तत्व बड़े कौशल से रेखांकित किये जाते हैं। इस प्रकार 'छऊ' के कथानक मुख्यतः पुराणों से लिये जाते हैं और उसमें प्रचंड वेग व ऊर्जा एवं तीव्र पद-संचालन के साथ साथ स्निग्ध लालित्य एवं प्रगीत तत्व का समन्वय होता है, जिन्हें दृश्य काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। प्रतिवर्ष नये कार्यक्रम भी उनमें समायोजित किये जाते हैं परंतु उनकी संख्या न तो बहुत अधिक होती हैं और न वे अधिक महत्व के ही होते हैं। यह संभव है कि समय के साथ नृत्य के परिवृत्त में अधिकाधिक सामाजिक और धर्म-निरपेक्ष कथानकों का समावेश होता जायेगा (सीताकान्त महापात्र कृत "मयूरभंज छऊ के कुछ पहलू")।

नाग नृत्य

"नाग" भी हमें उस देदीप्यमान भूत की याद दिलाता है जब ओड़िसा का गंगा के तट से कावेरी तक विस्तृत विशाल साम्राज्य था और जब ओड़िया एक वीर जाति थी जो

मुसलमानी प्रवेश के प्रतिरोध में सदियों तक लड़ती रही थी। नर्तक का वीर रूप होता है और वह एक विशेष पोशाक पहनता है। युद्ध के नगाड़ों के घोष के साथ वह शस्त्रों का भारी बोझ लिये नाचता है। उसकी दस प्रमुख आवश्यकताएं हैं : (1) गेंडे की खाल की एक ढाल (2) एक तलवार (3) एक खुकरी (4) एक बन्दूक (5) बिगुल की तरह से उपयोग में आने वाला एक सींग (6) लोहे की एक ढाल (7) एक प्रसाधन संदूकची (8) उसके धनुष में एक शेर की आकृति लगी होती है और भयावह दिखाई देता हैं। (9) उसके एक लम्बा मुकुट होता है जिसके सिरे पर एक बड़ा-सा फूल होता है और जो चमकते हुए मोर पंखों का बना होता है, तथा (10) उसके हाथों में गुरियों की माला और एक दर्पण होता है। अंगुलियों में सोने की अंगूठियां, वक्ष और कटि प्रदेश पर शेर की खाल, बाणों पर ध्वज, हाथों पर बंधे हुए रूमाल, जंघा पर बंधी हुई एक छोटी सी घंटी—ये नर्तक के परिधान होते हैं। ग्रीष्म ऋतु की तपतपाती धूप से बचने के लिए वह अपने पूरे शरीर पर रामरज (पीले रंग की एक भस्म) लगाता है। वह अपने मस्तक को सिंदूर से सजाता है। वह नकली दाढ़ी और मूछें लगाता है। इस प्रकार वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह बड़ा भयानक लगता है। इस नृत्य के साथ कोई गाना नहीं गाया जाता है।

(जात्रा नृसिंह (विष्णु का नर और सिंह समन्वित अवतार) के जन्म दिवस पर आयोजित होती है। परंपरा के अनुसार यह पर्व पौराणिक नागार्जुन का अपने पिता अर्जुन के विरुद्ध विजय उत्सव है। परंतु हमारी दृष्टि में वह पुराने "पाईक" नृत्य के अवशेष के सिवाय कुछ और नहीं हैं, जो युगों से केवल योद्धा वर्गों में ही नहीं वरन् उन सभी वर्गों में जिनमें से सेना के लिए युवकों की भर्ती होती रही है, सुरक्षित रहता आया है।)

घुमरा नृत्य

घुमरा, घड़े के बराबर का एक मृदंग होता है जिससे बड़ी गहरी संगीत ध्वनि निकलती है। वादक घुमरा को अपने गले के चारों ओर एक रस्सी से बांध कर लटकाता है और उसे बजाता है और विवाह जैसे सामाजिक अवसरों या किसी भी धार्मिक उत्सव पर उसकी ताल पर नाचता है। कभी-कभी दो दलों के बीच प्रतिस्पर्धा भी होती है। प्रत्येक दल में बीस-पच्चीस आदमी होते हैं। नृत्य रात भर चलता रहता है। घुमरा सअर और अन्य आदिवासियों तथा हरिजनों में प्रचलित है प्रणय घुमरा गीतों की मुख्य विषय वस्तु है। अन्य लोक-नृत्यों की भांति, गीत के प्रारंभ में देवी देवताओं का यशोगान किया जाता है।

हुमों, बऊली, बांकी, मुलरी, जमुदली, माथालजार, गंजीकटा, रसकेलि और पुची जैसे लोक नृत्यों के कुछ अन्य रूप ओड़िसा तथा ओड़िसा के मूल निवासियों में प्रचलित हैं।

लोक नाट्य

लोक नाट्य में अभिनय कम और नृत्य अधिक, वार्तालाप कम और गीत अधिक होते हैं। विदूषक नाचता है राजमहिषी नाचती है, उनके अनुचर नाचते हैं, मृदंग वादक नाचता है। दास काठिया का प्रमुख गायक नाचता है। इस नाच में कुछ अपनी विशेषताएं हैं। वह एकरस होता है। इसमें अत्यधिक गायन थका देने वाला होता है।

निम्नांकित लोक नाट्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं–जात्रा, पाल, पटुआ, दास काठिआ, मुगल तमाशा, कर्मा, डंडानाट और चैतीघोड़ा नाट।

जात्रा या नृत्य नाटिका अभी भी दूर-दूर के हजारों दर्शकों को आकर्षित करती है। इसके लिए विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है। न किसी को निमंत्रित किया जाता है और न किसी को टिकिट खरीदना पड़ता है। मौखिक सूचना से ही इतने लोग आकर्षित हो जाते हैं कि बहुत बड़े सभागार में भी उनके लिए पर्याप्त स्थान नहीं हो सकता। इसलिए जात्रा का आयोजन खुले स्थान पर ही होता है। दर्शकों के बीचों बीच एक चौकोर मंच का निर्माण किया जाता है, जिसके पास ही वाद्य वृंद के बैठने के लिए स्थान होता है।

दल के विशेषज्ञ कलाकारों द्वारा हारमोनियम, क्लेरिने, बिगुल, मृदंग, झांझ, दुली, तबला, ढोलकी इत्यादि पर एक-एक कर प्रस्तुति की जाती है और उसके बाद लड़कियों के वेश में गाते और नाचते लड़कों के दल द्वारा नृत्य नाटिका प्रारंभ की जाती है। कथानक का राजा सामान्यतः परंपरागत वेश में ही प्रवेश करता है और कथानक अधिकतर ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होते हैं। स्त्री वेश में पुरुष अभिनेता कृत्रिम दिखाई देते हैं। छुआरी या उगरा (राजा का संदेश वाहक) और विदूषक जात्रा में सबसे अधिक दिलचस्प चरित्र होते हैं। सामान्यतः नगरों से दूर ग्रामीण अंचलों में जात्रा अभी भी मध्ययुगीन प्रस्तुति है और उसमें देवी देवता, ऋषि मुनि, राजा और सभासद का चरित्र-चित्रण होता है, और वास्तविक समकालीन जीवन और उसकी समस्याओं से उसका कोई सरोकार नहीं होता। नगरों के निकट जात्रादल अब सिनेमा और थियेटर के आदर्श के अनुरूप कुछ सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। वे नाटकों में बहुत अधिक गानों, उसके संगीत, हाव-भाव तथा दकियानूसी वेशभूषा से बचने का प्रयास करते हैं। वे अपने पात्र सामाजिक उपन्यासों से चुनते हैं और संवाद में सरल गद्य का प्रयोग करते हैं। परंतु सुधार के जोश में वे बहुधा उसके प्राचीन व्यक्तित्व को खो देते हैं।

पाला

पाला प्राचीन ओड़िया साहित्य को लोकप्रिय बनाने वाली एक लोकप्रिय सामाजिक संस्था हैं। इसमें चार पांच व्यक्ति होते हैं। नगड़ची, मृदंग बजाता है। दूसरे व्यक्ति चिमटा बजाते हैं, नाचते हैं और मुख्य "गायक" को गाने में सहयोग देते हैं और श्रोताओं को उसका

अर्थ समझाते हैं। जब पाल प्रतियोगिता में दो बराबरी के तगड़े दल एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करते हैं तो ज्ञान की गहराई, तीक्ष्ण बुद्धि, वक्तृता और स्मरण शक्ति, सभी की कड़ी घसौटी पर होती है। पूरे माह भर प्रति रात इस प्रतिस्पर्धा को चलाते रहने के लिए आवश्यक असामान्य ऊर्जा पुंज के लिए गायक निश्चय ही निर्बाध प्रशंसा के पात्र होते हैं। मृदंग वादक अपनी अगुंलियों का कौशल दिखाता है और श्रोताओं के मनोविनोद के लिए हास्य कथाएं भी सुनाता है। गायक और किसी एक अनुचर के बीच संवाद और गाने में शब्द प्रयोग के खेल लंबे भाषणों की एकरसता को तोड़ने में सहायक होते हैं। पाला मूल रूप से हिंदू-मुसलमान एकता के प्रयास का फल है।

पटुआ

पटुआ ग्रामीण कवियों द्वारा रचित गीतों को गाते हैं। ये कवि अपनी विषय-वस्तु रामायण, महाभारत, पुराण आदि से लेते हैं पर अभी हाल में उपन्या ों से भी उठाने लगे हैं। कुछ गाने भाषा और भाव दोनों में ही सरल होते हैं परंतु कुछ ग ने भाव में बड़े गहरे होते हैं पर वह भाव शब्दाडंबर में छुपा रहता है।

पटुआ के चार वर्ग होते हैं। यद्यपि वे सभी उसी देव के ि न्न भिन्न नामों से पूजा करते हैं। उनका अंतर धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में है न कि पूजा ी वस्तुओं और उनके उद्देश्यों में।

"घट पटुआ" विभिन्न ग्रामों में नाचता है, गाता है और शारीरिक कलाबाजी दिखाता है। ग्रामवासी उसे देवी की पूजा के लिए नकद या वस्तु रूप में दान दे े हैं। सबसे ऊंचे आराधक धधकते हुए अंगारे पर चलने वाले दल का नेतृत्व करते हैं।

दाशकठिया

दाशकठिया जो केवल गंजाम की प्रसिद्ध प्रस्तुति था अब ओड़िसा के सभी जिलों में प्रचलित हो गया है। दाश का अर्थ है आराधक और काठ का अर्थ है आराध्यदेव की प्रार्थना के साथ में ताल से बजाये जाने वाले दो लकड़ी के टुकड़े।

इस दल में दो व्यक्ति होते हैं। एक प्रमुख गायक होता है और दूसरा 'पालिया' होता है जो उसे गाने और अभिनय में सभी प्रकार की सहायता करता है। ये दो व्यक्ति पूरा नाटक ही प्रस्तुत करते हैं। सभी अभिनेताओं का भाग ये ही दोनों अदा करते हैं। समय-समय पर वे अपना स्वर बदलते रहते हैं। एकरसता को तोड़ने के लिए वे मनोरंजन कहानियां भी बीच-बीच में जोड़ते जाते हैं।

मुगल तमाशा

तमाशा नृत्य नाटिका का ही एक रूप है जो हमें ओड़िसा में पुराने मुगल प्रशासन की याद दिलाता है और उसकी संस्कृति का एक चिह्न है। गाने फारसी और ओड़िया दोनों ही भाषाओं में होते हैं। संवाद अत्यंत मनोरंजक होते हैं। मुगल तमाशा बालासोर जिले के भद्रक अंचल की विशेषता है। ओड़िसा के किसी भी अन्य अंचल में यह नहीं खेला जाता है।

कर्मा

कर्मा प्रख्यात वर्षाकालीन उत्सव नृत्य है। भाद्र माह के शुक्लपक्ष की एकादशी से आश्विन माह में कुछ दिनों तक चलता रहता है। संबलपुर और फुलबानी जिलों के अधिकांश ओड़िया गांवों में यह उत्सव मनाया जाता है।

इस उत्सव की पृष्ठभूमि में कहानी कुछ इस प्रकार है :– एक धनवान व्यापारी के छः पुत्र थे। वे अपने सबसे छोटे भाई को घर पर छोड़कर व्यापार के लिए एक जहाज में बैठकर समुद्र यात्रा के लिए निकल पड़े। जब वे लौटे तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसकी पत्नियां कर्मा उत्सव में नाच रही हैं और उसका सबसे छोटा भाई नगाड़ा बजा रहा है। क्रोध के आवेश में उन्होंने अपनी पत्नियों को खदेड़ दिया। इस पर कर्मा (भाग्य का देवता) क्रोधित हो गया। उनका सारा धन नष्ट हो गया।

उन्होंने अपनी पत्नियों के साथ धन लक्ष्मी को भी अपने घर से खदेड़ देने की अपनी मूर्खता के लिए घोर पश्चाताप किया। अपनी पत्नियों की राय के अनुसार वे भाग्य के देवता की खोज करने निकल पड़े। उन्हें रास्ते में एक ग्वाला मिला। उसने उनसे देवता मिलने पर उससे यह पूछने के लिए प्रार्थना की कि उसकी गायों की संख्या इतनी तेजी से क्यों कम होती जा रही है। कुछ समय के बाद उन्होंने एक बड़ा विचित्र आदमी देखा जो अपने सिर पर मिट्टी के घड़े का एक कल्ला रखे हुए था जिसमें आग जल रही थी, और एक दूसरा आदमी अपने कंधे पर ढेंकला लिये जा रहा था। आगे दूसरा आदमी उन्हें ऐसा मिला जो ठंड के मारे ठिठुरा जा रहा था। उन्हें देवता से इन सभी व्यक्तियों के कष्टों के कारण और उनसे उबरने के निदान भी मालूम हुए। आवश्यक पूजा-अर्चना के बाद देवता उन पर दयावान हो गया और लौटने पर उन्होंने पाया कि उनका घर सोने और जवाहरात से भरा हुआ है।

कर्मा नर्तकों एवं गायकों के व्यावसायिक दल होते हैं। वे पौराणिक घटनाओं अथवा लोक कथाओं की प्रस्तुति करते हैं। कर्मा में युवकों और युवतियों के दलों के बीच प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रेम गीत गाए जाते हैं।

कठपुतली के खेल

यह लोककला का प्राचीनतम रूप है। कलाकार के हाथों में निर्जीव कठपुतलियों का कौशलपूर्ण संचालन दर्शकों के ध्यान को बांध लेता हैं। देहधारी अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों की तरह ये कठपुतलियां भी जीवंत प्रतीत होती हैं।

कठपुतली : मंच को तैयार करने में व्यय नगण्य होता है। सही अर्थों में यहां पट की आवश्यकता नहीं होती। परंतु खेल की युक्तियों और गोपनीय तथ्यों को चुराने के लिए केवल एक पर्दा ऊपर से टांग दिया जाता है और एक दूसरा पर्दा धरती के सहारे पर उठा हुआ होता है। इन दो पर्दों के बीच कलाकार हस्तकौशल से प्रस्तुति करता है। उनके बीच की विभाजक रेखा में से वह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को मंच पर उतारता है। कठपुतलियां लकड़ी की बनी होती हैं। उसे गांव के बढ़ई गढ़ते हैं और रंगते हैं। ओड़िसा में कठपुतली बनाना सदियों से पारिवारिक कला के रूप में विकसित हुआ है। कटक इसके लिए अति प्रसिद्ध है। कठपुतलियों को एक डलिया में निर्वस्त्र रखा जाता है परंतु उन्हें खेल में उतारने के पहले बड़ी सुंदरतापूर्वक वस्त्र पहनाये जाते हैं।

ओड़िसा के गांवों में कठपुतलियों का खेल दिखाने वाले श्यामपटों, इत्यादि से मंच का निर्माण करते हैं। वह नाट्य मंच के बराबर चौड़ा नहीं होता है क्योंकि कठपुतलियां तीन या चार फीट से अधिक ऊंची नहीं होती हैं, मंच की तीन दिशाओं में आठ खंभे खड़े किये जाते हैं। इन खंभों पर कठपुतलियां, तेल लगाकर चिकनाये गये एक रेशमी धागे से, लटकती रहती हैं। दूर से न रेशमी धागा दिखाई देता है और न धागा पकड़ने वाला व्यक्ति ही। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि मानो बिना किसी व्यक्ति की सहायता के कठपुतलियां स्वयमेव प्राकृतिक ढंग से नाच रही हैं।

कठपुतली का खेल प्रस्तुत कराने के लिए केवल चार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है—सूत्रधार, दो गायक और एक वादक। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि ओड़िसा में अन्य खेलों से भिन्न कठपुतली के खेल में एक परिवार के सदस्य भी भाग लेते हैं। वे निर्जीव कठपुतलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उस रूप में उनके बदले वार्तालाप करते हैं और गाते हैं।

ओड़िसा में अभी एक कठपुतली मंच के लिए कोई भी विशेष नाटक नहीं लिखा गया है। इसलिए कठपुतली कलाकार नृत्य नाटिकाओं (लीला, स्वांग या प्रहसन) का उपयोग ही करते हैं परंतु इन नाटिकाओं में आवश्यक परिवर्तन कर लिये जाते हैं जिससे कि वे कठपुतली मंच के लिए उपयुक्त हो सकें। प्राचीन और समय के अनुरूप लोकप्रिय गानों और चित्ताकर्षक संवादों को भी जोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार पुराने और घिसे-पिटे हिस्सों को अलहदा भी कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में पुराने जमाने के खेलों की मूल भावना धीरे धीरे समाप्त हो जाती है और उसका रूप कुछ विचित्र सा हो जाता है। जिसमें

कई लोक-कवियों के गानों का जमघट हो जाता है और कई लोक-नाटकों के संवादों का समावेश हो जाता है।

कठपुतली के खेल के संवाद अत्यंत दिलचस्प होते हैं। प्रारंभ में ढोलक बजाने वाला मंच के सामने बैठकर ढोलक बजाता है। यह लोगों को खेल देखने के लिए बुलाने का आमंत्रण है। जब लोग काफी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं तो खेल शुरू होता है। स्त्री रानी या अनुचर का संवाद कहती है। वह पर्दे के पास बैठती है। परंतु पुरुष गायक की बात अलग है, वह मंच के बाहर बैठता है। वह राजा, मंत्री, पुलिस, अधिकारी या संदेशवाहक के लिए संवाद कहता है। उनमें से प्रत्येक हर रात को बीस से पच्चीस गाने गाता है। दो व्यक्ति पूरे खेल को याद कर लेते हैं।

पारिवारिक कला के रूप में इसके संरक्षण के अनेक लाभ भी हैं। वह आत्मनिर्भर एवं आत्मसमर्पित कला है और संबंधित परिवार के मुखिया के कठोर नियंत्रण और प्रबंध में यह रहती है। इस प्रकार खेल का यह रूप परंपरागत एवं व्यावसायिक कला के रूप में पीढ़ियों तक विकसित होता रहता है। इस कला के विकास के लिए धनी संरक्षक की आवश्यकता नहीं है। ग्रामीण समाज का समर्थन ही उसके फूलने फलने में सहायक रहा है।

परिशिष्ट

मौखिक साहित्य से चुनी गई कुछ कविताएं

दोळि गीत

आसिचि सधीरे जगते दोळ पुनिअ जात
जात देखिजयान्ति हरषे धरि मो प्रिया हात।
मन मो हेउचिं उछन्न फगु बेश हुअन्ति
प्रियार सुंदर अंगरे अबिर मुं लेपंति।
खुआइ दिअंति शाकर किणि दोळ, बेदी रे
शुझाइ दिअंता सजनी ताहा प्रेम बिधिरे।
खिलि पान किणि आणांति केड़े हरष मने
पाटिरे भुन्जाइ दिअंति भेटि केळि सदने।
अधा चोबा पान निअंति तार पाटिरु काढि
मुख चांद चाहिं नुहंता निदे नयन भारि।
निद माडिले मुं शुअंति प्रिया कोमळ कोळे
सकाळु लभंति चेतना काळ पिक चहळे।

* 'य' का उच्चारण 'ज' जैसा होगा।

दोळि गीत

1. दिअंक पोखरी कई
   कई फूल परि बोउ बढ़ाइथिलु लो
   पर घरे देबा पाईं
2. कदली गछर उधि
   पिला करि वोउ पठाइ देलुलो
   किए शिखाइब बुद्धि
3. तेंगडा उपरे ढाउ
   आउ चारिदिन रहंति बोउलो
   भाउज कहुचि जाउ
4. घरर उपरे घर
   घरे थिलायाके नना तुमर है
   एरुंडि डेईले पर।

होली गीत : रज-पर्व

आ गया आहिस्ते से जग में – होली-पूनो-जात्रा,
जात्रा देखने जाऊं मैं खुशी से, हाथ में लेकर हाथ प्रिय का
मन मेरा चंचल है, फाग वेश होने को,
प्रिया के सुंदर अंगों पर गुलाल लगाने को,
खिला दूं उसे मिठाई, झूले पर,
चुका दे वह उसे प्रेम रीति से,
जी चाहता है चूम लूं गुलाबी गालों को
छिपा ले वह लाज से अपना मुख चिन्त साड़ी के घूंघट में
खरीद लूं पान की गिलौरी – खुशी-खुशी से,
खिला दूं उसे मुंह में जब मिलें केलि-सदन में।
अधखाया पान निकाल लूं मुंह से,
चाहता हूं खेलूं ताश उसके संग चांदनी रात में,
परवाह न करूं मैं जग के कष्टों की, प्रिया के साथ में।
चांद सा उसका चेहरा निहारकर, पलकें बोझिल न हों नींद से।
नींद आती तो सोता प्रिया की कोमल गोद में।
सुबह जागता मैं विहग के रव से।

झूला गीत

1. देव- पोखर की कुई
कुई फूल की नाई, बढ़ाई थी मुझे मां,
क्या करने को परायी?
2. नन्हा कदली दरख्त,
भेज दिया मां अल्हड़ किशोरी को,
कौन देगा समझ?
3. मेड़ की माटी भगुआ,
और चार दिन रहती मां,
पर भाभी कहती है अब जा।
4. घर के ऊपर दूसरा घर
ओ भइया, मैं थी तुम्हारी, घर में रहते तक,
अब हो गई परायी द्वार देहरी पार कर।

5. बाडिरे चेका पथर
बाबु घर झिअ गेल बसर हे
आणिचि छाड़ पतर
6. दोळि करे केंकट
दोळिकु देवि मुं सुना मुकुट
दोळि न कर तु केंकट
7. दोळि करे साईं साईं
दोळिरे दोळुछु भउणी भाइ
माआ डाकुचि खाइबा पाईं
8. कबाट कें कहिला
सउतुणी पुअ माआ बोइला
से लाज मोते लागिला
9. सजना गछर छुई
नियम करुचि तो देह छुई
धन तोह बिना आन नाईं
10. खजुरी झुमुक छुमा
माआ घरे झिअ कानर सुना
शाशू घरे पडे घणा
11. जह्न उदे छन छन
उदिथारे जह्न खाइबु पान
तो मुख दिशे दर्पण
12. कूअरे पडिला खलि
दूर राइजरे कि बंधु कलि
बाट चालि चालि मलि
13. आखु बाड़ि खड़ खड़
दुहुड़ा लगाइ आसुचि बर
कनिआकु सज कर।
14. शिळरे छेचिलि अदा
बड़ घर बोलि देइच ददा
देहरे शुखिला ओदा

5. बाड़ी की गोल पथरी,
बड़े घर की है बेटी दुलारी,
अपने साथ तलाक है लाई।

6. झूला बोले चरमर,
झूले को दूंगी मैं सोने का मुकुट,
झूला तू न कर चरमर।

7. झूला बोले सांय सांय,
झूला झूल रहे हैं, बहन भाई,
खाने को मां बुला रही।

8. किवाड़ कहे कें कें,
सौतेला बेटा कहे मां,
गड़ जाऊं लाज की मारी मैं।

9. सेंजना की फल्ली,
खाई है कसम, छू तेरी देह,
प्रिय, तेरे सिवा कोई और नहीं।

10. खजूर गुच्छों की राशि,
मायके में बेटी कान की बाली,
ससुराल में वह तेल की घानी।

11. है उदीयमान चांद
उग रे चंदा खाये पान
तेरा मुंह है दर्पण समान।

12. कुंए में पत्तल गिरा,
दूर दराज में रिश्ता क्या बांधा
बाट चल चल कर मैं मर गया।

13. गन्ने की खेत में सरसर आवाज,
ज्योति पुंज लिये आये दूल्हा महाराज,
दुल्हन का करो श्रृंगार।

14. सिल पर कुचले अदरक, ओ भाई,
बड़ा घर जान, कर दी शादी,
देह में सूखे गीली साड़ी।

15. गुड़िआ घर खणति
बड़ घर बोलि दइछ बपा
चितउ पिठा गणति

16. बंध हुड़ा भुसुकिला
बापांकु देखिले कहि देब ति
झिअ देइ पासोरिला
पासोरि नाईलो झिअ
बुणा-पणत रे बांधिलि मुढ़ि
मो दुःख जाणांति दिअं।

गाथा गीतिका

शशुरे मोते वड़ पारंति देखि
नाआं जे देइछंति ए हतलक्ष्मी।।
कि घर झिअ बोली मोते कहंति
एते काळके जाति जाणि नाहांति।।
शाशुंक स्नेह भाव कहिबि केते
काल सर्प बोलि लो डाकंति मते।।
नखरे गाल मांस पिंजंति मोर
दांत रगेडा देखि माड़इ डर।।
माड़लों खाइ मुहिं चाहें निरेखि
निआं मुंडा परि लो शाशुंक आखि।।
राति के तिनि थर दउड़ि नेइ
थोइ आसंति मुंड उपरे जाइ।।
निद भाजिला बेळे चाहें निरेखि
निआं मुंडा परि लो शाशुंक आखि।।
सेठारू उठि अन्य थानकु जाए
नळा मुंहरे कानि पकाइ शुए।।
आउ जेतेक लोक से घरे छंति
जण जणंक स्नेह खंडिए पोथी।
सबु बेळकु मोते करंति पर
अईठां पोछा बेले खाइछि बर।।

विवाह समारोह में मृदंग बजाने वाले मृदंग बजाते हुए नाचते हैं। दंड नाटक में भी मृदंग बजाते हैं। 'चैती घोड़ा', 'कर्मा' और 'दंड नाटक' में मृदंग बजाने वाला नाचता भी है। 'नाग' और 'पाइक' मूक नृत्य हैं। धुमसा परवौजा नगाड़ा और ढोलकी जैसे मृदंग उनका साथ देते हैं। परंतु उनमें कोई गाने नहीं गाये जाते हैं। संबलपुर के 'हुमो', 'डलखाई', 'रसकेलि', गुंजीकटा, मैलाजार, जामुडाली और बांकी मुलाखी नृत्यों और कोरापट तथा बस्तर के चैतपूर्व नृत्यों के साथ गीत भी गाये जाते हैं। लोकगीतों में गाने और नृत्य की लय में बहुधा तालमेल होता है। फिलिप बेरी के शब्दों में यह कहा जा सकता है कि गेय संगीत और नृत्य संगीत के बीच कोई सुनिश्चित, विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती है। नृत्य संगीत और गीत पदों के बीच का संबंध जानना कोई आसान काम नहीं है। उद्योगीकरण के प्रभाव से उनके लुप्त होने के पहले ही इस विषय का गहन अध्ययन और शोध कार्य किया जाना चाहिए। फिल्में और गानों की रिकार्डिंग इस अध्ययन के लिए उपयोगी है और इससे अत्यंत महत्त्वपूर्ण तथा दिलचस्प तथ्य प्रकाश में आ सकते हैं।

लोक संगीत को देशी संगीत भी कहा जाता है जो बहुधा मानक रूप में नहीं मिलता है और एक धुन होने पर भी एक अंचल से दूसरे अंचल में अनेक स्वर हो सकते हैं, विलंब, अवरोह इत्यादि में भिन्नता हो सकती है। धुन की तरह ही लोक-संगीत की संगति भी लोगों को स्वाभाविक रूप से ही आ जाती है और परिष्कार के बिना ही वे सीधे हृदय तक पहुंच जाते हैं। कई तरह के एक रस कामों के साथ लोक गीतों की लय का तालमेल विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हो सकता है कि मशीनों की गुलामी से मानव को छुटकारा दिलाने की दृष्टि से लोक गीतों का कारखानों-कार्यशालाओं में प्रवेश हो जाये और उससे आधारभूत मानवीय गरिमा की रक्षा हो सके।

लोक नृत्य

ओड़िसा के परंपरागत नृत्य "ओडिसी" को अपने अनिंद्य सौंदर्य और सुषमा के कारण एक महत्वपूर्ण भारतीय शास्त्रीय नृत्य के रूप में मान्यता मिली है। ओड़िसा के लोक नृत्यों में 'छऊ' को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति मिली है। "छऊ" नृत्य, उसकी तकनीक एवं जनप्रिय पक्ष का नीचे दिया गया ब्यौरा प्रमुख ओड़िया कवि सीताकांत महापात्र के एक लेख से उद्धृत है :

छऊ नृत्य

छऊ नृत्य के युद्ध मूलक होने के बारे में बहुत कुछ कहा गया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि उसमें मूलभूत मुद्राएं एवं भाव, परंपरागत लड़ाई में योद्धाओं की मुद्रा से मिलते हैं। इसलिए इसके प्रारंभिक अनगढ़ रूप में उस बहुधा 'फारवी खण्ड खेल' (ढाल और तलवार

का खेल) या "सकमार नाच" (लड़ाई और बचाव का खेल) कहा जाता है। उसके संभावित मूल के विषय में शुष्क तर्क में पड़ना निरर्थक है क्योंकि उसके विषय में अभिलेख आदि या अन्य साक्ष्य नगण्य हैं। परंतु उसका मूल उद्गम सैनिक परंपरा में भी क्यों न हो, इसमें कोई संदेह नहीं कि उसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया में उसमें लोकसंस्कृति तथा जनजातीय एवं धार्मिक आनुष्ठानिक परंपराओं का बड़ी मात्रा में समावेश हुआ है। मयूरभंज और सराइकेला के अधिकांश निवासी संथाल, मुंडा और उरांव हैं, जो काफी बड़े आदिवासी समाज हैं और जिनकी स्वायत्त सभ्यताएं भी उल्लेखनीय हैं।

आधारभूत तत्व

'छऊ' नृत्य की आधारभूत मुद्राएं, उसका सहयोगी संगीत एवं उसकी सौंदर्य चेतना बहुधा इन जन-जातियों के विभिन्न नृत्यों एवं गीतों से मिलते हैं। इसके साथ ही एक अन्य अत्यंत महत्वपूर्ण अतिरिक्त स्रोत संभवतः शैवमत है जो इस क्षेत्र में बहुत समय तक प्रचलित रहा। चैत्र पर्व में भैरव देव, देवी और देवता की पूजा होती है। वस्तुतः भैरव इस नाच का अधिष्ठाता है। भोक्ता पंथ के आनुष्ठानिक तत्वों का इस नृत्य के विकास पर बड़ा गहरा प्रभाव पड़ा है। भोक्ता पूरे दिन का उपवास करते हैं और शिव एवं शक्ति की आराधना करते हैं। उनके लिए यौगिक अनुशासन के आवश्यक तत्वों को समाविष्ट करते हुए कठोर व्यवहार संहिता निर्धारित की गयी है। वे चटख लाल या गेरुआ वस्त्र पहनते हैं और यज्ञोपवीत धारण करते हैं। वे मुख्यतः चंपक तथा मल्लिका की फूलमाला पहनते हैं और बेंत लेकर चलते हैं। भोक्ता अपने सिर पर जात्रा घट और निशा घट रख कर चैत्र पर्व में नृत्य प्रांगण में आते हैं। नृत्य अत्यंत छोटा होता है और उसके साथ गाये जाने वाले गाने शिव और शक्ति की स्तुति रूप और श्रोताओं के लिए आशीर्वचन रूप होते हैं। वस्तुतः इस उत्सव के दौरान उसमें भाग लेने वाले पात्रों से नितांत भिन्न व्यक्तियों के रूप में परिवर्तित हो जाने की अपेक्षा की जाती है। उदाहरण के लिए यह विश्वास किया जाता है कि उस समय के लिए उनका गोत्र शिव हो जाता है। भोक्ता के आनुष्ठानिक निहितार्थों की विस्तृत विवेचना यहां संभव नहीं है। परंतु इतना इंगित करना पर्याप्त होगा कि छऊ के क्रमिक विकास के काल में इस नृत्य की आधारभूत मुद्राओं और वर्णनात्मक छंदों में जनजातीय एवं धार्मिक आनुष्ठानिक तत्वों का समावेश हुआ है और उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता है।

छऊ की विषय वस्तु

विषय-वस्तु के संदर्भ में छऊ रामायण और महाभारत पर ही मुख्यतः आश्रित है। कृष्ण गाथाओं से अनेक कथानक लिये गये हैं। सात रथियों के साथ अभिमन्यु का युद्ध, महिषासुर

वध, शिव तांडव, किरातार्जुन संग्राम, जाम्बवान, गरुड़ वाहन जैसी पौराणिक मान्यताएं व घटनाएं ही अधिकांश कथानक हैं। वस्त्र हरण, कलंक भंजन, निशीथ मिलन, बंशी चोरी और तमुडिया कृष्ण जैसी कृष्ण गाथाओं में शृंगार का प्राधान्य है और स्थानीय लोकपरंपरा से उन्होंने बहुत कुछ लिया है। उनमें लोकपरंपरा के उत्कृष्टतम तत्वों और वैष्णव संप्रदाय के आधारभूत तत्वों के समन्वय का प्रयास है। 'सबर टोका', 'कालचक्र', 'सबर सबरुनी' जैसे जनजातीय कथानक भी उल्लेखनीय हैं। वस्तुतः अधिकांश कृष्ण कथानकों की उद्दीपक अभिप्रेरणा होती है। उदाहरण के लिए 'निशा मिलन' में कृष्ण और राधा के मिलन का पर्व मनाया जाता है और राधा की कृष्ण और राधा के मिलन का पर्व मनाया जाता है और राधा की कृष्ण के लिए धीर प्रतीक्षा, गोपियों के द्वारा कृष्ण को एकांत कुटीर में मिलन के लिए सांकेतिक आग्रह और सौम्य मधुरता एवं रूमानी वेदना का सामान्य परिवेश उसे सर्वाधिक आकर्षक नृत्यों की कोटि में ला देते हैं। 'जमुडिया कृष्ण' और 'वंशी चोरी' में राधा और कृष्ण के बीच प्रेम लीला को उसी प्रकार मनाया जाता है। वंशी चोरी में कृष्ण तथा अन्य ग्वालों की बांसुरियां गोपियां चुरा लेती हैं। तब ग्वालबाल और कृष्ण राधा और गोपियों की टोकरियों को अपने सिरों पर रखे हुए बड़े धीर और विषादपूर्ण स्वरों में अनुनय विनय करते हैं। 'काल चक्र', 'माया साबरी' तथा 'सबर सबरुनी' में शृंगारात्मकता लोक-परंपरा तथा जनजातीय परंपरा आनंद और उल्लास तत्वों का शिखर रूप ले लेती हैं। उदाहरण के लिए 'काल चक्र' आठ स्त्रियां, सभी शिकारियों के वेश में और आठ पुरुष अपने हाथ में इकतारा लिये हुए अत्यंत संशिलष्ट पद क्रम के साथ बड़ी तेजी से वृत्ताकार रूप में नृत्य करते हैं। "सबर टोका" जैसे एकल नृत्य में शिकार की टोह में शांत बैठ उसका शिकार करने, शिकारियों के विषाद और आनंद की अंतिम पाद-टीप इत्यादि सभी तत्व बड़े कौशल से रेखांकित किये जाते हैं। इस प्रकार 'छऊ' के कथानक मुख्यतः पुराणों से लिये जाते हैं और उसमें प्रचंड वेग व ऊर्जा एवं तीव्र पद-संचालन के साथ साथ स्निग्ध लालित्य एवं प्रगीत तत्व का समन्वय होता है, जिन्हें दृश्य काव्य की संज्ञा दी जा सकती है। प्रतिवर्ष नये कार्यक्रम भी उनमें समायोजित किये जाते हैं परंतु उनकी संख्या न तो बहुत अधिक होती हैं और न वे अधिक महत्व के ही होते हैं। यह संभव है कि समय के साथ नृत्य के परिवृत्त में अधिकाधिक सामाजिक और धर्म-निरपेक्ष कथानकों का समावेश होता जायेगा (सीताकान्त महापात्र कृत "मयूरभंज छऊ के कुछ पहलू")।

नाग नृत्य

"नाग" भी हमें उस देदीप्यमान भूत की याद दिलाता है जब ओड़िसा का गंगा के तट से कावेरी तक विस्तृत विशाल साम्राज्य था और जब ओड़िया एक वीर जाति थी जो

मुसलमानी प्रवेश के प्रतिरोध में सदियों तक लड़ती रही थी। नर्तक का वीर रूप होता है और वह एक विशेष पोशाक पहनता है। युद्ध के नगाड़ों के घोष के साथ वह शस्त्रों का भारी बोझ लिये नाचता है। उसकी दस प्रमुख आवश्यकताएं हैं : (1) गेंडे की खाल की एक ढाल (2) एक तलवार (3) एक खुकरी (4) एक बन्दूक (5) बिगुल की तरह से उपयोग में आने वाला एक सींग (6) लोहे की एक ढाल (7) एक प्रसाधन संदूकची (8) उसके धनुष में एक शेर की आकृति लगी होती है और भयावह दिखाई देता हैं। (9) उसके एक लम्बा मुकुट होता है जिसके सिरे पर एक बड़ा-सा फूल होता है और जो चमकते हुए मोर पंखों का बना होता है, तथा (10) उसके हाथों में गुरियों की माला और एक दर्पण होता है। अंगुलियों में सोने की अंगूठियां, वक्ष और कटि प्रदेश पर शेर की खाल, बाणों पर ध्वज, हाथों पर बंधे हुए रूमाल, जंघा पर बंधी हुई एक छोटी सी घंटी—ये नर्तक के परिधान होते हैं। ग्रीष्म ऋतु की तपतपाती धूप से बचने के लिए वह अपने पूरे शरीर पर रामरज (पीले रंग की एक भस्म) लगाता है। वह अपने मस्तक को सिंदूर से सजाता है। वह नकली दाढ़ी और मूछें लगाता है। इस प्रकार वस्त्राभूषणों से सुसज्जित होकर वह बड़ा भयानक लगता है। इस नृत्य के साथ कोई गाना नहीं गाया जाता है।

जात्रा नृसिंह (विष्णु का नर और सिंह समन्वित अवतार) के जन्म दिवस पर आयोजित होती है। परंपरा के अनुसार यह पर्व पौराणिक नागार्जुन का अपने पिता अर्जुन के विरुद्ध विजय उत्सव है। परंतु हमारी दृष्टि में वह पुराने "पाईक" नृत्य के अवशेष के सिवाय कुछ और नहीं हैं, जो युगों से केवल योद्धा वर्गो में ही नहीं वरन् उन सभी वर्गो में जिनमें से सेना के लिए युवकों की भर्ती होती रही है, सुरक्षित रहता आया है।

घुमरा नृत्य

घुमरा, घड़े के बराबर का एक मृदंग होता है जिससे बड़ी गहरी संगीत ध्वनि निकलती है। वादक घुमरा को अपने गले के चारों ओर एक रस्सी से बांध कर लटकाता है और उसे बजाता है और विवाह जैसे सामाजिक अवसरों या किसी भी धार्मिक उत्सव पर उसकी ताल पर नाचता है। कभी-कभी दो दलों के बीच प्रतिस्पर्धा भी होती है। प्रत्येक दल में बीस-पच्चीस आदमी होते हैं। नृत्य रात भर चलता रहता है। घुमरा सअर और अन्य आदिवासियों तथा हरिजनों में प्रचलित है प्रणय घुमरा गीतों की मुख्य विषय वस्तु है। अन्य लोक-नृत्यों की भांति, गीत के प्रारंभ में देवी देवताओं का यशोगान किया जाता है।

हुमों, बऊली, बांकी, मुलरी, जमुदली, माथालजार, गंजीकटा, रसकेलि और पुची जैसे लोक नृत्यों के कुछ अन्य रूप ओड़िसा तथा ओड़िसा के मूल निवासियों में प्रचलित हैं।

लोक नाट्य

लोक नाट्य में अभिनय कम और नृत्य अधिक, वार्तालाप कम और गीत अधिक होते हैं। विदूषक नाचता है राजमहिषी नाचती है, उनके अनुचर नाचते हैं, मृदंग वादक नाचता है। दास काठिया का प्रमुख गायक नाचता है। इस नाच में कुछ अपनी विशेषताएं हैं। वह एकरस होता है। इसमें अत्यधिक गायन थका देने वाला होता है।

निम्नांकित लोक नाट्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—जात्रा, पाल, पटुआ, दास काठिआ, मुगल तमाशा, कर्मा, डंडानाट और चैतीघोड़ा नाट।

जात्रा या नृत्य नाटिका अभी भी दूर-दूर के हजारों दर्शकों को आकर्षित करती है। इसके लिए विज्ञापन की आवश्यकता नहीं है। न किसी को निमंत्रित किया जाता है और न किसी को टिकिट खरीदना पड़ता है। मौखिक सूचना से ही इतने लोग आकर्षित हो जाते हैं कि बहुत बड़े सभागार में भी उनके लिए पर्याप्त स्थान नहीं हो सकता। इसलिए जात्रा का आयोजन खुले स्थान पर ही होता है। दर्शकों के बीचों बीच एक चौकोर मंच का निर्माण किया जाता है, जिसके पास ही वाद्य वृंद के बैठने के लिए स्थान होता है।

दल के विशेषज्ञ कलाकारों द्वारा हारमोनियम, क्लेरिने, बिगुल, मृदंग, झांझ, दुली, तबला, ढोलकी इत्यादि पर एक-एक कर प्रस्तुति की जाती है और उसके बाद लड़कियों के वेश में गाते और नाचते लड़कों के दल द्वारा नृत्य नाटिका प्रारंभ की जाती है। कथानक का राजा सामान्यतः परंपरागत वेश में ही प्रवेश करता है और कथानक अधिकतर ऐतिहासिक अथवा पौराणिक होते हैं। स्त्री वेश में पुरुष अभिनेता कृत्रिम दिखाई देते हैं। छुआरी या उगरा (राजा का संदेश वाहक) और विदूषक जात्रा में सबसे अधिक दिलचस्प चरित्र होते हैं। सामान्यतः नगरों से दूर ग्रामीण अंचलों में जात्रा अभी भी मध्ययुगीन प्रस्तुति है और उसमें देवी देवता, ऋषि मुनि, राजा और सभासद का चरित्र-चित्रण होता है, और वास्तविक समकालीन जीवन और उसकी समस्याओं से उसका कोई सरोकार नहीं होता। नगरों के निकट जात्रादल अब सिनेमा और थियेटर के आदर्श के अनुरूप कुछ सुधार लाने का प्रयास कर रहे हैं। वे नाटकों में बहुत अधिक गानों, उसके संगीत, हाव-भाव तथा दकियानूसी वेशभूषा से बचने का प्रयास करते हैं। वे अपने पात्र सामाजिक उपन्यासों से चुनते हैं और संवाद में सरल गद्य का प्रयोग करते हैं। परंतु सुधार के जोश में वे बहुधा उसके प्राचीन व्यक्तित्व को खो देते हैं।

पाला

पाला प्राचीन ओड़िया साहित्य को लोकप्रिय बनाने वाली एक लोकप्रिय सामाजिक संस्था हैं। इसमें चार पांच व्यक्ति होते हैं। नगड़ची, मृदंग बजाता है। दूसरे व्यक्ति चिमटा बजाते हैं, नाचते हैं और मुख्य "गायक" को गाने में सहयोग देते हैं और श्रोताओं को उसका

अर्थ समझाते हैं। जब पाल प्रतियोगिता में दो बराबरी के तगड़े दल एक दूसरे की प्रतिस्पर्धा करते हैं तो ज्ञान की गहराई, तीक्ष्ण बुद्धि, वक्तृता और स्मरण शक्ति, सभी की कड़ी कसौटी पर होती है। पूरे माह भर प्रति रात इस प्रतिस्पर्धा को चलाते रहने के लिए आवश्यक असामान्य ऊर्जा पुंज के लिए गायक निश्चय ही निर्बाध प्रशंसा के पात्र होते हैं। मृदंग वादक अपनी अगुंलियों का कौशल दिखाता है और श्रोताओं के मनोविनोद के लिए हास्य कथाएं भी सुनाता है। गायक और किसी एक अनुचर के बीच संवाद और गाने में शब्द प्रयोग के खेल लंबे भाषणों की एकरसता को तोड़ने में सहायक होते हैं। पाला मूल रूप से हिंदू-मुसलमान एकता के प्रयास का फल है।

पटुआ

पटुआ ग्रामीण कवियों द्वारा रचित गीतों को गाते हैं। ये कवि अपनी विषय-वस्तु रामायण, महाभारत, पुराण आदि से लेते हैं पर अभी हाल में उपन्या तों से भी उठाने लगे हैं। कुछ गाने भाषा और भाव दोनों में ही सरल होते हैं परंतु कुछ ग ने भाव में बड़े गहरे होते हैं पर वह भाव शब्दाडंबर में छुपा रहता है।

पटुआ के चार वर्ग होते हैं। यद्यपि वे सभी उसी देव के भिन्न भिन्न नामों से पूजा करते हैं। उनका अंतर धार्मिक अनुष्ठानों के रूप में है न कि पूजा की वस्तुओं और उनके उद्देश्यों में।

"घट पटुआ" विभिन्न ग्रामों में नाचता है, गाता है और शारीरिक कलाबाजी दिखाता है। ग्रामवासी उसे देवी की पूजा के लिए नकद या वस्तु रूप में दान देते हैं। सबसे ऊंचे आराधक धधकते हुए अंगारे पर चलने वाले दल का नेतृत्व करते हैं।

दाशकठिया

दाशकठिया जो केवल गंजाम की प्रसिद्ध प्रस्तुति था अब ओड़िसा के सभी जिलों में प्रचलित हो गया है। दाश का अर्थ है आराधक और काठ का अर्थ है आराध्यदेव की प्रार्थना के साथ में ताल से बजाये जाने वाले दो लकड़ी के टुकड़े।

इस दल में दो व्यक्ति होते हैं। एक प्रमुख गायक होता है और दूसरा 'पालिया' होता है जो उसे गाने और अभिनय में सभी प्रकार की सहायता करता है। ये दो व्यक्ति पूरा नाटक ही प्रस्तुत करते हैं। सभी अभिनेताओं का भाग ये ही दोनों अदा करते हैं। समय-समय पर वे अपना स्वर बदलते रहते हैं। एकरसता को तोड़ने के लिए वे मनोरंजन कहानियां भी बीच-बीच में जोड़ते जाते हैं।

मुगल तमाशा

तमाशा नृत्य नाटिका का ही एक रूप है जो हमें ओड़िसा में पुराने मुगल प्रशासन की याद दिलाता है और उसकी संस्कृति का एक चिह्न है। गाने फारसी और ओड़िया दोनों ही भाषाओं में होते हैं। संवाद अत्यंत मनोरंजक होते हैं। मुगल तमाशा बालासोर जिले के भद्रक अंचल की विशेषता है। ओड़िसा के किसी भी अन्य अंचल में यह नहीं खेला जाता है।

कर्मा

कर्मा प्रख्यात वर्षाकालीन उत्सव नृत्य है। भाद्र माह के शुक्लपक्ष की एकादशी से आश्विन माह में कुछ दिनों तक चलता रहता है। संबलपुर और फुलबानी जिलों के अधिकांश ओड़िया गांवों में यह उत्सव मनाया जाता है।

इस उत्सव की पृष्ठभूमि में कहानी कुछ इस प्रकार है :– एक धनवान व्यापारी के छः पुत्र थे। वे अपने सबसे छोटे भाई को घर पर छोड़कर व्यापार के लिए एक जहाज में बैठकर समुद्र यात्रा के लिए निकल पड़े। जब वे लौटे तो उन्हें यह देखकर आश्चर्य का ठिकाना न रहा कि उसकी पत्नियां कर्मा उत्सव में नाच रही हैं और उसका सबसे छोटा भाई नगाड़ा बजा रहा है। क्रोध के आवेश में उन्होंने अपनी पत्नियों को खदेड़ दिया। इस पर कर्मा (भाग्य का देवता) क्रोधित हो गया। उनका सारा धन नष्ट हो गया।

उन्होंने अपनी पत्नियों के साथ धन लक्ष्मी को भी अपने घर से खदेड़ देने की अपनी मूर्खता के लिए घोर पश्चाताप किया। अपनी पत्नियों की राय के अनुसार वे भाग्य के देवता की खोज करने निकल पड़े। उन्हें रास्ते में एक ग्वाला मिला। उसने उनसे देवता मिलने पर उससे यह पूछने के लिए प्रार्थना की कि उसकी गायों की संख्या इतनी तेजी से क्यों कम होती जा रही है। कुछ समय के बाद उन्होंने एक बड़ा विचित्र आदमी देखा जो अपने सिर पर मिट्टी के घड़े का एक कल्ला रखे हुए था जिसमें आग जल रही थी, और एक दूसरा आदमी अपने कंधे पर ढेंकला लिये जा रहा था। आगे दूसरा आदमी उन्हें ऐसा मिला जो ठंड के मारे ठिठुरा जा रहा था। उन्हें देवता से इन सभी व्यक्तियों के कष्टों के कारण और उनसे उबरने के निदान भी मालूम हुए। आवश्यक पूजा-अर्चना के बाद देवता उन पर दयावान हो गया और लौटने पर उन्होंने पाया कि उनका घर सोने और जवाहरात से भरा हुआ है।

कर्मा नर्तकों एवं गायकों के व्यावसायिक दल होते हैं। वे पौराणिक घटनाओं अथवा लोक कथाओं की प्रस्तुति करते हैं। कर्मा में युवकों और युवतियों के दलों के बीच प्रश्नोत्तरी के रूप में प्रेम गीत गाए जाते हैं।

कठपुतली के खेल

यह लोककला का प्राचीनतम रूप है। कलाकार के हाथों में निर्जीव कठपुतलियों का कौशलपूर्ण संचालन दर्शकों के ध्यान को बांध लेता हैं। देहधारी अभिनेताओं एवं अभिनेत्रियों की तरह ये कठपुतलियां भी जीवंत प्रतीत होती हैं।

कठपुतली : मंच को तैयार करने में व्यय नगण्य होता है। सही अर्थों में यहां पट की आवश्यकता नहीं होती। परंतु खेल की युक्तियों और गोपनीय तथ्यों को चुराने के लिए केवल एक पर्दा ऊपर से टांग दिया जाता है और एक दूसरा पर्दा धरती के सहारे पर उठा हुआ होता है। इन दो पर्दों के बीच कलाकार हस्तकौशल से प्रस्तुति करता है। उनके बीच की विभाजक रेखा में से वह अभिनेताओं और अभिनेत्रियों को मंच पर उतारता है। कठपुतलियां लकड़ी की बनी होती हैं। उसे गांव के बढ़ई गढ़ते हैं और रंगते हैं। ओड़िसा में कठपुतली बनाना सदियों से पारिवारिक कला के रूप में विकसित हुआ है। कटक इसके लिए अति प्रसिद्ध है। कठपुतलियों को एक डलिया में निर्वस्त्र रखा जाता है परंतु उन्हें खेल में उतारने के पहले बड़ी सुंदरतापूर्वक वस्त्र पहनाये जाते हैं।

ओड़िसा के गांवों में कठपुतलियों का खेल दिखाने वाले श्यामपटों, इत्यादि से मंच का निर्माण करते हैं। वह नाट्य मंच के बराबर चौड़ा नहीं होता है क्योंकि कठपुतलियां तीन या चार फीट से अधिक ऊंची नहीं होती हैं, मंच की तीन दिशाओं में आठ खंभे खड़े किये जाते हैं। इन खंभों पर कठपुतलियां, तेल लगाकर चिकनाये गये एक रेशमी धागे से, लटकती रहती हैं। दूर से न रेशमी धागा दिखाई देता है और न धागा पकड़ने वाला व्यक्ति ही। अतएव ऐसा प्रतीत होता है कि मानो बिना किसी व्यक्ति की सहायता के कठपुतलियां स्वयमेव प्राकृतिक ढंग से नाच रही हैं।

कठपुतली का खेल प्रस्तुत कराने के लिए केवल चार व्यक्तियों की आवश्यकता होती है—सूत्रधार, दो गायक और एक वादक। यहां पर यह उल्लेखनीय है कि ओड़िसा में अन्य खेलों से भिन्न कठपुतली के खेल में एक परिवार के सदस्य भी भाग लेते हैं। वे निर्जीव कठपुतलियों का प्रतिनिधित्व करते हैं और उस रूप में उनके बदले वार्तालाप करते हैं और गाते हैं।

ओड़िसा में अभी एक कठपुतली मंच के लिए कोई भी विशेष नाटक नहीं लिखा गया है। इसलिए कठपुतली कलाकार नृत्य नाटिकाओं (लीला, स्वांग या प्रहसन) का उपयोग ही करते हैं परंतु इन नाटिकाओं में आवश्यक परिवर्तन कर लिये जाते हैं जिससे कि वे कठपुतली मंच के लिए उपयुक्त हो सकें। प्राचीन और समय के अनुरूप लोकप्रिय गानों और चित्ताकर्षक संवादों को भी जोड़ दिया जाता है। इसी प्रकार पुराने और घिसे-पिटे हिस्सों को अलहदा भी कर दिया जाता है। इस प्रक्रिया में पुराने जमाने के खेलों की मूल भावना धीरे धीरे समाप्त हो जाती है और उसका रूप कुछ विचित्र सा हो जाता है। जिसमें

कई लोक-कवियों के गानों का जमघट हो जाता है और कई लोक-नाटकों के संवादों का समावेश हो जाता है।

कठपुतली के खेल के संवाद अत्यंत दिलचस्प होते हैं। प्रारंभ में ढोलक बजाने वाला मंच के सामने बैठकर ढोलक बजाता है। यह लोगों को खेल देखने के लिए बुलाने का आमंत्रण है। जब लोग काफी संख्या में इकट्ठे हो जाते हैं तो खेल शुरू होता है। स्त्री रानी या अनुचर का संवाद कहती है। वह पर्दे के पास बैठती है। परंतु पुरुष गायक की बात अलग है, वह मंच के बाहर बैठता है। वह राजा, मंत्री, पुलिस, अधिकारी या संदेशवाहक के लिए संवाद कहता है। उनमें से प्रत्येक हर रात को बीस से पच्चीस गाने गाता है। दो व्यक्ति पूरे खेल को याद कर लेते हैं।

पारिवारिक कला के रूप में इसके संरक्षण के अनेक लाभ भी हैं। वह आत्मनिर्भर एवं आत्मसमर्पित कला है और संबंधित परिवार के मुखिया के कठोर नियंत्रण और प्रबंध में यह रहती है। इस प्रकार खेल का यह रूप परंपरागत एवं व्यावसायिक कला के रूप में पीढ़ियों तक विकसित होता रहता है। इस कला के विकास के लिए धनी संरक्षक की आवश्यकता नहीं है। ग्रामीण समाज का समर्थन ही उसके फूलने फलने में सहायक रहा है।

परिशिष्ट

मौखिक साहित्य से चुनी गई कुछ कविताएं

दोळि गीत

आसिचि सधीरे जगते दोळ पुनिअ जात
जात देखिजयान्ति हरषे धरि मो प्रिया हात।
मन मो हेउचिं उछन्न फगु बेश हुअन्ति
प्रियार सुंदर अंगरे अबिर मुं लेपंति।
खुआइ दिअंति शाकर किणि दोळ, बेदी रे
शुझाइ दिअंता सजनी ताहा प्रेम् बिधिरे।
खिलि पान किणि आणांति केड़े हरष मने
पाटिरे भुन्जाइ दिअंति भेटि केळि सदने।
अधा चोबा पान निअंति तार पाटिरु काढि
मुख चांद चाहिं नुहंता निदे नयन भारि।
निद माडिले मुं शुअंति प्रिया कोमळ कोळे
सकाळु लभंति चेतना काळ पिक चहळे।

* 'य' का उच्चारण 'ज' जैसा होगा।

दोळि गीत

1. दिअंक पोखरी कईं
   कईं फूल परि बोउ बढ़ाइथिलु लो
   पर घरे देबा पाईं
2. कदली गछर उधि
   पिला करि बोउ पठाइ देलुलो
   किए शिखाइब बुद्धि
3. तेंगडा उपरे ढाउ
   आउ चारिदिन रहंति बोउलो
   भाउज कहुचि जाउ
4. घरर उपरे घर
   घरे थिलायाके नना तुमर है
   एरुंडि डेईंले पर।

होली गीत : रज-पर्व

आ गया आहिस्ते से जग में – होली-पूनो-जात्रा,
जात्रा देखने जाऊं मैं खुशी से, हाथ में लेकर हाथ प्रिय का
मन मेरा चंचल है, फाग वेश होने को,
प्रिया के सुंदर अंगों पर गुलाल लगाने को,
खिला दूं उसे मिठाई, झूले पर,
चुका दे वह उसे प्रेम रीति से,
जी चाहता है चूम लूं गुलाबी गालों को
छिपा ले वह लाज से अपना मुख चिन्त साड़ी के घूंघट में
खरीद लूं पान की गिलौरी – खुशी-खुशी से,
खिला दूं उसे मुंह में जब मिलें केलि-सदन में।
अधखाया पान निकाल लूं मुंह से,
चाहता हूं खेलूं ताश उसके संग चांदनी रात में,
परवाह न करूं मैं जग के कष्टों की, प्रिया के साथ में।
चांद सा उसका चेहरा निहारकर, पलकें बोझिल न हों नींद से।
नींद आती तो सोता प्रिया की कोमल गोद में।
सुबह जागता मैं विहग के रव से।

झूला गीत

1. देव- पोखर की कुई
   कुई फूल की नाई, बढ़ाई थी मुझे मां,
   क्या करने को परायी?
2. नन्हा कदली दरख्त,
   भेज दिया मां अल्हड़ किशोरी को,
   कौन देगा समझ?
3. मेड़ की माटी भगुआ,
   और चार दिन रहती मां,
   पर भाभी कहती है अब जा।
4. घर के ऊपर दूसरा घर
   ओ भइया, मैं थी तुम्हारी, घर में रहते तक,
   अब हो गई परायी द्वार देहरी पार कर।

5. बाडिरे चेका पथर
बाबु घर झिअ गेल बसर हे
आणिचि छाड़ पतर
6. दोळि करे केंकट
दोळिकु देवि मुं सुना मुकुट
दोळि न कर तु केंकट
7. दोळि करे साईं साईं
दोळिरे दोळुछु भउणी भाइ
माआ डाकुचि खाइबा पाईं
8. कबाट कें कहिला
सउतुणी पुअ माआ बोइला
से लाज मोते लागिला
9. सजना गछर छुई
नियम करुचि तो देह छुईं
धन तोह बिना आन नाईं
10. खजुरी झुमुक छुमा
माआ घरे झिअ कानर सुना
शाशू घरे पडे घणा
11. जह्न उदे छन छन
उदिथारे जह्न खाइबु पान
तो मुख दिशे दर्पण
12. कूअरे पडिला खलि
दूर राइजरे कि बंधु कलि
बाट चालि चालि मलि
13. आखु बाड़ि खड़ खड़
दुहुड़ा लगाइ आसुचि बर
कनिआकु सज कर।
14. शिळरे छेचिलि अदा
बड़ घर बोलि देइच ददा
देहरे शुखिला ओदा

5. बाड़ी की गोल पथरी,
बड़े घर की है बेटी दुलारी,
अपने साथ तलाक है लाई।

6. झूला बोले चरमर,
झूले को दूंगी मैं सोने का मुकुट,
झूला तू न कर चरमर।

7. झूला बोले सांय सांय,
झूला झूल रहे हैं, बहन भाई,
खाने को मां बुला रही।

8. किवाड़ कहे कें कें,
सौतेला बेटा कहे मां,
गड़ जाऊं लाज की मारी मैं।

9. सेंजना की फल्ली,
खाई है कसम, छू तेरी देह,
प्रिय, तेरे सिवा कोई और नहीं।

10. खजूर गुच्छों की राशि,
मायके में बेटी कान की बाली,
ससुराल में वह तेल की घानी।

11. है उदीयमान चांद
उग रे चंदा खाये पान
तेरा मुंह है दर्पण समान।

12. कुंए में पत्तल गिरा,
दूर दराज में रिश्ता क्या बांधा
बाट चल चल कर मैं मर गया।

13. गन्ने की खेत में सरसर आवाज,
ज्योति पुंज लिये आये दूल्हा महाराज,
दुल्हन का करो शृंगार।

14. सिल पर कुचले अदरक, ओ भाई,
बड़ा घर जान, कर दी शादी,
देह में सूखे गीली साड़ी।

15. गुड़िआ घर खणति
बड़ घर बोलि दइछ बपा
चितउ पिठा गणति

16. बंध हुड़ा भुसुकिला
बापांकु देखिले कहि देब ति
झिअ देइ पासोरिला
पासोरि नाईंलो झिअ
बुणा-पणत रे बांधिलि मुढ़ि
मो दुःख जाणांति दिअं।

गाथा गीतिका

शशुरे मोते बड़ पारंति देखि
नाआं जे देइछंति ए हतलक्ष्मी।।
कि घर झिअ बोली मोते कहंति
एते काळके जाति जाणि नाहांति।।
शाशुंक स्नेह भाव कहिबि केते
काल सर्प बोलि लो डाकंति मते।।
नखरे गाल मांस पिंजंति मोर
दांत रगेडा देखि माड़इ डर।।
माड़लों खाइ मुहिं चाहें निरेखि
निआं मुंडा परि लो शाशुंक आखि।।
राति के तिनि थर दउड़ि नेइ
थोइ आसंति मुंड उपरे जाइ।।
निद भाजिला बेळे चाहें निरेखि
निआं मुंडा परि लो शाशुंक आखि।।
सेठारू उठि अन्य थानकु जाए
नळा मुंहरे कानि पकाइ शुए।।
आउ जेतेक लोक से घरे छंति
जण जणंक स्नेह खंडिए पोथी।
सबु बेळकु मोते करंति पर
अईठां पोछा वेले खाइछि बर।।

15. हलवाई का पलटा, बापा,
बड़ा घर मान दे दी बेटी,
जहां गिनी जाती है रोटी।

16. बांध का मेड़ ढह गई
बापा दीखें तो कह देना
"बेटी देकर भूल गये।"
"भूला नहीं हूं बेटी,
धोती के छोर पर बंधे हैं मुरमुरे,
मेरा दुख जानता है देव।"

गाथा गीत (संपेरे की टोकरी में सांप)

ससुर मुझे बड़ा प्यार करते हैं,
तभी कुलक्षणी नाम दिया है।
मैं किस घर की लड़की हूं, सदा पूछते,
इतने दिनों के बाद भी वे मेरी जात नहीं जानते।
सास की ममता मैं कह नहीं सकती,
'काल नागिनी,—नाम से वे मुझे बुलाती।
नख से मेरे गाल का वे मांस नोंचती,
दांत किटकिटा कर हैं मुझे डरातीं,
मार खाकर भी मैं उन्हें निहारती,
सास की आंखें हैं अंगारे की भांति।
रात को तीन बार लेकर रस्सी,
मेरे सिरहाने वे हैं रख आतीं।
नींद टूटने पर मैं उन्हें निरखती।
सास की आंखें हैं अंगारे की भांति।
वहां से उठ कर मैं अन्यत्र जाती,
नाली- किनारे आंचल पसार कर मैं सो जाती,
और उस घर में हैं जितने व्यक्ति,
हर एक का प्यार है एक एक पोथी,
हर कोई सदा मुझे कहते-परायी।
और कहते उठा झूठन, खाया है पति।

आलुअ करिबाड़ गुआ बरड़ा
रांधि लो खाइबाकु चणा करड़ा।।
षढेइ टिके बोउ निआं दिअंति
भात हेला कि बोलि पचारु थांति।।
रंधा मालपा बोउ दिअंति नाईं
अंधारे भात हांडि निए उठाइ।।
बसिले बोलुथांति चका पथर
कहिले कहंति बोउ तुंड टा खर।।
शोइले कहुथांति निद अलसी
कांदिले कहु थांति किए मरिचि?
केते कहिबि बोउ से घर गुण
रांधिला तिअण रे मिशांति लुण।।
केते कहिबि बोउ से घर ठाणि
रांधिला तिअण रे मिशांति पाणि।।
बिटळ महालखी ये घरे थिला
मुं पाद देला दिनु उभाइ गला।।
पथ पर्वत कु लो चाहिंचि मुहिं
दुइ नहनुं लुथ जाउचि बहि।।
आई ता नाईं मामुं घरा निरेख
जनमुं पिता घर होइचि दुःख।।
नड़िआ बरड़ा लो छ हाते डिह
कअण देखि बोउ देइचु झिअ?
कटक कंसा बाटि कंटिलो गड़ि
ब्रपदा गढ़ण मो कांचन थाळी।।
भेलरी खटकु लो पाड़िचि नेत
आलो विचित्र माळी ए पटा खट।।
विचित्र आड़ खुड़ केते प्रकार
दिअं बासन सबु कलिकतार।।
जंबु सहर लुगा मुणोहिं पेड़ि
पुरस्तमिआ लुगा पेड़िकि पेड़ि।।
उघाउ थांति शाशु थरकु थर
किछि देइनि मते मो बापा घर।।
सबु सहि लो बोउ बांधिचि दंभ
छाति करिचि मोर पथर खंब।।

रोशनी के लिए है सुपारी पत्ती,
पकाने को ईंधन, चने की ठंडी।
नारियल के खोखे में हैं आग देती,
पक गया भात, हैं पूछती जाती।
बना मालपुआ वे मुझे नहीं देतीं,
अंधेरे में मैं भात की हांड़ी उठाती।
बैठने पर वे गोल पत्थर हैं कहती,
बोलने पर कहतीं बहू है तीखी।
सोने पर ताना देती हैं, आलसी,
रोने पर 'है कौन मरा?' पूछतीं।
कितना कहूं मां उस घर के गुण,
पकी तरकारी में वे मिलाते हैं नोन।
कितना बखानूं मां उस घर की शानी,
बनी सब्जी में मिलाते हैं पानी।।
अटल महालक्ष्मी उस घर में थीं,
मेरे पैर पड़ते ही वे चली गयीं।
पथ- पर्वत को मैं हूं देखती,
दोनों नयनों से है नीर की धार बहती।।
नानी नहीं, ननिहाल से हूं वंचित,
जनम से पीहर है दुःखी- लाचार,
ससुराल में है छः हाथ जमीन व नारियल पत्ती,
क्या देख तू ने मां दे दी बेटी।
कटकी कांसे की कटोरी जो कंटीलो की है बनी,
विपदा की बनी है मेरी कंचन थाली।।
भेलरी खाट पर पड़े हैं नेत्र,
यह तखत है बड़ा विचित्र,
लाई थी मैं अलंकार मंजूषा कई तरह की,
पूजा बर्तन थे कलकत्ता के।
जंबू शहर के कपड़ों से भरी थी पेटी,
पुरस्तमिया साड़ियां थीं कई पेटी,
ताना देती है सास बार बार,
कुछ नहीं दिया है मेरे पीहर वालों ने।
सब सहकर भी साहस है रखा।
हिरदय बन चुका है पत्थर का खंभा।।

गाथा गीतिका

नब लक्ष्य राजा गोबिन्द चंद्र रे महाराजा गोबिन्दाइ
चारि जुगरे तू अमर होइबु गले पुत्र जोगी होइ।।
अमर होइबु संन्यासी होइण राज्यरे बुलिबु तुहि
मो बोल मानि तु मान गोबिन्द रे राज्ये राज्ये बुल जाइ।।
अठरकु दिह केते सरिहब उणेइशे हब मरण
तेर दिन जमा परमायु अछि बांधि नब काल जम।।
आजि आजि कालि कालि कालि कालि बोलि एहिपीर गला दिन
रखि न पारिलि मान गोबिन्द रे जाउ पुअ घोर बन।।
कुंभीर पिठिरे भरसा बांधिचु सिंधु पारि हेबा पाईं
चाहुं चाहुं दम दाढ़रे पड़िबु डर भय माड्ड नाहिं?
तेतेबेळे पुत्र बचन बोलइ माआ गो मुकुता देइ
अज्ञान काळरु धूळि खेळ घरे जोगी न कलु किपाई।।
तोह मने जेबे ऐते कथा थिला पुअकु करिबु दास
काहिं पाई मोते बिभा कराइलु गळे लगाइलु फाश।।
राजा बि हेलेत मरिब आउरि जोगी हेलेत मरिबि
छार मरण कु डरिबि किपाई राजा जोगी होइ जिबि।।
राजा पथ बड़ सुख गो जननी जोगी पथ बड़ दुःख
खरा कि काकर बरषा न थाए राज्यरे मागइ भिक।।
तेतेबेळे माता बचन बोलइ शुणरे कुमर तुहि
मिछ मायारे तु न भूल कुमर जाअ जाअ जोगी होइ।।
जळुथिब दीप दिहुडि कुमर घर होइब आलुअ
घरु जेतेबेळे दीप लिभिजिब होइब अंधारमय।।
एते बेळे पुत्र बचन कहुचि माआ गो मुकुता देई
रोदना राणी की संगत रे देले जिबि माता जोगी होइ।।
रोदना रे बोल रोदना रे बोल माया राक्षसी जे सेहि
से माया रे जदि पड़िबु कुमर निश्चे नाश जिबु तुहि।।
सुंदर देखिण न भूल कुमर जाति महाकाळ फळ
सेथिरू जोड़िए भांगिकरि देख भितर पोड़ा अंगार।।
रंग शिमुळि रे कि देखि भुलुचु फुटिले उड़िब तुळा
एते बुझाउचि मान गोबिन्द रे तुहि त होइचु भोळा।।

मगर की पीठ पर समन्दर पार (गाथा गीत)

नौ लाख राजाओं में श्रेष्ठ ओ गोविन्द चन्द,
तुम यदि बन जाओ जोगी, तो हो जाओगे कालजयी,
अमर होओगे संन्यासी बनकर, घूमोगे राज्य भर में,
मेरी मानो, ओ मान गोविन्द, घूमो राज राज में,
अठारह में देह मेरी व्याधि घर बनेगी, उन्नीस में होगा मरण,
तेरह दिन मात्र आयु शेष है, तब बांध ले जायेगा काल-यम।
आज और आज, कल और कल, आज और कल में बीते जाये ये दिन,
रख नहीं पायी मान गोविन्द मेरे, जाओ पुत्र तुम गहन कानन,
घड़ियाल पीठ की आस है, जाने को समन्दर पार,
पलभर में होगे काल के गाल में, तुम्हें लगता नहीं है डर?
तब बोल उठा पुत्र ओ मां मुकुता देई,
क्यों न बनाया जोगी तूने मुझे, धूलि खेल बचपन से?
तेरे मन में यदि यह चाह थी, बेटे को करोगी दास,
तब फिर ब्याह क्यों किया, गले में डाला फांस।
राजा बनकर भी मरना है और जोगी बन कर भी,
फिर तुच्छ मरण से डरूं क्यों? मैं बनूं राजा से जोगी?
राज जीवन है बड़ा सुखद, ओ जननी, जोगी जीवन बड़ा दुख,
धूप हो, शीत हो या बरसात, वह मांगे राज में भीख,
कहा मां ने तब पुत्र से, सुन मेरे कुंवर तू,
झूठी माया में न भूल, हो जा जोगी तू,
जब तक दीप जले, होता घर में उजाला,
दीया बुझे भर जाये घर में अंधेरा।।
तब कहा पुत्र ने ओ मां मुकुता देई,
रोदना रानी को संगकर दो बन जाऊं मैं जोगी।
रोदना की बोल, गोंदना की बोल, हैं वह माया राक्षसी,
यदि पड़े उस मोह में कुंवर, होगा तुम्हारा नाश।
सुन्दर देख, न भूल कुंवर नारी है महाकाल फल,
उसे तू तनिक फोड़ कर देख, भीतर है जला अंगार।
सेमल का रंग देख तू भूलता, फूटने पर उड़ेगी रूई,
इतना समझा रही हूं मान गोविन्द मेरे, क्यों तू बना है बावरा?

कथा रे के जिब कृष्ण कु जिणि?

शुण हे सुजने एसन वाणी
राधांकु न देखि शारंग पाणि
जमुना कूळरे मिळिले जाइ
हसि कथा कह प्राणर राई।
राधा— तुमेत नितांत कळा पुरुष
मोठारे किंपा लगाइछ आश?
कृष्ण— कळा बोलि राधा धइल तुंडे
बज्र त छिड़ि पड़ुअछि मुंडे।।
जमुना कळा मिशिथाइ जळे
मेघ जे कळा चांद तार तळे।।
ताळ जे कला घरे हुए शेणी
कळा जे मेघ बरषुचि पाणि।।
आपु जे कळा से गछर अठा
काळी तिरींकर वचन मिठा।।
दीप जे कळा देवता वंदन
तुळसी कळा देवता मंडन।।
काळि जे कळा गीत लेखाजाये
भूलता कळा नृत्य करुथाये।।
मधुर लागई कोइलि गळा
कि रंगे खेळइ आखिर डोळा।।
मुग जे कळा परषद आग
शाग जे कळा पितृ श्राद्धे भोग।।
कळा पाट जे देवीं क घोड़णि
कळा छति जे देबीक आढ़ेणि।।
कळा मेघी शाढ़ी पिंधंति नारी
मधुर कंठ कळा वर्ण सारी।।
कळा बोलि राधा धइलु तुंडे
बज्र जे छिड़ि पड़ुअठि मुंडे।।
एते शुणि राधा होइले तुनी
कथा रे के जिब कृष्ण कु जिणि?

बातों में कौन जीतेगा, कृष्ण को? (वाक्-पटु-कृष्ण)

सज्जनो सुनो तो जरा यह वाणी,
राधा को न देखकर सारंगपाणी।
यमुना तट पर मिले जाकर,
प्राणप्रिया उनसे बोली हंस कर,
राधा – "तुम तो हो एकदम काले,
फिर क्यों हो मेरी आशा लगाये?"
कृष्ण – "काला हूं यह बात तुमने कैसे कही,
सिर पर ब्रज टूटा हो बात ऐसी लगी।
जमुना का जल भी तो है काला,
चलें जिसके नीचे वह मेघ भी है काला।।
ताड़ वृक्ष काला है घर की बनती है कड़ी।
मेघ भी काला है बरसाता है पानी।।
अफीम भी काला है, पेड़ की गोंद है।
काली स्त्रियों की वाणी भी मीठी है।।
दीपक है काला देव-वन्दन।
तुलसी है काली देव-मंडन।।
स्याही है काली जिससे गीता लिखी जाती है।
चंचल काली भौंहे कितनी सुन्दर हैं।।
कितनी मधुर है काली कोयल की वाणी।
कितनी सुन्दर है काली पुतली।।
मूंग है काला पर पहले परोसा जाता है।
सारा है काला पर पितृ-श्राद्ध का भोग है।।
काली चुनरी है देवी की ओढ़नी।
देवी को छाया करती है काली छतरी।।
मेघ- रंगी काली- साड़ी पहनती हैं नारियां।
कितनी मधुर स्वर वाली हैं काली मैनाएं।।
काला हूं यह बात, तुमने कैसे कही?
सिर पर ब्रज टूटा हो, बात मुझे ऐसी लगी।"
इतना सुन राधा हो गई चुप।
कौन जीत सकेगा बातों में कृष्ण को।।

शगड़िआ गीत (गंजाम)

राम गले बनवास रे राम गले बनवास
चाल बाउटिआ चालरे बउळा जिबा अणवास कोश, रे बउळा।।
मठुआ बळदकु बाटत रगड़िआ
पकाइ जोड़ि चाल चालरे बउळा
भागे मिशिना शगड़िआ रे।।
अशोक बने रखिला रे
अशोक बने रखिला
सीता देबी कि दोष करिला
अहः अहः रे बउळा, बेळ त बुड़ि गला रे।
राम हनुकु पठाइ रे
राम हनुकु पठाइ
रह रह आरे गालुआ चांदिआ
एयेपरि चालु किपाई रे चांदिआ।।
सीतांकु जाइ भेटिला रे
सीतांकु जाइ भेटिला
मुदि जे देखाइला
रह रह रे चांदिआ, बाट त न कटिला रे।।
शगड़ बाहि गलि शगड़े नाहि काळि
दांड बाट थाइ भाउज देले गाळिरे।।
कअंळ कदंळी लहुणी रे भजा
कड़अंळ बयस रे दिअर, शगड़ बाहि न जा
शगड़ बाहिगले कि सुख पाइबु?
घरे थिला षोलबयषी तू काहाकु देइजिबु रे
घरे थिला सान हटिआ ता मूले कहि जिबि रे।।

पदम तोळा

कंसर घरणी पद्मावती राणी
करे धनितिरि ओषा
लक्षेभार पद्म देबु रे कन्हाई

गाड़ीवान का गीत

राम गये बनवास हे राम गये वनवास,
चल बउटिआ चल रे बउला, जाना है उनचास कोस। रे बउला—
बैल हैं मन्दगामी, रास्ता है पथरीला।
जोड़ी मिला कर चल, चल रे बउला।
आगे मिलेंगे गाड़ीवान, रे बउला।
अशोक वन में रखा था रे (रावण ने)
अशोक वन में रखा था
सीता देवी को बदनाम किया था।
जल्दी जल्दी चल रे बउला, दिन तो डूब गया।
राम ने हनू को भेजा रे,
राम ने हनू को भेजा
ठहर ठहर रे ढीठ चांदिआ,
तू ऐसे क्यों चलता है रे चांदिआ?
सीता से जा कर मिले रे,
सीता से जाकर मिले।
मुन्दरी दिखाई।
ठहर ठहर रे चांदिआ, राह पूरी नहीं हुई।।
गाड़ी हांक कर चल पड़ा, पर गाड़ी में तेल नहीं डाला।
घर के बाहर खड़ी भाभउी ने डांटा।
कच्चा केला, माखन से तला,
कच्ची उम्र में देवर तू गाड़ी न हांक,
गाड़ी चलाने से तू कौन सा सुख पायेगा?
घर में है षोडसी, किसे देकर जायेगा?
घर में है छोटा भाई हटिया, उसे बोल जाऊंगा।।

कमल- बीनना (संपेरा गीत)

कंस की- गृहिणी, पद्मावती रानी,
करती हैं धनतरी व्रत
एक लाख कमल देना रे कन्हाई

नथि ब पाकुड़ा मिशा कि गोबिन्द हरि।।
कंसर आदेशे पद्म तोळि गले
बनमाली कि गोबिन्द हरि।।
काळिंदी हदरे पशंति बनमाळी
श्रीपदे दंशिलाक काळी कि गोबिन्द हरि।।
बिषर ज्वाला रे ह्दय जल रे
श्रीकृष्ण पड़िले कि ढळि कि गोबिन्द हरि।
बळदेव आसि धइलेक तोळि कि गोबिन्द हरि
गरुड़ सुमरंते अमृत आणिलाक तोळि।।
अमृत सिंचंते बळदेव
उठिले बनमाळी कि गोबिन्द हरि।।

स्तुति गीत

प्रभु, किस बाहुनिबि चूळकु
चूळ सुन्दर दिशइ दूरकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि कपाळ
तिनि पुर लोक करे उजळ।।
प्रभु, किस बाहुनिबि भूलता।
तिनि पुर लोक जाक बिजिता।।
प्रभु, किस बाहुनिबि आखिंकि
आखि देखिले पातक थाइकि?
प्रभु, किस बाहुनिबि डोळाकु
डोळा सुंदर भ्रमर कळाकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि पाटिकि
जेहु षाठिये पउटि छाटिकि।।
प्रभु, किस बाहुनिबि गळाकु
गला सुंदर कदंब माळाकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि भुजुकु
भुज सुंदर दिशइ ज़ुझकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि हृदकु

एक भी पंखुड़ी न हो टूटी, ओ गोविन्द हरि।
कंस के आदेश पर, कमल बीनने,
गये वनमाली- श्री गोविन्द हरि।
वनमाला के कालिन्दी झील में घुसते ही,
श्रीपाद को कालिय नाग ने डसा, ओ गोविन्द हरि,
विष की ज्वाला से, झील के जल में,
श्री कृष्ण गिर पडे, ओ गोविन्द हरि।
बलदेव ने आ कर उठा लिया, ओ गोविन्द हरि,
गरुड़ को स्मरण करते ही, वह ले आया अमृत,
बलदेव के छिड़कते ही अमृत,
वनमाली हो गये सचेत, ओ गोविन्द हरि।

स्तुति गीत (वंदना)

प्रभु कैसे बखानूं कलश,
कलश सुन्दर दिखाई देता है दूर से।
प्रभु कैसे बखानूं भाल,
तीनों लोकों को जो करे उज्ज्वल।
प्रभु कैसे बखानूं भौंहें,
तीनों लोकों में जिनका बखान है।
प्रभु कैसे बखानूं आंख,
जिसे देखने से न रहे पाप।
प्रभु कैसे बखानूं पुतली,
पुतली है सुंदर, भौंरे से भी काली।
प्रभु कैसे बखानूं मुख,
असीम है जिनकी भूख।
प्रभु कैसे बखानूं ग्रीवा को,
जो सुंदर है कदंब माला से।
प्रभु कैसे बखानूं बांह,
जो युद्ध में सुंदर लगता है।
प्रभु कैसे बखानूं वक्ष,

हृद सुंदर चंदन लेपकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि पेटकु
मारकंड न पाइले भेटकु।।
प्रभु; किस बाहुनिबि अंटाकु
अंटा सुंदर कमर पटाकु।।
प्रभु, किस बाहुनिबि चरण
तिनि पुर लोकजाक शरण
मोते उद्धर देव नारायण।

बेहेरा झिअत्त मोहिंले दुध लो

बारि बेत बुदा। बेत चअंर लो
कुशांअ गहीर सर
गामुछा कानिरे। देलि खबर लो
दुधे पड़िनाई सर।।
गाई उठि गले। डगर बाटे लो
बाछुरी शोइले गोठे।।
बेहेरा झिअर। कि प्रकृति लो
कांदइ गाधुआ तुठे।।
घास खाइबाकु। जगा बळिआरे
बाट चालिबाकु हरि।।
दुध दुहिंबाकु। गेड़ी सुंदरी लो
ता चिर झमका नेळी।।
बेहेरा झिअत। मोहिंले दुध लो
दहिरे नाहिं लहुणी।।
गाई उठिगले। डगर बाटे लो
षंढ पिइ नाई पाणि।।
छतारे बांधि बईशी। नइले लो
छतारे बांधि बईशी।।
दूर बाट बोलि। भाई बइचि लो
अइला माळे मईषि।।

छाती सुंदर है चंदन लेप से।
प्रभु कैसे बखानूं पेट,
मार्कण्ड ने थाह न पाई देख।
प्रभु कैसे बखानूं कटि,
कटि पर सुशोभित है कमर पट्टी।
प्रभु कैसे बखानूं चरण,
तीनों लोकों के हैं वे शरण।
मेरा उद्धार करो नारायण।।

ग्वालिन का दूध बिलोना

बाड़ी के बेंत की बनी में खिले है चंवर
कुशांग में है गहरा सरोवर,
गमछा के छोर से भेजा है संदेश,
दूध में मलाई अभी पड़ी नहीं है।
गाय चढ़ गयी पहाड़ी राह पर
बछड़े सोये हैं गोठ में
ग्वाले की छोरी है कैसी
रोती है नहाने में घाट पर।
घास खाने में है जगा व बलिआ,
बाट चलने में है हरि,
दूध दुहने में है ठिगनी भली,
उसका धुन है बरसती नली।।
ग्वाले की बेटी बिलोती है दूध,
दही में होती नहीं लवनी।
गाय चढ़ गयी पहाड़ी राह पर,
सांड़ नहीं पीता पानी।
छतरी में बांध के बांसुरी ले गये,
छतरी में बांध बांसुरी,
पंथ दूर, भाई चिंतित,
दलदल में है भैंसों की टोली,

माईआ गउड। भला नइले लो
गाईआ गउड़ भला।।
मईंषिआ गउड़। महा पापिआ लो
छता तळे दिन गला।।

कांदणा गीत

थाळी मारि देले छउल पाणि हे बोउ
दूर देश बंधु के जिब आणि हे बोउ
दूर देश बंधु करिच हाते हे बोउ
से फूल फुटइ चइत राते हे बोउ
फूल मउळइ खरा तेजकु हे बोउ
झिअ मउळइ कथा पदकु हे बोउ
दुब बदुथिला काकर खाइ हे बोउ
मुं त बदुथिलि तो स्नेह पाई हे बोउ
दुबुक काकर सहिला नाई हे बोउ
मो अलिअळत रहिला नाई हे बोउ
नंडा बरगछ दंडा कु छाइ हे बोउ
मोर कपाळकु बापा त नाई हे बोउ
आकाश रे तारा जोड़िकि जोड़ि हे बोउ
आजि जिबि मुं गोपपुर छाड़ि हे बोउ
उठिता सवारि बसिला नाई हे बोउ
आउ गोपपुर दिशिब नाई हे बोउ
आमे लगाइलु फूल जागर, माआ मो आमे सुना सागर
फूल शुखिगले माळीर जिब माआ मो आमे सुना सागर
आमे शुखिगले माआ कांदिब माआ मो आमे सुना सागर
कंढेइ खेळ त बापा भांगिले माआ मो आमे सुना सागर
सात तुठ पाणि बापा चाखिले माआ मो आमे सुना सागर
जोउ तुठ पाणि निम जहर माआ मो आमे सुना सागर
सेई तुठ पाणि कले आहार माआ मो आमे सुना सागर

मारुआ ग्वाला नहीं है अच्छा,
गायों का चरवाहा है भला,
भैंसो का रखवाला है महापापी,
छतरी मीचे काटे उमरिया।

रुदन गीत

(लड़की जब पहली बार पीहर छोड़ कर ससुराल जाती है, तब गाती है)

थाल को मारने से छलके पानी- ओ मां,
दूर देश में बंधु- कौन जायेगा लाने- ओ मां।।
दूर देश से बांधा है नाता।
खिलता है फूल चैत की रात।।
फूल मुरझाता है तेज धूप से।
बेटी मुरझाती है- एक बात से।।
दूब बढ़ती है ओस पा कर।
मैं बढ़ रही थी, तेरे प्यार में।।
ओस को दूब ने नहीं सहा ओ मां।
मेरा अल्हड़पन सहा न गया ओ मां।
ठूंठा बरगद करता है धरती को छांह ओ मां !
मुझ अभागिन का बाप नहीं है, ओ मां !
आकाश में चमके तारों की जोड़ी, ओ मां !
आज चली मैं गोपपुर छोड़ कर, ओ मां !
उठ गई सवारी, बैठेगी नहीं, ओ मां !
फिर गोपपुर दिखेगा नहीं, ओ मां !
हमने लगाया है फूल जागर
हम हैं मां के सोने का सागर
फूल सूखने पर माली खा जायेगा।
हम सूखेंगे तो रोयेगी मां।
गुड़ियों का खेल बापा ने तोड़ा,
सात घाटों का पानी बापा ने चखा,
जिस घाट का पानी था नीम कड़वा,

आजि एतेबेळे बाउन हजारे तेपन घड़िरे माआ मो आमे सुना सागर
राजा नअर रे राणी हंसपुरे सखींक मेळरे मुं बसिथिलि लो बोउ
कालि एतेबेळे मालूयाणी फान्दरे कंस बंदी घरे
केळा कुहुक रे जम जउशाले अमुंहा देउळे
मुं पड़िथिबि लो बोउ।

नाउरिआ गीत

अथळ नईरे पथर कलि भेळा
साहा होइथिबु माआ लो मंगळा
शून्य रे जिब भेळा हो।।
आरे नई जे नअ बांक पोखरी समतुल
कुजि लहरीरे भासि त जाउचि
अदिन लाउ फूल रे।।
अदिन लाउ फूल न ये त न ये जाउ
कलरेई फूल केड़े जे सुढळ
जवाब देइ जाउ हो।।
काटिलि कदळी भसाइ देलि भेळा
केउं द्वीपांतरे त एकोइर बळा हो
कि गीत गाइलु नाआ मंगे बसि
कान पारिथिब षोळ बरषी
चाऊळ धोइ आसि।।
राधिका दूतिका पाणिकि धउरिआ
धाउं धाउं बेळ बुड़े रे
नाहुं कि नाउरिआ?
अछि मुं बनमाळी
ददरा नाबकु लो रखिचि सजकरि
आग मंग ठारु पछ मंग भारि
मझि मंगे बस माई जे राधिका
पारि त करि नेइ जमुना कुळे ठिआ
पारि कराइ मूल त मागुछि बिनोदिया हो।।

उस पानी का पान बापा ने किया।
आज अभी बावन हजार तिरपन घड़ी में,
राजमहल में रानी के अन्तःपुर में, सखियों के संग में बैठी हूं,
कल इस समय मालिनी फंदे में बंधी, कंस कारागार में,
संपेरा के जादू टोना में फंसी जमके अमुहे लाख घर में पड़ी रहूंगी।

मांझी गीत

अथाह नदी में पत्थर की मेरी नाव
रक्षा करो मां मंगला,
निराधार चलेगी नाव।
अरे नदी में नौ मोड़, पोखर समतल,
लघु लहरी में बहता जा रहा है,
बैमौसम लौकी का फूल।
बेमौसम लौकी का फूल जाता है तो जाये,
कलरेई फूल प्रेमिका कितनी सुडौल,
अपना संदेशा देती जाये।
काटा कदली गाछ बहा दी डोंगी,
कौन द्वीप खंड में है इकलौता बेटा?
किसने गीत गाया, बैठ नाव के सिरे पर,
कान लगे होंगे षोडसी के इधर,
चावल धोने को आकर।
राधिका दूतिका गई हैं नदिया
दौड़ने में ही दिन डूब गया,
ओ मांझी? नहीं हो क्या?
हूं मैं वनमाली
टूटी फूटी डोंगी रखी है तैयार,
आगे के सिरे से पीछे का सिरा है भारी
बीचों बीच बैठो मामी- ओ राधिका,
पार उतार, खड़े हैं जमुना तट पर,
उतराई मांगते हैं नट नागर।

बापा थाआंते

बापा थाआंते,
अंटा चिह्न करि कना दिअंते।
भाइ थाआंते,
छता बाड़ि धरि छाड़ि जाआंते
खुड़ी थाआंता,
बाड़ि द्वारे बसि कांदु थाआंता।
माआ थाआंता,
बुजुळा बुजुळि बांधि दिआंता।।
जेजी थाआंता,
पारिआणी बेश काढ़ि दिआंता।
आई थाआंता,
पोड़ा खुंटा धरि तड़ि निअंता।

कि करिबा अेथर?

मुंडिआ उपरे मिरिग लो
किये मिरिग नचउछि,
तेली घर झिअ माणिक
सिए पाणिकि पठउछि।।
रजाघर झिअ साधब सिए माठिआ तुछउछि
अनंता हळ बुलउछि,
ताटि कणे जोउ खेतरा सिए ठेंगा उंचउछि
शुंढि घर दुआर लो मृग धाड़ि धाड़ि
शुंढि घर बसिअछि निश मोड़ि मोड़ि।।
शुंढि घरे दुइजण बयसरे सान
कि चिता कुटाइलु लो महिपाळ धान।।
महिपाळ धान किलो उड़िला केशर
बुढ़ा आगे बुढ़ी कहिला कि करिबा एथर।

यदि वे होते?

बापा होते,
        सुंदर कपड़े बनवा देते।
भाई होते,
        ताम झाम से छोड़ने जाते।
चाची होती
        बाड़ी द्वार पर रोती होती।
अम्मा होतीं
        गांठ गठरी बांध देतीं।
दादी होतीं
        भड़कीली पोशाकें देतीं।
नानी होतीं
        मुराड़ा लेकर खदेड़ देतीं।

क्या करें अब?

टेकड़ी पर है मिरग,
        मिरग कौन (नचाता) है?
तेली की लड़की मणिक,
        वह पानी लाने जाती है।
राजकुंआरी साधव गगरी खाली कर देती है,
        अनंता हल चलाता है।
टाट के कोने से खेतरा लाठी दिखाता है,
कलाल के द्वार पर मिरगों की कतारें।
कलाल बैठा है ताव देकर मूछें,
कलाल के यहां दो हैं आयु में छोटे
कौन सा गोदना, गोदवा लिया ओ महिपाल - धान?
ओ महिपाल, धान उड़ रहा केशर?
बूढ़ी कहे बूढ़े से क्या करें अब?

मते झुरुथिबु

उम्बु उन्बु पिंडारे लो देइ गलि झुटि
कि माड़ माइल स्वामी फाटिगला पिठि
तम भात तम तुण नाईं लोड़ा मोर
छाड़ पत्र खंडे देले जिबि बापघर... ।।
बाप घर जाइ नारी कि सुख पाइबु?
दत्र पलंक रे शोइ मते झुरुथिबु ।।

हे मोर गळार हार

रसर केलि बो
कुल शील तेज्या कलि तुंभर निमंते
कऊंल बयसे कळा कान्हु बाइ कलु मते
खुसा गोटि खोसिथिलि दिने मल्ली फूले
खिआल क्ररिण कान्हु धरिथिलि कोले
झाळ गमगम बुहे तागर, पड़िगलि भुले
रस दे चाहालि रे।
गंठि सुना गला हार नंदर कन्हाई
ज्ञान हजिगला मोर बुद्धि दिशुनाईं
टपा मारि मारि मोर देह शेष होई
ठाकुराणी पादे पड़ि नागर नेइजा न दहि
रस दे चाहालि रे।

सुंदर (संबलपुर)

चुट्कि फुटा गुनिआ सुंदर बओदि कले लहेले
दूरे थिले बंधु सुंदर कुटुंब कले सहेले।।
मुडर सुंदर दलिआ खुसा काली दिहे सुना
गुरी दिहे अएन सुंदर जदिरि थिले बना।।
बंध पाएन के जगल सुंदर माछके सुंदर तुड़ा

मुझे बिसूरना

"ऊंचे ऊंचे वरामदों पर मैंने की रंगोली,
तुमने कैसा मारा स्वामी फटी पीठ मेरी।।
तुम्हारा भात, तुम्हारी दाल, नहीं मुझे चाहिए,
तलाक दे दो, जाऊं मैं पीहर अपने।"
"पीहर जाकर नारी, कौन सा सुख पायेगी,
शाही पलंग पर सोयी मुझे बिसूरेगी।"

ओ मेरे कंठहार

रास लीला की,
कुल-शील त्यागा मैंने तुम्हारे लिए
कच्ची उम्र में बौराया तूने मुझे,
एक दिन जूड़े में लगाया था मोगरा,
बड़े जतन से तुझे गोद में लिया था
पसीने से थी मैं नहायी,
भूल से बहकी मैं तुम्हारे प्यार में,
अंचल-धन कंठहार नन्द के कन्हाई,
बुद्धि मारी गयी मेरी, सूझता कुछ भी नहीं।
चिंता में मेरी देह है छीज रही।
देवी के चरणों में हूं मैं पड़ी।
उठा लो, पर न जलाओ।
या फिर एक बूंव रस बरसा दो।

सुंदर (हमें क्या पसंद है?)

चुटकी में जो जादू दिखाये, ऐसा जादूगर,
ऐसां वैद्य जो, रोग करे दूर।
सुदूर- प्रवासी बंधु सुंदर,
मुखिया रखे ख्याल, सभी का ऐसा परिवार,
सिर पर ढीला टेढ़ा जूड़ा, सांवली देह पर सोना,

बाहालि जमीन के बड़ा सुंदर उपरे थिले मुडा।।
आषाढ़ मास के बरष सुंदर हलिआ सुंदर गीते
खरा मास के अंगठि सुंदर कलम सुंदर हाते।।
पद् बसुले गीतर सुंदर परजा सुंदर खेते
दिनर बेले बेलु सुंदर जन सुंदर राति।।
मुनुष थिले माओझी सुंदर अजाके सुंदर नाति
धान् बुनले खेतर सुंदर डंगर सुंदर गछे।।
पान खायेले मुंहर सुंदर हाकिम सुंदर मेचे
फूल बने भअंर सुंदर राएज के सुंदर रजा
आम बने कुइलि सुंदर बाएदें सुंदर बजा।।
अर्थ—चुटकि फुटा आंगुठि टिपरे शब्द करिबा
बएदि बैदगिरि लहेले काटु कले मुड मुंड
ढलिआ—जोउ खोसा गोटिए आड़्कु ढलिथा ए
पाएन - पापि, जगल - शिउळि तुडा - सुअ
तोड़, मुड़ा - बंध, अंगूछि - गामुछा, डंअर - पहाड़, मेच-मेज

ढग ढमाळि

1. पर लुगा पिन्धि जातकु जाए
पचारिले मुंड टुन्गारु थाए।
2. पुअ केते करुथाइ चातर
बाप बिकुथिला चिन्गुड़ि शुखुआ
माआ बिकुथिला पतर।
3. कहि देउ थाइ परकु
बुद्धि न दिशइ घरकु।
4. घुषुरि कि काहिं पाचिला कदळी
अंध हाते रत्न मुदि
पेचा चढ़ेइकि सुबर्णपुंजरी
कोरड़ सुमरि कांदि।
5. मळु खोजुथिला पइड़ पाणि
बदइ कहिला दे तोराणि।

गोरी देह होती सुंदर यदि होती गरिमामय,
तालाब के पानी में काई सुंदर
मछली से सुंदर स्रोता,
बाहरी जमीन है अति सुंदर, यदि है ऊपर बांध,
आषाढ़ माह में बरखा सुंदर, हलवाहा सुंदर गीत में।
गरमी में गमछा सुंदर कलम सुंदर हाथ में,
छन्दोबद्ध गीत सुंदर, किसान सुंदर खेत में,
दिन में लगता सूरज सुंदर, चंदा सुंदर रात में।
पुरुष हो तो स्त्री सुंदर, नाना सुंदर नाती के साथ,
धान बोने से खेत सुंदर, पहाड़ सुंदर पेड़ों से।
पान खाने से मुख सुंदर, हाकिम सुंदर मेज पर।
फूल की बगिया में भौंरा सुंदर, राज सुंदर राजा से।
आम के कुंज में कोयल सुंदर, ढोल सुंदर बाजों में।

लोकोक्ति और मुहावरे

1. मंगनी का कपड़ा पहनकर मेला जाय
और पूछने पर मुंडियां हिलाए।
2. बेटा दिखाये कितनी चतुराई?
बाप बेचता था सूखी झींगी मछली,
मां बेचती थी पतरी।।
3. राह दिखाये दूसरे को,
बुद्धि नहीं है घर को,
4. सूअर क्या जाने पका केला,
अंधे के हाथ में रत्न मुद्रिका,
उल्लू के लिए स्वर्ण पिंजरा,
जो खोह की याद में रोये।
5. मरीज चाहे इरे नारियल का पानी,
वैद्य कहे दो बासी चावल पानी।

6. असती भुंजइ पलंक सुपाति
कुळबती हुए दासी
द्वार द्वार होइ बिकाए गोरस
मद बिका जाए बसि।।

7. आळु पतर कि सारु पतर
से कि हुअइ पान?
जाहाकु ताहाकु भारिजा करिलें
से कि जाणिब मन?

8. अति गेल्हा पुअ मन मुटिआ
अति गेल्हा झिअ दांडरे ठिआ।

कृषि वचन

1. आग जार पाग तार
2. आपणे चाप पूरा चाष
परे चाष अधा नाश
3. चषा, लक्षे जीव पोष
4. अळप चाष कुटुंब पोष
बहुत चाप सर्वनाश

नां दिया

1. गछटि लंडा
उपरे बसिठि फकीर पंडा - चुली उपरे हांडि बसिछि
2. बग बसिछंति धाड़ि धाड़ि
कृष्ण बसिछंति एका - दांत ओजिभ
3. परुड़ि मशिणा पड़िचि केहि शुअइ नाईं — आकाश
4. वहुत फूल त फुटिचि केहितोळइ नाईं — तरा
5. सुबर्ण पइता छिण्डिले गईंठाए कि केहि? — बिजुळि
6. मरि पडिछंति राजन केहि कांदइ नाईं — जह्न बुडिबा
7. रंग रंगता, पाणि देः गठ मरिजाआंता — निआं

6. कुलटा भोगे मखमली पलंग,
सती होती है दासी,
गली गली घूम, दूध बिकता है
मदिरा बैठे बिठाये बिक जाती है।।
7. आलू की पत्ती या अरबी की पत्ती,
क्या वे हो सकती हैं पान?
जिस तिस को पत्नी बनाने से,
क्या वह समझ सकेगी मन?
8. लाड़ला बेटा होता है हठी
लाड़ली बेटी राह पर खड़ी।

कृषि-वचन

1. पहले बोये, ज्यादा पाये।
2. अपनी खेती, पूरी खेती।
पराई खेती, आधी आधी।
3. किसान जीये जहान।
4. छोटी खेती, कुटुंब पाले।
वड़ी खेती, सबको नाशे।।

पहेली (या बुझौवल)

1. पेड़ है ठूंठा,
ऊपर बैठा है फकीर पड़ा। (चूल्हे पर हंड़िया)
2. बगुले बैठे हैं पांत पांत,
कृष्ण बैठे हैं एकान्त।। (दांत और जीभ)
3. चटाई है बिछी, पर कोई सोता नहीं। (आकाश)
4. असंख्य फूल, खिले हैं कोई तोड़ता नहीं है। (तारा)
5. सोने के जनेऊ टूटे तो कोई उसे कैसे गांठे? (बिजली)
6. मरे पड़े हैं राजन, करता कोई नहीं रोदन (चांद का डूबना)
7. पेड़ है हरा भरा पानी पाकर मर जाय (आग)

8. वृक्षाग्रवासी न च पक्षिराजः
अंबु बहिंत न च मेघमाळा
त्रिनेत्र धारी न च शूळपाणि
कळ कळ धारी न च रामचंद्र – नडिआ

9. टिकि बाछुरी बेकरे पघा – छुन्चिरे सूता गळाहोइछि

आदिवासी गीत

सउरा गीत –

जौबन खजुरि कोळि
छोट छोट खजुरि कोळि परि सुंदर
एक मात्र भावना मो मने तार कथा
संगे तार करंति कि केलि !

बंडा परजा गीत –

विंदु बिंदु अंधकार झरे
नाचइ बिजुळि कंदररु गिरि शिख
चक् चक् तरवारी परि।
कि अबोध्य मंत्र पढ़ि पढ़ि
बन्या आसे
वन भूमि थरे
बज्र संगीतर ताळे
पाहाडु पाहाड़े वर्षा जेह्ने झरे
सोदामाळी नर्का गिरि अंवरे।

भूमिया गीत –

पुरुष – मेघ उपरे मेघ कचाडि होइ पड़े
कोउठु ये वर्षा झरे?
तुमे थिले एतेबेळे
होइथांत मो जौवन मणि

स्त्री – मणि बंधे कळा का च
बाहुरे बाहुटि
पाशे थिले तुमे
न हुअंता भोक
प्रीति लागि शोष मोर

8. वृक्ष वासी, नहीं है विहग,
अम्बु-धारी, नहीं हैं बादल,
त्रि-नेत्र धारी नहीं हैं शिव,
वल्कल-धारी, नहीं है राघव। (नारियल)

9. नन्हीं बछिया, गले में है लंबी पट्टी (सुई-धागा)

आदिवासी गीत

सजर गीत

जवानी, खजूर की, बेरी
नन्ही नन्ही खजूरी-बेरी की नाईं सुंदर,
उसकी-बात ही, एक भावना है मेरे मन में,
कैसे करूं उसके संग केलि मैं?

बंडा परजा गीत

बूंद बूंद टपके अंधेरा,
नाचती बिजली, गिरि शिखर-कंदरा।
लक-झक तरवारी की नाईं।
कौन अबूझ मंत्र पढ़ कर,
आंधी आये
बनानी थरथराये।
वज्र- संगीत की लय पर
पर्वत पर्वत वरसे पानी मूसलाधार,
सादामाली, नर्का गिरि अंबर।

भूमिया गीत

पुरुष- मेघ पर मेघ उमड़े,
कहां से यह पानी गिरे।
तुम होते यदि अभी,
होते मेरे यौवन मणि।

स्त्री- कलाई पर काली चूड़ी,
बाहों पर बाजूबंद,
पास यदि होते तुम
नहीं होती भूख,
प्रीति की प्यास है मेरी।

मुण्डारी गीत–

1. जुडम् कुसुम फुटे दिवारी गाआंरे
चंपक कुसुम फुटे सुरमाली माआंरे
जुडम् कुसुम नयें शिशिरर भारे
नचाय सुरमाली चंपा पबन उत्ताळ
गुन्थि हुए सरळ बा बक्र एक हार।

2. धळा धळा मल्ली फूल
तुम बगिचारे जेबे चक चक करे
बणुआं भअंर सबु सते बा आसंति तार डाके
फूल जेबे मउळहू उडइ बासना
उभाइ जाआंति दूरे काहिं से भअंर।

3. लाल् अळता तुम पादरे
हळदि चिह्न तुम पापुलिरे
कोउठि लगाइल ए अळता
कोउठि लगाइल ए हळदि
कह सत करि
जाइथिल काहा पुरे?

4. माघ मास आसे जाअे
जिबाकु त आसिथाअे
आसिबाकु पुणि पुणि
काहिं तुमे जाइअछ सखा?
फलूसा होइछि छिडा फूल भरा
कअंळ पतरे भरा होइछि महुल
माघ त आसिब पुणि
काहिं तुमे जाइअछ सखा
सखा मोर?

मुंडारी गीत

1. जुडम-कुसुम खिले दिआरी गांव में,
चंपक-कुसुम फूले, सुरमाली गांव में,
जुडम कुसुम झुके शिशिर भार से,
सुरमाली चंपा नाचे, पवन झकोर से।
गूंथ जाये सीधा या टेढ़ा एक हार।

2. सफेद सफेद मोंगरा,
तुम्हारे बाग में जब चमचमाये,
जंगली भौंरे मानो आते उसकी बोल से,
फूल जब मुरझाये, उड़ती सुगंध,
तब दूर चले जाते क्यों वे भौंरे?

3. लाल आलता तुम्हारे पैरों में,
हल्दी- दाग तुम्हारी हथेली पर,
कहां लगाया यह आलता,
कहां लगाई यह हल्दी,
सच बोलना,
गये थे किसके पास?

4. माघ-माह आये जाये,
जाने को आता है,
आने को बार-बार
तुम कहां गये हो सखा,
फालसा खड़ा है फूलों से लदा,
कोमल पत्तियों से भरा है महुआ,
माघ तो आयेगा फिर से,
कहां तुम गये हो सखा,
ओ सखा मेरे।

ओरां गीत

1. धान जेतेबेळे पाचे
दळ दळ पारा आसि जमंति
बढ़िला झिअटिए मोघरे
आसंति दळ दळ बंधु कुटुंब
दूररु बहुत दूररु
धान जेतेबेळे पाचे।

2. कमळा लेंबु गछ फळ भरा
कोमळ आउ चिक चिक दिशे
कंचा, पाचिला आउ दर पाचिला फळरे
पाचिला त मिठा लागे
कंचा लागे खटा
अधा अधा पाचिचि जे किछि किछि खटा आउ मिठा।

3. घरे जेते गाळि देबु दे
बोउ, आखड़ारे थिला बेळे
दे नाहिं गाळि
मो समबयसी सांग सरिशांक आगे
गाळि देले काटे मोते भारि।

4. फूल सबु झड़ि पड़े वर्षा असरारे
धूळिर उपरे
से सबु गोटाइ घेनि झिअटिए चळे
वंधु लागि
कूअ मूळे, बंधुकु भेटिला परे
तिन्ते निजे वर्षा असरारे
अगणा रे
न आसे भितरे।

उरांव- गीत

1. धान जब पकता है
झुंड के झुंड परेवा आ बसते हैं,
एक बड़ी लड़की है मेरे घर में,
आते हैं दल के दल नाते- रिश्ते,
दूर से बड़ी दूर से,
धान जब पकता है।

2. संतरा व नीबू के गाछ हैं फलों से लदे,
कोमल और चकमक दिखाई पड़े।
कच्चे, पके और अधपके फलों में,
पके हुए मीठे लगते हैं,
कच्चे लगते हैं खट्टे।
अधपके होते हैं थोड़े थोड़े खट्टे व मीठे।

3. घर में चाहे जितनी गालियां दे ले, मां !
अखाड़े में जब रहूं,
नहीं देना गाली,
मेरे हम उम्र संगी- साथियों के आगे,
गाली देने से लगती है चोट बड़ी।

4. फूल झड़ पड़ते हैं वर्षा होने पर
धूल पर,
एक लड़की प्रिय के लिए
ले जाती हैं उन्हें बटोर कर,
कुएं के पास, प्रिय से मिलने पर,
वर्षा से भीगती है,
आंगन में,
नहीं आती भीतर।

कुछ लोककथाएं

(1) कौआ और कड़वी लौकी

एक समय की बात है कि एक विधवा ब्राह्मणी को एक दिन सवेरे अपना आंगन झाड़ते हुए कड़वी लौकी का एक बीज मिल गया। उसने धरती खोदी और मन में यह सोच कर उस बीज को बो दिया कि यदि वह दूसरे दिन नहीं लगता है तो उसे वह अपने चाचा की छुरी से काट डालेगी। बड़े आश्चर्य की बात है कि बीज दूसरे दिन उग आया। विधवा ने बीज को यह कहते हुए फिर आगाह कर दिया कि यदि दूसरे दिन तक वह अच्छी तरह से नहीं बढ़ा तो वह उसे अपने चाचा की छुरी से काट डालेगी। दूसरे दिन भरी पूरी लहलहाती बेल को देख उस महिला को सचमुच आश्चर्य हुआ। अंत में उस बेल को अगले दिन ही फूल और फल लगने के लिए, अपने चाचा की छुरी से काट डालने का डर बताते हुए आगाह किया। उसे लता में दूसरे दिन बहुत से फूल लग आये परंतु केवल एक फल ही पका और वह इतना लुभावना था कि एक कौआ उतर आया और खाने के लिए लौकी की बेल पर बैठ गया।

इस पर उस लता ने यह कहते हुए आपत्ति प्रकट की कि कौआ अत्यंत गंदा पक्षी है और वह सबसे गंदा पदार्थ खाने का आदी है। अतः कड़वी लौकी को छूने से पहले उसे अपनी चोंच कुएं के पानी से धोनी चाहिए।

तब कौआ एक कुएं के पास गया और कहने लगा–

"कुएं कुएं मुझे पानी दे
मुझे अपनी चोंच धोने दे
और कड़वी लौकी खाने दे।"

कुएं ने उत्तर दिया-

"जाओ घड़ा ले आओ
पानी मेरा भर लो
चोंच अपनी धो लो
और लौकी खा लो।"

कौआ तब एक कुम्हार के पास गया और कहा–

"कुम्हार कुम्हार मुझे बर्तन दे
कुएं से मुझे पानी भरने दे

चोंच को अपनी धोने दे
और कड़वी लौकी खाने दे।"

कुम्हार ने कहा- "मेरे पास अभी कोई तैयार घड़ा नहीं है। मुझे बनाना पड़ेगा। चूंकि यह तुम्हारा अपना कार्य है अतः उसके लिए कुछ मिट्टी तुम्हें लानी होगी। तभी मेरे लिए घड़ा बनाना संभव होगा।" तब कौआ धरती के पास गया और बोला-

"धरती धरती माटी दे,
घड़ा बनाए कुम्हार जिससे,
मुझे पानी भरने दे
अपनी चोंच धोने दे,
और कड़वी लौकी खाने दे।"

धरती ने कहा, "मैं अपने आप तो खोद नहीं सकती हूं। मैं कहीं जा भी नहीं सकती हूं। तुम किसी हिरण के पास जाओ और उससे उसका सींग मांग लाओ। तब तुम धरती खोद सकोगे। और कुम्हार के लिए मिट्टी जुटा सकोगे।"

कौआ एक हिरन के पास पहुंचा और उसकी सहायता मांगी। हिरन ने कहा—"क्या तुम्हें यह नहीं दिखता कि मैं कितना कमजोर हूं। धरती खोदना बड़ा कठोर काम है जिसके लिए पहले मैं खूब ताकतवर बनूं, यह जरूरी है। अतः मुझे गाय का दूध खूब पीना होगा। जाओ मेरे लिए गाय का दूध ले आओ। तब मैं तुम्हारी सहायता कर सकूंगा।"

कौआ उड़ गया और उसके सौभाग्य से उसे खेत में एक काली गाय चरती हुई दिखाई दे गयी। कौए ने गाय से कहा—

"काली गैया, काली गैया, मुझे दूध दे
हिरन पिये और ताकतवर बने,
मेरे लिए माटी खोदे
घड़ा बनाये कुम्हार जिससे
मुझे पानी भरने दे
अपनी चोंच धो लेने दे
और कड़वी लौकी खाने दे।"

गाय ने कहा—"क्या तुम्हें यह नहीं दिखाई देता कि यह जमीन कितनी बंजर है। यहां घास नहीं उगती। मैं खेत की धूल चाटती रहती हूं। इससे मेरी भूख नहीं मिटती। मैं अपने मालिक के डर से दूर खेतों में नहीं जा सकती। इसलिए जाओ और मेरे लिए कुछ घास ले आओ। मैं उसे खाऊंगी और तभी तुम्हें दूध दे सकूंगी।"

कौआ फिर भी इन कठिनाइयों के कारण निराश नहीं हुआ और घास की तलाश में उड़ गया। बहुत दूर उसने मक्के के एक खेत की मेड़ पर बहुत सी घास उगी हुई देखी

और कहा—

"मेड़ मेड़ मुझे घास दे
गाय को उसे खाने दूं
वह मुझको दे देगी दूध
दूध हिरन को पीने दे
सींग उधार मुझे लेने दे
जिससे हिरन धरती खोदे
घड़ा बनाए कुम्हार जिससे
कुआं मुझे पानी भरने दे
अपनी चोंच धोने दे
और कड़वी लौकी खाने दे।"

मेड़ ने कहा, "ठीक है घास मेरे ऊपर जमी है। मैं किसी दूसरे के लिए खुद तो उसे नहीं काट सकती। तुम भी अपनी चोंच से उसे नहीं काट पाओगे। इसके लिए तुम्हें हंसिया लाना होगा। तुम किसी लुहार के पास जाओ, वह तुम्हारी सहायता अवश्य करेगा।"

कौए ने देखा कि लुहार बड़ा व्यस्त है। परंतु उसे, उसके काम में खलल डालना ही पड़ा क्योंकि उसे एक जगह से दूसरी जगह मारा मारा फिरना पड़ा था जिससे वह थक गया था, साथ ही साथ भूख भी तेज हो चली थी। उसने लुहार से कहा—

"लुहार लुहार मुझे हंसिया दे,
मुझे घास काटने दे,
गाय को घास खाने दे,
और मुझे दूध लेने दे,
हिरन को दूध पीने दे,
कुम्हार को घड़ा बनाने दे,
पानी मुझको भरने दे,
मेरी चोंच धोने दे,
और कड़वी लौकी खाने दे।"

लुहार बहुत दुष्ट प्रकृति का था और उस पक्षी की धृष्टता पर बड़ा नाराज था, जिसे जीवन का कोई अनुभव नहीं था। वह उसे सबक सिखाना चाहता था।

परंतु लुहार बड़ा चालाक था। वह बड़ी सौजन्यता से पेश आया। उसने हंसिये को जलता हुआ लाल बना दिया और कौए से कहा- "ले जाओ।" सरल कौआ उसकी इस कुचाल को समझ न पाया और वह उस तेज गर्म लाल हंसिये को ले चला, जिससे उसकी चोंच जल गयी। वह मर कर गिर गया।

यहीं पर कहानी खत्म होती है और लो, वह लता भी मर चुकी है।

गांव का ठग, शहर का ठग और ठगों का सरदार

अंधेरी रात आधी गुजर चुकी थी। एक गांव का ठग और शहर का ठग दो तरफ से आये और एक पेड़ के नीचे मिले। गांव के ठग के सिर पर चूने का गट्ठर था और शहरी ठग राख का एक बोरा लिये था। गांव के ठग ने कहा "दोस्त, तुम क्या ले जा रहे हो।" शहरी ठग ने कहा 'मेरे बोरे में कपूर है।' उसने भी गांव के ठग से, उसके बोझ में क्या है, इसके बारे में पूछा। गांव के ठग ने कहा कि 'मेरे पास कौड़ियों का गट्ठर है। क्या तुम्हें कुछ चाहिए।' शहरी ठग ने पूछा 'क्या तुम इसके बदले में यह कपूर ले लोगे। दोनों इस प्रस्ताव से सहमत हो गये और उन्होंनें अपने अपने बोझों की अदला बदली कर ली।

गांव के ठग ने अपनी पत्नी से बड़ी खुशी खुशी कहा- 'देखो, मैं कितना होशियार हूं। मैं चूने के बोरे के बदले में यह कपूर ले आया हूं।' शहरी ठग ने भी अपनी पत्नी को बताया 'इस दुनिया में बहुत थोड़े से बुद्धिमान लोग हैं। मैं उनमें से एक हूं। तुम्हें आश्चर्य होगा कि मैंने उस बेवकूफ को ठग लिया और उसकी कौड़ियों का यह बोझा ले आया हूं। जब उसे यह मालूम होगा कि मेरे बोरे में कोई मूल्यवान वस्तु नहीं है तो वह सदमा खाकर मर जायेगा। उसे मरने भी दो, किसी मूर्ख के जीवन का मूल्य भी क्या है।'

इन दोनों ही परिवारों में बच्चे यह देखने को उत्सुक हो रहे थे कि उन बोरों में क्या रखा है। जब उन्होंने चूने का पत्थर व राख देखी तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उन दोनों ही ठगों के चेहरे अपने अपने घर में पीले पड़ गये। दोनों की बीबियों ने उनको यह कहते हुए लताड़ा, "लानत है तुम जैसे बेवकूफों पर, क्या तुम्हें अपनी नासमझी पर कोई शरम नहीं है।"

वे दोनों शरम के मारे अपना मुंह भी नहीं खोल सकते थे। दूसरे को ठगने के चक्कर में वे दोनों ही ठगे गये थे। इसके लिए वे किसे जिम्मेदार ठहरायें। यह भी संभव है कि होशियार आदमी भी विशेष परिस्थितियों में ठगा जाये।

एक दिन वे किसी बाजार में मिल गये तो वे एक दूसरे को देखकर अपनी हंसी नहीं रोक सके। एक ठग भी दूसरे ठग का मित्र हो सकता है। इसलिए उन्होंने यह तय किया कि वे आगे कभी एक दूसरे को नहीं ठगेंगे और एक दूसरे को अपने हाथ से महाप्रसाद खिलाकर परस्पर मित्रता के बंधन में बंध गये। शहरी ठग ने खुश होकर कहा— 'अब हमें दुनिया में कौन ठग सकता है।' जहां कहीं भी बहुत से लोग जमा हों हम उन्हें ठग

सकते हैं। अब हम बाजार, भीड़-भाड़ वाले मेलों और शहर की सड़कों पर हमला कर सकते हैं। आज के बाद स्नान करने के घाट और ये पवित्र मंदिर तक सुरक्षित नहीं रह पायेंगे।

'पैसा, रुपया और सोने के जेवर और जवाहरात ही नहीं, हम लोग तो ब्राह्मण के माथे पर से चंदन का टीका और महिलाओं की आंखों से सुरमा तक चुरा सकते है।'

ऐसी डींगे मारते हुए वे चल दिये। वे एक बुढ़िया के घर पहुंचे। बुढ़ापे के कारण उसकी कमर झुक गयी थी और डंडे का सहारा लेकर ही वह चल सकती थी। दोनों ठगों ने अपना मतलब गांठने के लिए गांव वालों से उसके जीवन के बारे में जानकारी ले ली थी। तब वे उस बुढ़िया के पास गये, उसे प्रणाम किया और कहा, 'बुआ जी तुम अपने विवाह के बाद हमारे यहां कभी आयी ही नहीं। हमें इसका बड़ा दुख है कि तुम्हें अपने कुटुम्ब की कोई परवाह नहीं है। परंतु हम तो तुम्हें भूले नहीं हैं। हम लोग तो तुम्हारे लाड़ दुलार को हमेशा याद करते रहते हैं। इसीलिए हम यहां आये हैं। तुम्हें यह जानकर खुशी होगी कि मेरे लड़के की शादी अभी जल्दी ही होने वाली है। उसकी देखभाल के लिए मेरे और कोई नजदीकी रिश्तेदार भी नहीं हैं। तुम्हीं को सब कुछ करना है। कपड़े पहन कर तैयार हो जाओ। हमारे साथ चलो।'

उसका मायका बहुत दूर था। उसके मन में अपने भाइयों और उनके लड़कों के लिए चाह स्वाभाविक थी। परंतु उसे कोई अवसर नहीं मिला था। अपने बचपन और किशोरावस्था की बातें याद करके वह फूट-फूट कर रो पड़ी। इन भले मेहमानों ने जो उस दिन उसके यहां ही ठहर गये थे उसे सांत्वना दी। उसने उनको एक सोने के प्याले में नहाने के पहले तेल लगाने के लिए दिया। उसका लड़का उन्हें नहाने का तालाब दिखाने के लिये साथ गया।

ठगों ने अपने शरीर में खूब सा तेल पोत लिया, उस प्याले को घनी झाड़ियों में छुपा दिया और चिल्लाने लगे कि उसे कौआ उठाकर ले गया। फिर नहाकर खाना खाने के लिए बुढ़िया के घर वापिस आये और कहने लगे 'बुआ जी इस दुर्घटना का दुख मत करना। कुछ किया ही नहीं जा सकता था। हमने प्याला तालाब के किनारे रख दिया। एक शैतान कौआ उसे उठाकर ले गया। हमने उसका पीछा भी किया परंतु वह एक पल में ही नजर के बाहर हो गया।' बुढ़िया के लड़के ने सब कुछ देखा था। परंतु उसने ऐसा बहाना बनाया मानो उसे कुछ मालूम ही न हो। उन ठगों ने उसको बावला मान लिया।

बुढ़िया को उस मूल्यवान प्याले के खोने का बड़ा दुख हुआ और तांबे, चांदी या कांसे के प्याले में उन्हें तेल न देने के लिए बड़ी पछताई। इस दुख के कारण वह अपने भाई के लड़के की शादी में स्वयं नहीं गयी और उसमें शामिल होने के लिए अपने लड़के को भेज दिया। उसका लड़का एक घोड़े पर सवार होकर उनके साथ चला गया।

रास्ते में ठगों ने उससे कहा "भइया" हमें बड़ी भूख लगी है। तुम तो कई आभूषण पहने हुए हो। क्यों न उनमें से एक को बेचकर हमारे लिए कुछ खाने को ले आते हो?

लड़के ने कहा 'प्यारे भाई हम लोग नाहक अपने जेवर क्यों बेचें? कोई आदमी ऐसा तभी करता है, जब उसके पास और कोई साधन नहीं रहता। शायद यह तुम्हें नहीं मालूम है कि मेरी यहां पर अच्छी साख है। मैं तुम्हें जो भी खाने पीने की इच्छा हो दिलवा सकता हूं। परंतु एक शर्त है। तुम मुझे किसी भी तरह से संकोच में नहीं डालना। जैसा मैं कहूं वैसा तुम्हें करना होगा। मामला बहुत कठिन नहीं है और तुम्हारे लिए कष्टकारक भी नहीं होगा। जब तुमसे एक या दो पूछा जाये तो तुम दो कहना।'

ठग थोड़े से लापरवाह थे। उन्हें यह नहीं मालूम था कि "दो" का शब्द ही उनके अस्तित्व के लिए किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न कर सकता है। बिना सोचे-विचारे वे इस प्रस्ताव से सहमत हो गये। वह लड़का एक व्यापारी के पास गया और उससे बोला-'मैं दो मजदूर बिक्री के लिए लाया हूं। वे खूब हट्टे-कट्टे और मजबूत हैं और खेती में बड़े होशियार हैं और तुम्हारी बड़ी अच्छी सेवा करेंगे। मुझे अच्छे दाम दे दो और उन दोनों को अपने पास रख लो।' व्यापारी अच्छे गठे बदनवाले उन दोनों व्यक्तियों को देखकर बड़ा खुश हुआ और उसने पूछा "एक या दो"। उन लोगों ने पहले बताए अनुसार "दो" कह दिया।

मोल भाव और बिक्री अब पूरी हो गयी। वह लड़का पैसे ले कर चला गया। दोनों गुलाम जो अब बिक चुके थे, घोर आपत्ति के बावजूद काम करने के लिए बगीचे में ले जाये गये। उन दो ठगों को जब समझ में आया कि वह लड़का तो सबसे बड़ा ठग निकला। तब वे व्यापारी के पास आये, उसके पैरों पर गिर पड़े और कहने लगे "श्रीमान हम कठिन काम कराने के लिए स्वयं मजदूर लगाते हैं। हम अच्छे परिवारों के व्यक्ति हैं और इस तरह का व्यवहार तो किसी तरह उपयुक्त नहीं है। वह तथाकथित व्यापारी बालक जिससे हमारा परिचय है, हमें यहां नाश्ता कराने लाया था और आश्चर्य है कि वह हमें तुम्हारे हाथ बेच गया।"

व्यापारी ने कहा—'मैं तुम लोगों के बारे में कुछ भी नहीं सुनना चाहता हूं। आखिर मुझे अपना व्यापार चलाना है। व्यापार, व्यापार है। इसमें भावना और संवेदना के लिए कोई स्थान नहीं है।'

दोनों ठगों ने फिर से दया की भिक्षा मांगी और कहा, 'हम लोग तो ठगे गये हैं पर तुम भी ठगे गये हो। इस बदमाश को दिया गया पैसा तो किसी तरह वापिस होना ही चाहिए। किसी व्यक्ति को हमारे साथ कृपा करके भेज दो। हम उससे पैसा वसूल कर लेंगे और उसे फिर तुमको वापिस कर देंगे।' व्यापारी को उनके निर्दोष होने का विश्वास हो गया। उसने उन्हें छोड़ दिया और उनके साथ अपराधी की खोज के लिए एक आदमी कर दिया।

परंतु उधर वह लड़का घोड़े पर सवार हुआ और आनन-फानन एक गांव में जा पहुंचा। पास में ही एक हलवाई की दुकान थी। उसमें मिठाई बड़ी तरतीब से लगी हुई थी। एक बिक्री करने वाला व्यक्ति भी था। वह ठग दोनों हाथों से एक के बाद एक मिठाई खाकर साफ करता गया। बिक्री वाले लड़के ने इस असाधारण तरीके पर आपत्ति प्रकट की और कहा-'श्रीमान, आप जो मिठाई चाहें वह मुझसे मांगे। पहले दाम चुकाएं और फिर उसे खाएं। इस पर ठग ने कहा "चिंता मत करो। मेरा नाम मक्खा है। जाकर अपने पिताजी को बताओ "मक्खा", सब मिठाई खाए जा रहा है। वह इसका कोई बुरा नहीं मानेगा। क्योंकि मैं उसका मित्र हूं।"

वह लड़का भागता हुआ अपने पिता के पास गया और उसे इस विचित्र "मक्खे" के बारे में बताया। पर पिता ने उसाकी शिकायत पर पूरी तरह गौर करने के बजाय नाराज होते हुए कहा "तुम मूर्ख हो। मक्खा कितनी मिठाई खा सकता है? तुम दुकान किसे सौंप कर आये हो फौरन वापिस जाओ और दुकान को देखो।'

इस बीच उस ठग ने मिठाइयों से एक झोला भर लिया और घोड़ा आगे बढ़ा दिया। उसे रास्ते में एक बुढ़िया मिली। उसके साथ एक किशोरी थी, जिसकी उम्र बमुश्किल सोलह साल होगी। वह बहुत सुंदर थी। उसका चेहरा पूर्णिमा के चांद जैसा था और उसका रंग पिघले हुए सोने जैसा था। लड़के ने घोड़े की लगाम निकाल दी, और उस पर से उतर आया। उस लड़की को पकड़ लिया और घोड़े पर बिठाकर चंपत हो गया। यह सब कुछ पलक झपकते ही पूरा हो गया। उस वृद्ध महिला पर जो विजली सी गिर गयी। वह एक क्षण के लिए कुछ समझ ही नहीं पाई कि हो क्या रहा है और उस परिस्थिति में उसे करना क्या चाहिए? आखिर में उसने चिल्लाना शुरू किया। ठग ने उससे जाते-जाते कहा था- 'चिंता मत करो', मेरा नाम जमाई है'।

वह बुढ़िया बहुत से लोगों के घिर आने तक चिल्लाती रही। उस भीड़ में लोगों ने उससे चिल्लाने का कारण पूछा। वह वृद्धा एक ही वाक्य बार-बार दुहराती रही- 'मेर लड़की ले गया', 'मेरी लड़की को जमाई ले गया।' लोग हंसने लगे और कहने लगे- "क्या कहा? तुम्हारी लड़की को जमाई ले गया। यह तो चोरी नहीं है, डकैती नहीं है। यह तो होना ही चाहिए। इसमें कोई अनहोनी बात तो नहीं है। ऐ बुढ़िया ! तू रो क्यों रही है? तू गधे की तरह ढेचूं-ढेचूं क्यों कर रही है? वह अब बड़ी हो गयी है। क्या वह तेरे साथ हमेशा बनी रहती? उसे जाने दे और सुखी दांपत्य जीवन बिताने दे।"

वह ठग उस युवती को घोड़े पर बिठाकर ले भागा और एक जंगल में पहुंचा। वह आराम करने के लिए एक जगह रुक गया। एक रीछ पास ही दीमक की बांबी पर दीमकों को खा रहा था। जैसे ही उसने घुसपैठिये को देखा उस पर हमला कर दिया। ठग शरीर से तगड़ा और हिम्मत वाला था। उसने इस मौके पर अच्छा मुकाबला किया। वह रीछ

से तब तक लड़ता रहा जब तक कि रीछ पूरी तरह से थक नहीं गया। उस समय उसने बड़ी होशियारी से उसकी नाक पकड़ ली और उसे जमीन पर रगड़ने लगा। परंतु वह उसे मार नहीं सका क्योंकि उसके पास कोई हथियार नहीं था। अपनी जिंदगी का डर होने से वह उसे छोड़ भी नहीं सकता था।

उस दुर्दांत जानवर से लड़ना उसके लिए अत्यंत भयावह काम था। उसके सब रुपये-पैसे बिखर गये। वह भी थककर चकनाचूर होता जा रहा था और उसे भय लग रहा था कि अंत में वह मार डाला जायेगा। परंतु भाग्य ने उसका साथ दिया। वहां पर एक व्यापारी आ पहुंच। और उसने खेत में बहुत से रुपये-पैसे बिखरे देखे। वह स्वभाव से बड़ा लोभी था। उसे लोभ आ गया और उसने उस राशि को बटोरना शुरू कर दिया।

उसने एक आदमी को एक रीछ की नाक पकड़े हुए और उसे धरती पर रगड़ते हुए देखा। उसने कहा "मेरे प्यारे दोस्त, यह इतना सारा रुपया कहां से आया? इस भयानक रीछ की तुम नाक क्यों रगड़ रहे हो?"

ठग ने कहा—"श्रीमान जी, यह कोई अन्य जंगली रीछों की तरह मामूली रीछ नहीं है। इसमें तो विशिष्ट चमत्कारी गुण हैं। यदि इसकी नाक रगड़ो तो यह रुपया-पैसा निकालता है। जो भी आदमी धनी बनना चाहे उसके लिए यह बड़ा हितकर सिद्ध होगा। मैंने तो अब इसे बिलकुल बिल्ली की तरह पालतू बना लिया है जिससे वह किसी को भी नुकसान न पहुंचा सके।'

व्यापारी ने पूछा 'क्या तुम इसे बेचोगे?' ठग ने जवाब दिया अगर मुझे कोई अच्छा ग्राहक मिल जाये। व्यापारी ने कहा—'इसकी कीमत बताओ'। ठग ने कहा 'अगर मुझे हजार रुपये से कम मिले तो मैं इसे नहीं हटाऊंगा।'

व्यापारी ने मन में विचार किया—'व्यापार कोई सरल काम नहीं है। इससे आदमी को सदा चिंता बनी रही है। उसकी तंदुरुस्ती बिगड़ जाती है और मानसिक शांति खत्म हो जाती है और कौन जाने उसमें कब घाटा हो जाये। कभी-कभी तो नामी करोड़पति तक सड़क की खाक छानने लगते हैं। अतः अगर यह रीछ मेरी इच्छानुसार रुपया पैसा पैदा करता रहे तो फिर मैं अनावश्यक क्यों परेशानी मोल लूं? आज के बाद मेरी जिंदगी बड़ी सरल हो जायेगी। मैं हाथ खोलकर खर्च करूंगा आनंद-पूर्वक खान-पान करूंगा और अच्छी नींद सोऊंगा।

उसने अपने रुपये गिने। ठीक एक हजार निकले। उसने ठग को रुपये दे दिये। ठग बिखरे हुए रुपये भी ले गया। व्यापारी उस रीछ की नाक रगड़ने लगा। ठग युवती को लेकर घोड़े पर चढ़कर चला गया।

अपनी यात्रा के दौरान ठग ने रास्ते में एक धोबी को धूप में सूखने के लिए कपड़े फैलाते हुए देखा। उसने उसके सामने कुछ मिठाई खाई। धोबी को लालच आ गया और

उसके मुंह में पानी भर आया। उसने उससे एक मिठाई मांगी जो उसने बड़ी खुशी से दे दी। धोबी ने मिठाई खाकर कहा कि यह बड़ी स्वादिष्ट थी। उसने एक और मांगी। ठग ने कहा मुझे खुशी है कि तुम्हें यह पसंद है। परंतु तुम्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि यह मिठाई हलवाई की बनाई हुई मिठाई नहीं है। ये तो फल है जो एक पेड़ में लगता है। देखो वह दूर एक पहाड़ी है। उस पहाड़ी की चोटी पर तुम्हें एक छोटी सी झील मिलेगी। उस झील के किनारे एक पेड़ है जो कई प्रकार के फलों से लदा हुआ है। उनमें से जितने चाहो तुम तोड़ सकते हो। वहां तुम्हें कोई टोकने वाला नहीं है। मिठाइयां खाओ, उस झील का निर्मल जल पियो, कठोर जीवन और कठिन कार्य की चिंता को भुला दो और राजकुमार, महाराजा या स्वर्ग के देवता की तरह अपनी जिंदगी बसर करो।

धोबी इस विचार से बड़ा खुश हुआ और बताये अनुसार पहाड़ी की ओर चला गया। इसी बीच ठग ने सभी बहुमूल्य वस्तुओं को इकट्ठा किया, उन्हें घोड़े की पीठ पर रखा और घोड़े में सवार होकर तब तक चलता गया, जब तक वह सुरक्षित स्थान पर नहीं पहुंच गया। उसने रंगीन कपड़ों को एक पेड़ पर बांध कर लटका दिया और कहने लगा – 'मेरे जादुई पेड़, मेरे लिए तुम अमूल्य रेशमी कपड़ों के फूल प्रस्फुटित करो।'

एक व्यापारी जो उस पेड़ के पास से गुजर रहा था, ठग के शब्दों को सुन आश्चर्य में पड़ गया। 'किसी पेड़ में अनेक रंगों के फूलों की तरह रेशमी कपड़े कैसे लग सकते हैं? यह तो विचित्र बात है ! वास्तव में बड़ी विचित्र बात है। ऐसी बातें स्वर्ग में हो सकती हैं, परंतु ऐसा धरती पर कभी सुना गया है क्या?'–वह ठग के पास गया और कहा 'तुम क्या कह रहे हो?'

ठग ने कहा "यह विचित्र पेड़ है, जिसमें फूलों की तरह रेशमी कपड़े फूलते हैं। पेड़ पर चढ़ जाओ, उसकी शाखा पर बैठकर यह कहो–'मेरे जादुई पेड़ फूलो, मेरे लिए कपड़े फलाओ।' तब तुम्हें इसकी शाखाओं पर कपड़े फूलते दिखाई देंगे। ऐसे बहुमूल्य कपड़े जो राजाओं और सम्राटों के पहनने योग्य ही हों। देखो, यह मेरी प्यारी पत्नी है। वह अत्यंत भाग्यवती है। वह कभी पुराने कपड़े नहीं पहनती। वह नये कपड़े नई पत्ती की तरह केवल एक दिन के लिए ही पहनती है। इसके बाद वह मुरझाये फूलों की तरह उन्हें उतारकर फेंक देती है।"

व्यापारी की कपड़े की दुकान थी। उसने अपने मन में सोचा "मैं कारखाने से कपड़े क्यों खरीदूं? यह पेड़ तो अपने आप में ही एक कारखाना है। कारखाने में मजदूर लगते हैं, जो उसके मालिक के लिए लगातार परेशानी का कारण बनते जाते हैं। परंतु इस कपड़े फलने वाले पेड़ में न तो कोई खर्च है, न मुझ पर कोई अपनी खुराक के लिए निर्भर रहेगा और मुझे किसी भी प्रकार से परेशान भी नहीं करेगा। मुझे बहुत सा पैसा मिलेगा और मैं देखते देखते बहुत धनी हो जाऊंगा।"

उसने मोल-भाव किया और उस ठग को मोटी रकम देकर उस जादुई पेड़ का मालिक बन गया। ठग अपनी तथाकथित पत्नी के साथ घोड़े पर सवार होकर चला गया। व्यापारी पेड़ पर चढ़ा, ठग के बताए शब्द ठीक उसी प्रकार दुहराए। परंतु उसका कोई असर नहीं हुआ, और वह बड़ा व्यथित हुआ।

उधर दूसरे दोनों ठग अपने इस भाई की खोज के लिए निकले और हलवाई की दुकान पर पहुंचे, जो पहले लुट चुकी थी। उन्होंने हलवाई को अपने साथ लिया और उस बुढ़िया के पास पहुंचे जिसकी लड़की जबरदस्ती भगा ली गयी थी। उन्होंने बुढ़िया को साथ लिया और उस व्यापारी के पास पहुंचे जो बेचारा तब तक भालू से लड़ रहा था। उन्होंने भालू को मार डाला और व्यापारी को अपने साथ ले लिया। उन्होंने जाकर धोबी को सांत्वना दी जो अब तक रो रहा था और उसे भी अपने साथ ले लिया। वे सब फिर उस ठग के घर पहुंचे और उससे चोरी या ठगी का सब माल वापिस मांगा।

ठग ने कहा, 'न मैं कोई ठग हूं, न चोर या डाकू ही हूं। मैं मिठाई या तो खा चुका हूं या बरबाद कर चुका हूं। अतः उसके सिवा आप लोगों की सारी वस्तुएं वापिस कर दूंगा। मिठाई की भी कीमत चुकता करने के लिए मैं तैयार हूं। जैसा आप लोग सोचते हैं, वैसा ठग, चोर या डकैत मैं नहीं हूं। मैंने तो यह सब मजाक में किया था। मैंने यह दिखाया है कि लोगों को नाक पकड़कर कैसे चलाया जा सकता है।'

उसके इस शिष्ट व्यवहार से सभी बड़े प्रसन्न हुए। बड़े स्वादिष्ट व्यंजन परोसे गये। आरामदेह बिस्तरे लगवाये गये। उन्होंने अपना भोजन किया और इस भरोसे पर कि सभी की वस्तुएं वापिस दी जा रही हैं, वहीं आराम भी किया।

इस बीच ठग ने अपनी एक योजना बनायी और उसे पूरा करने का हर संभव प्रयास किया। उसने गांव के चौकीदार को रिश्वत देकर राजा का यह हुक्म डुग्गी पिटवाकर प्रसारित करवा दिया कि जिस किसी के घर में कोई परदेसी मेहमान हो वह उसे दूसरे दिन सबेरे राजा के दरबार में हाजिर करे। ऐसा भी कहा जा रहा है कि इन विदेशियों में कुछ जासूसी कर रहे हैं। किसी भी प्रजा के ऐसा न करने पर उसे राजद्रोही मानकर फांसी दी जायेगी।

वे दोनों ठग, धोबी, वृद्धा और दोनों व्यापारी इस घोषणा को सुनकर घबरा गये और अपनी जान बचाने के लिए वहां से निकल भागे। सुरक्षित दूरी पर पहुंचकर एक ठग ने राहत की सांस लेते हुए कहा "भाई, मैं गांव का ठग ठहरा, तुम शहरी ठग हो। परंतु हमारा यह भाई तो सभी ठगों का राजा है। जब तक वह जिंदा है, हमारी सभी योजनाएं असफल रहेंगी। हमारी होशियारी का उससे कोई मुकाबला ही नहीं है। हमारे परिवार अब भूखों मर रहे हैं। उनके पालन पोषण के लिए हमें कड़ी मेहनत करनी चाहिए। एक ठग दूसरों को झांसा देकर अपना काम करता है। पर अब हम ऐसी दयनीय स्थिति में आ पड़े हैं कि हम खुद झांसा खा रहे हैं।"

कथावाचक कहता है – "उस सुंदरी के साथ ठगों के राजा ने बहुत आनंदमय जीवन बिताया। जब मैंने उससे कोई संदेश देने के लिए कहा, उसने कहा "ठगी, जब तक तुम्हारी अपनी चतुराई के बस में रहे, तुम्हारे व्यक्तित्व में नया रंग भरती है।"

कांची-विजय और मणिका-ग्वालिन

ओड़िसा के सूर्यवंश के महान राजा तथा महाप्रभु जगन्नाथ के परम भक्त पुरुषोत्तम देव, कांची की राजकुमारी पद्मावती से विवाह करना चाहते थे जो अपने अनुपम सौंदर्य के लिए प्रसिद्ध थी। कांची महाराज ने इस प्रस्ताव का स्वागत किया क्योंकि पुरुषोत्तम देव राजा अत्यंत समादृत, सच्चरित्र तथा सत्यनिष्ठ व्यक्ति थे। वे भारतीय राजवंशों में महाप्रभु जगन्नाथ की मानवीय प्रतिमूर्ति माने जाते थे। किंतु बाद में कांची महाराज ने अपना विचार बदल दिया। क्योंकि उन्होंने देखा कि महाप्रभु जगन्नाथ की रथ यात्रा के समय स्वयं पुरुषोत्तम देव सोने की झाड़ू से रास्ता (बड़दाण्ड) बुहारते हैं और इसे उन्होंने राजोचित मान- मर्यादा तथा गरिमा के प्रतिकूल माना। उन्होंने अपनी कन्या का विवाह एक 'चांडाल' से करने से मना कर दिया। क्षुब्ध एवं कुछ ओड़िसी सम्राट ने कांची राज्य पर आक्रमण कर दिया। किंतु वे हार गये। पर इस हार ने उन्हें दुबारा प्रयत्न करने से विमुख नहीं किया। इस बार उन्होंने दैवी सहायता की यांचना की। वे महाप्रभु जगन्नाथ को ओड़िसा का वास्तविक शासक तथा अपने को उनका अकिंचन प्रतिनिधि मानते थे। महाप्रभु ने स्वप्न में दर्शन किया एवं सभी प्रकार की सहायता कर वचन दिया।

महाप्रभु जगन्नाथ तथा उनके बड़े भाई महाप्रभु बलभद्र ने ओड़िसा के सैनिक अधिकारी का वेष बनाया और दोनों सफेद तथा काले घोडे पर सवार होकर ओड़िसी सेना का नेतृत्व करते हुए आगे चल दिये। दोनों देवों को तेज धूप में लंबी घुड़सवारी के कारण प्यास लगी। उन्होंने नवयौवना ग्वालन मणिका गउड़णी, जो लस्सी की मटकी सिर पर लिए हुए थी, से लस्सी मांगी। उसने खुशी-खुशी लस्सी दी और दोनों ने जी भरकर पिया। तब मणिका ने दाम मांगा। देव बंधुओं के पास पैसे नहीं थे। तथापि उन्होंने हीरे की अंगूठी उसे दी। ग्वालिन को यह समझ में नहीं आया कि इस चमकीली चीज का वह क्या करे? महाप्रभु जगन्नाथ ने उसे पीछे आ रहे राजा के लोगों को उसे दिखाने को कहा और आश्वासन दिया कि वे अंगूठी लेकर लस्सी के दाम दे देंगे।

मणिका धीरज धरे प्रतीक्षा करती रही। अंत में महाराज और उनकी सेना वहां पहुंची। महाराजा को अंगूठी दिखाई गयी और उन्होंने तुरंत पहचान लिया कि अंगूठी महाप्रभु जगन्नाथ की है। तब उन्हें यह निश्चय हो गया और खुशी भी हुई कि वास्तव में महाप्रभु ने उनकी सेना का नेतृत्व किया है। मणिका को परम आराधिका स्वीकार किया गया क्योंकि

उसने विश्व के प्रभु की प्यास बुझाई थी। महाराजा ने उसे एक गांव दिया, जिसका नाम उसके नाम पर "मणिका-पटणा" रखा गया जो ओड़िसा में दही-मट्ठे के लिए प्रसिद्ध है।

महाराजा पुरुषोत्तम देव ने दैवी सहायता से कांची राज्य जीत लिया और पद्मावती को लूट की वस्तु के रूप में ले आये। उन्होंने दृढ़ संकल्प कर लिया था कि एक वास्तविक चंडाल से पद्मावती का विवाह कर देंगे। जिससे पराजित महाराजा के मिथ्याभिमान पर अंतिम प्रहार कर सकें।

अगले वर्ष रथयात्रा के दिन महाराजा पुरुषोत्तम देव पुनः परंपरागत रीति से सोने के झाड़ू से रास्ता साफ करने लगे। तब उनके नीति-निपुण मंत्री ने बड़ी चतुराई से पद्मावती को सुविख्यात चंडाल (महाराजा) को सौंप दिया, जिन्होंने हर्ष से गद्‌गद् हो उसे स्वीकार कर लिया।

परंपरा यह है कि ओड़िसा के देव-तुल्य राजा प्रभुता से मदांध न होकर छोटा समझा जाने वाला कार्य भी विनम्रता से क़रते हैं और अपने को प्रजा की सेवा के लिए समर्पित कर देते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ सूची

(1) बॉसकम डब्ल्यू. आर. 1965, "फोकलोर एंड एंथ्रोपोलॉजी" इन "दी स्टडी ऑफ फोकलोर" (सं.) ए. ड्यून्ड्स, प्रेंटिस हॉल.

(2) दास. के.वी. 1963, "ए स्टडी ऑफ ओडीसन फोकलोर", विश्व भारती यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, शांति निकेतन।

— 1954, "पालीगीत संचयन, भाग-1'', विश्वभारती यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन।

— 1958, "ओड़िआ लोकगीत ओ कहानी", विश्वभारती यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन।

— 1959, "पालीगीत संचयन, भाग-2", विश्वभारती यूनिवर्सिटी, शांति निकेतन।

— 1964, लोकगल्प संचयन (इन ओड़िआ), ओड़िया साहित्य एकाडेमी, भुवनेश्वर।

(3) एलविन, वेरियर 1950, "बोंडो हाइलेंड्स" ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

— 1950, "मारिआ मर्डर एंड स्वीसाइड", आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, द्वितीय संस्करण।

— 1954, "ट्राइवल मिथ्स ऑफ ओड़ीसा", आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

(4) लीच मारिआ (सं.) 1949, "स्टैंडर्ड डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, माइथोलॉजी एंड लीजेन्ड", फन्क एंड वागनल्स को०, न्यूयार्क।

(5) महापात्र, एल.के., रॉय वर्मन, बी.के. पटनायक, एन 1957, "ए नोट ऑन क्रिश्चियन उरांव इन सुंदरगढ़ डिस्ट्रिक्ट" वन्य जाति खंड 5, भारतीय आदिम जाति सेवक संघ।

(6) महापात्र एल.के. 1960, "ए हिल भुइया विलेज : एन एम्पीरिकल सोसिओ-इकॉनामिक स्टडी", हैम्बर्ग यूनिवर्सिटी. पी-एच.डी. डिजर्टेशन, (हेक्टोग्राफ्ड)

— 1972, "कास्ट एंड आकूपेशनल मोबिलिटी इन ओड़ीसा" सेंसस सेंटीनरी सोवेनीयर, इंडियन सेंसस ऑर्गनाइजेशन, न्यू दिल्ली।

(7) महापात्र एस.के. 1972, "दी एम्प्टी डिस्टैन्स कैरीज़ : पोयट्री ऑफ दी मुन्डाज एंड ओरांव्स।", (राइटर्स वर्कशॉप, कलकत्ता)

— 1973, "दी वुडन सोर्ड : सॉन्ग्स ऑफ मुन्डाज़।"

(8) मिश्रा पी.के. 1969, "भारतीय लोक मिथ : पूर्व भारत.", अप्रकाशित शोध-प्रबंध, विश्व भारती, शांति निकेतन।

(9) मुखर्जी, चारूलाल 1962, "दी सन्थाल्स". ए.मुखर्जी एंड को प्रा.लि. कलकत्ता, द्वितीय संस्करण।

(10) पन्डा, डी. (सं.) 1972, "महिमा धर्म एंड दर्शन", एन इन्टर डिसिप्लिनरी सेमिनार, डी.ए.व्ही कॉलेज, केरापुट।

(11) साहू, एल.एन. 1942, "हिल ट्राइब्स ऑफ जैपुर।"

अनुक्रमणिका

दि सेन्ट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस, ए-12/1 नरायणा इन्डस्ट्रियल एरिया-I, नई दिल्ली 110028 द्वारा मुद्रित